प्रकाशक
श्री जैन श्वेताम्बर नाकोड़ा पार्श्वनाथ तीर्थ
मेवानगर वाया बालोतरा (राज०)

प्रथम संस्करण
१९७८
मूल्य : दस रुपये

मुद्रक
वर्द्धमान मुद्रणालय,
जवाहरनगर कॉलोनी,
दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी–१

प्रकाशकीय

भगवान् पार्श्वनाथ के अनेक नाम हैं, अनेक तीर्थ हैं। उनके गुण अनन्त हैं, उनकी महिमा अपार है, जिनका वर्णन करना कठिन है। नाकोडा पार्श्वनाथ तीर्थ, राजस्थान का सर्वाधिक प्रसिद्ध तीर्थ है। यहाँ भगवान् पार्श्वनाथ की सेवा में भैरवजी सदा जागृत हैं जिनके चमत्कारों से प्रतिदिन तीर्थ पर मेला लगा रहता है। जंगल में मंगल हो रहा है। इस तीर्थ पर बहुत ही सुन्दर व कलापूर्ण मन्दिर एवं पटशालाएँ बनी हुई हैं जो यात्रियों को दिनोंदिन अधिकाधिक संख्या में आकर्षित करती हैं। यात्रियों के ठहरने के लिए विशाल धर्मशाला भी वनी हुई है। पहाड़ियों के बीच स्थित होने से यह तीर्थ और भी रमणीक बन गया है।

बीकानेरके जैन साहित्य सेवी श्री अगरचन्द नाहटा के सुझाव पर तीर्थ की ट्रस्ट कमेटी ने अपनी आमदनी का कुछ अंश ज्ञान वृद्धि और ग्रन्थ प्रकाशन में खर्च करने का तय किया है। इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु तीर्थ पर एक अच्छा ग्रन्थालय भी स्थापित किया जा चुका है जिसको शनैः शनैः एक बृहद् शोध संस्थान का रूप देने की भावना है।

चौदहवीं शताब्दी के शासन प्रभावक और महान् विद्वान् बादशाह मोहम्मद तुगलक के प्रतिशोधक श्री जिनप्रभसूरि जी ने अनेक जैन तीर्थों के सम्बन्ध में समय-समय पर जो कल्प रचे उनका एक सग्रह ग्रन्थ "विविध तीर्थ कल्प" के नाम से प्रसिद्ध है जो मूल रूप में तो प्रकाशित हो चुका है परन्तु वह प्राकृत संस्कृत में होने से जन साधारण उससे वांछित लाभ नहीं उठा पाता है।

इसलिए इसका हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किया जाना बहुत्त आवश्यक था।

बड़े हर्ष का विषय है कि श्री अगरचन्द जी नाहटा के साहित्य सहयोगी उनके भतीजे श्री भंवरलाल जी नाहटा ने उक्त ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद कड़ी मेहनत व लग्न के साथ कर इस तीर्थ को प्रकाशन का अवसर दिया जिसके लिए हम उनके बहुत्त आभारी हैं। इस ग्रन्थ की भूमिका तैयार करने व परिशिष्टों की सामग्री जुटाने में श्री अगरचन्द जी नाहटा का प्रशंसनीय सहयोग रहा है। ग्रन्थ की प्रस्तावना लिखने में डाक्टर ज्योतिप्रसाद जी जैन का भी सराहनीय कार्य रहा है। इस ग्रन्थ में छपे चित्रों के लिए ब्लाक उपलब्ध करवाने में श्री गणेश ललवाणी (जैन भवन कलकत्ता) एवं श्री महेन्द्र कुमार सिन्घी, कलकत्ता का भी सराहनीय सहयोग रहा है। तीर्थ की ट्रस्ट कमेटी इन सभी महानुभावों के प्रति अपना हार्दिक आभार प्रकट करती है।

विविध तीर्थकल्प अपने ढंग का एक ही ग्रन्थ है। इसको सुसम्पादित करके गुजराती भाषा में प्रकाशित करवाने वाले मुनि श्री जिनविजय जी ने इसके महत्त्व पर अच्छा प्रकाश डाला है। उनके वक्तव्य का आवश्यक अंश इस ग्रन्थ में अन्यत्र उद्धृत किया गया है।

तीर्थ की ट्रस्ट कमेटी शीघ्र ही "जैन कथा संचय" नाम का एक और प्रकाशन करने जा रही है जिसका सम्पादन स्वयं श्री अगरचन्द जी नाहटा कर रहे हैं।

नाकोडा तीर्थ के सम्बन्ध में एक प्रामाणिक सचित्र इतिहास की भी मांग श्रद्धालुओं की ओर से काफी समय से आ रही थी। इस सम्बन्ध में भी महोपाध्याय विनयसागर जी से नाकोडा तीर्थ का इतिहास लिखवाया जा रहा है।

भगवान् श्री पार्श्वनाथ जी की पूर्ण कृपा से ट्रस्ट कमेटी के मनोरथ सफल होंगे। उनके परमभक्त भैरव जी महाराज हमें सदा ही इस तीर्थ क्षेत्र की नानाविध उन्नति में निरन्तर प्रेरणा व उत्साह देते रहे हैं और हमें पूर्ण आशा है कि भविष्य में भी वे हमारे प्रयत्नों को सफलीभूत करेंगे।

सुल्तानमल जैन
अध्यक्ष
श्री जैन श्वेताम्बर नाकोडा पार्श्वनाथ तीर्थ
मेवानगर (राजस्थान)

वाडमेर,
दिनांक २-९-७८
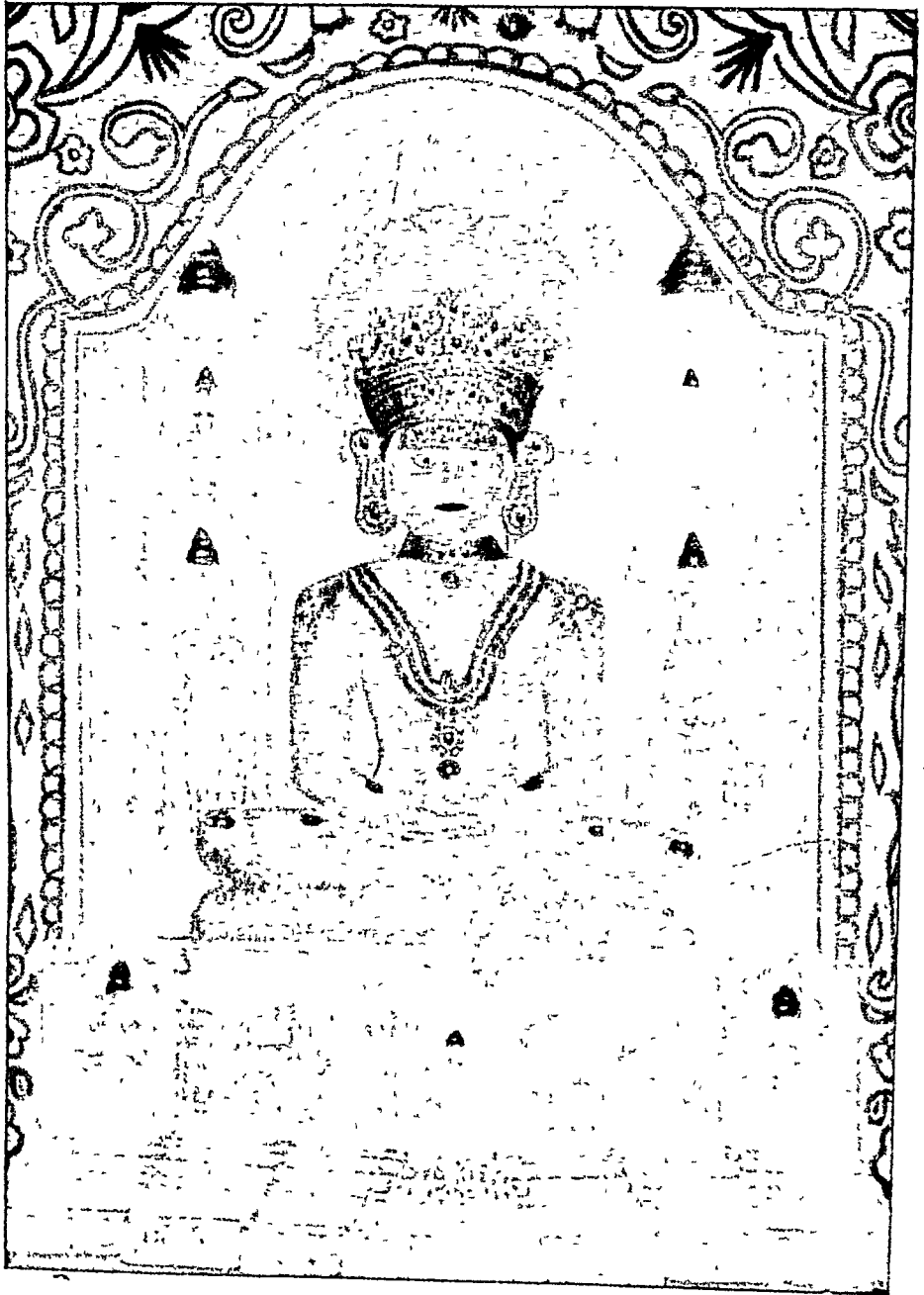
भगवान् पार्श्वनाथ, नाकोड़ा तीर्थ

श्री भैरुजी नाकोड़ा तीर्थ

श्री जैन श्वेताम्बर नाकोड़ा पार्श्वनाथ तीर्थ

जैनमंदिर शत्रुञ्जय महातीर्थ, पालीताना (सौराष्ट्र)

(जैन भवन, कलकत्ता के सौजन्य से)

जैनमंदिर गिरनार महातीर्थ, जूनागढ (सौराष्ट्र)
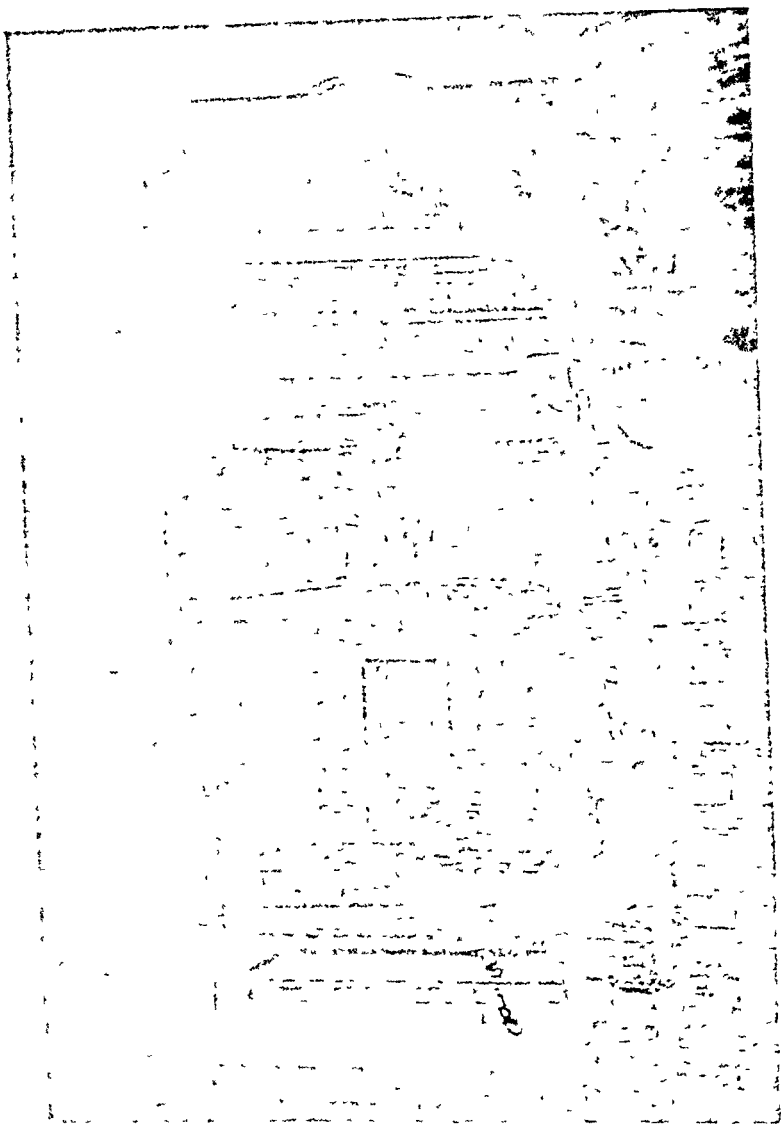
(जैन भवन, कलकत्ता के सौजन्य से)
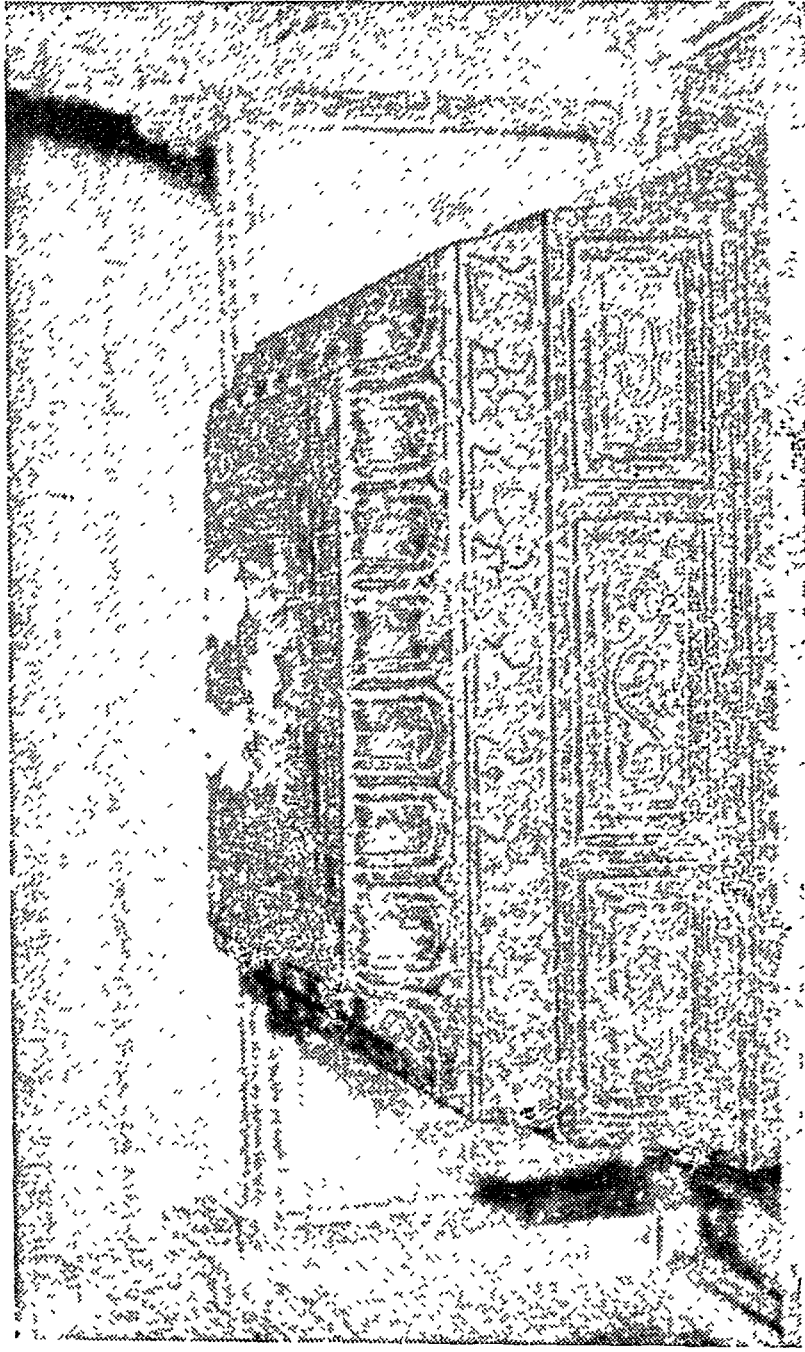
श्री महावीर निर्वाण स्थान—चरणपादुका गाँवमन्दिर पावापुरी (बिहार)
(जैन श्वे० सेवासमिति कलकत्ता के सौजन्य से)

श्वेताम्बर जैन मंदिर, नालन्दा (विहार)

प्राचीन शान्तिनाथ प्रतिमा, नालन्दा (बिहार)
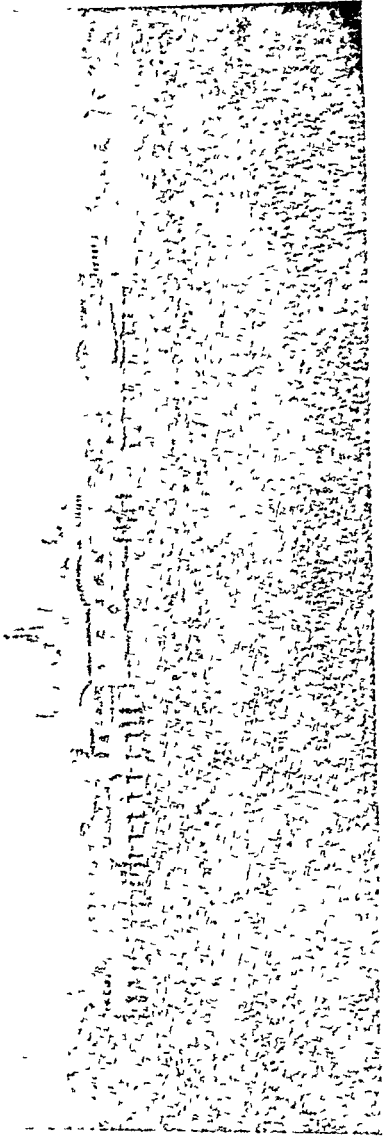
जलमंदिर पावापुरी महातीर्थ (विहार)
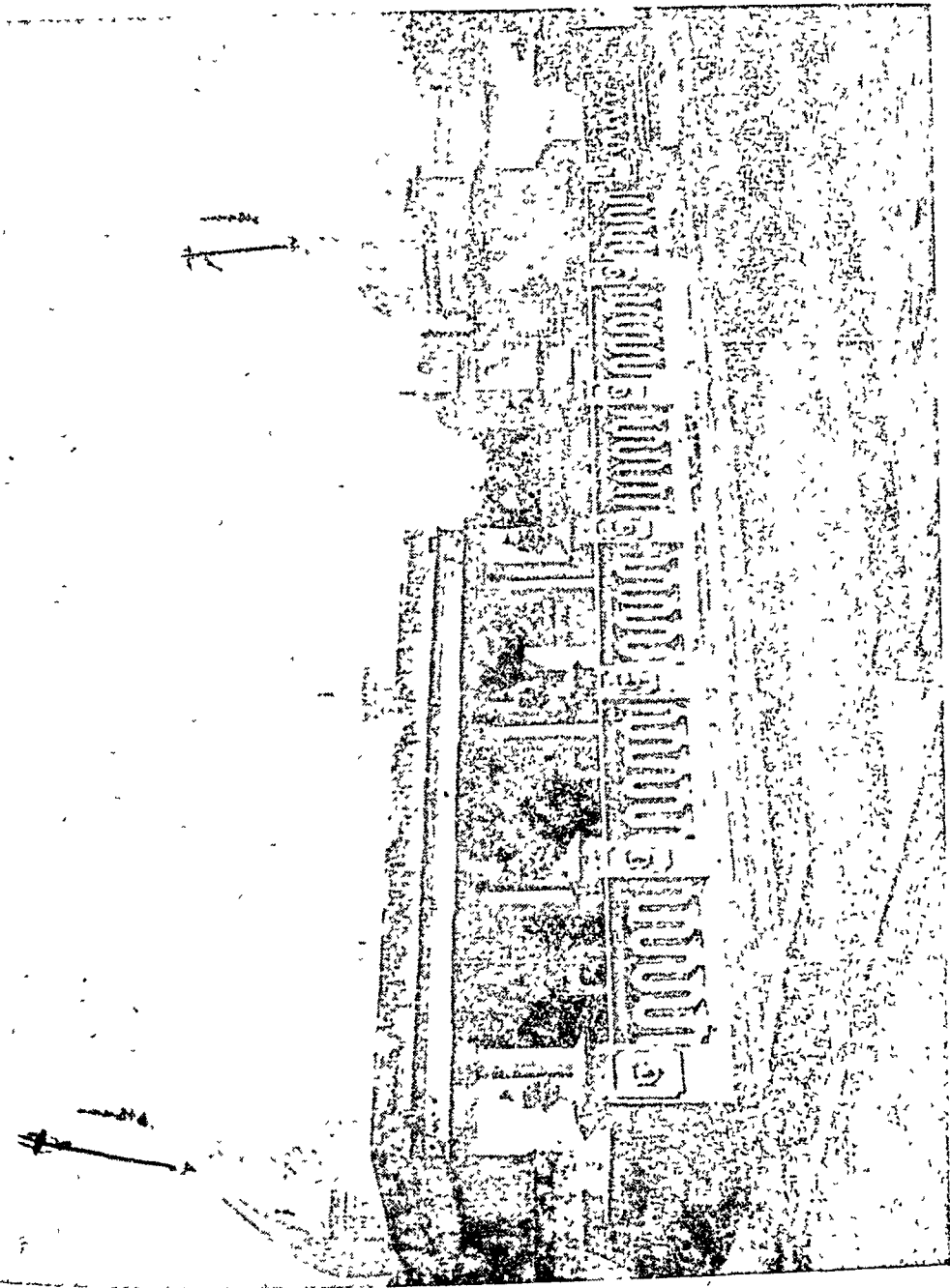
श्री वासुपूज्य जिनालय, चम्पापुरी तीर्थ (बिहार)
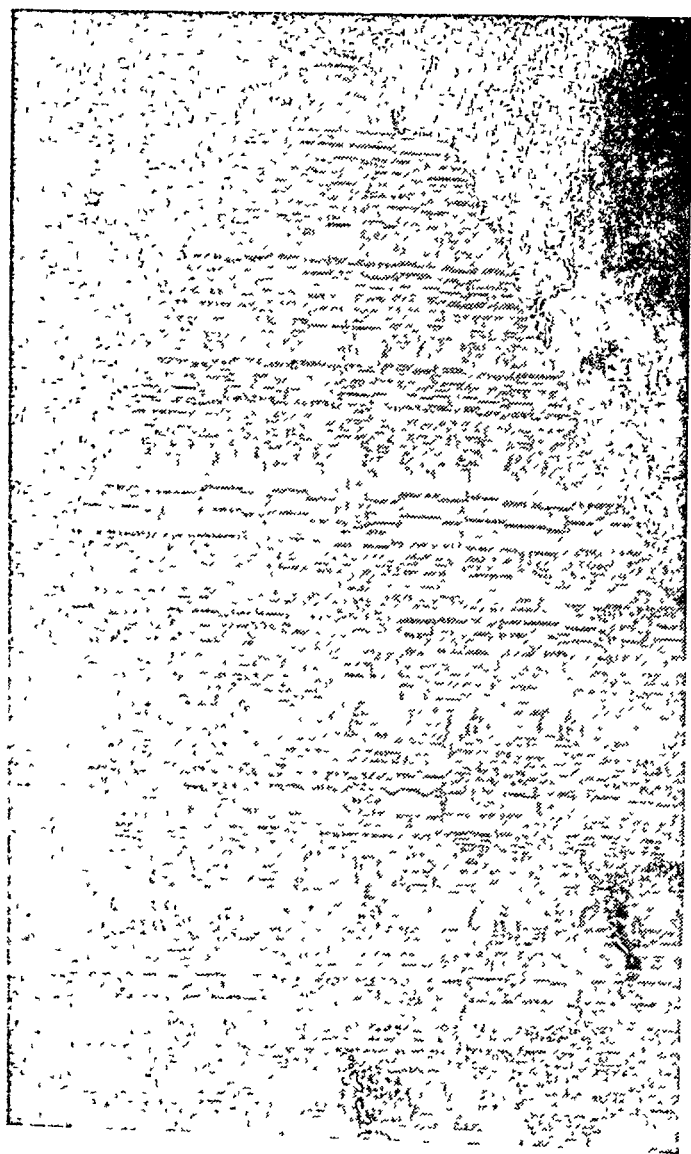
श्री कुल्पाक जी तीर्थ जिनालय का शिखर (आन्ध्र प्रदेश)
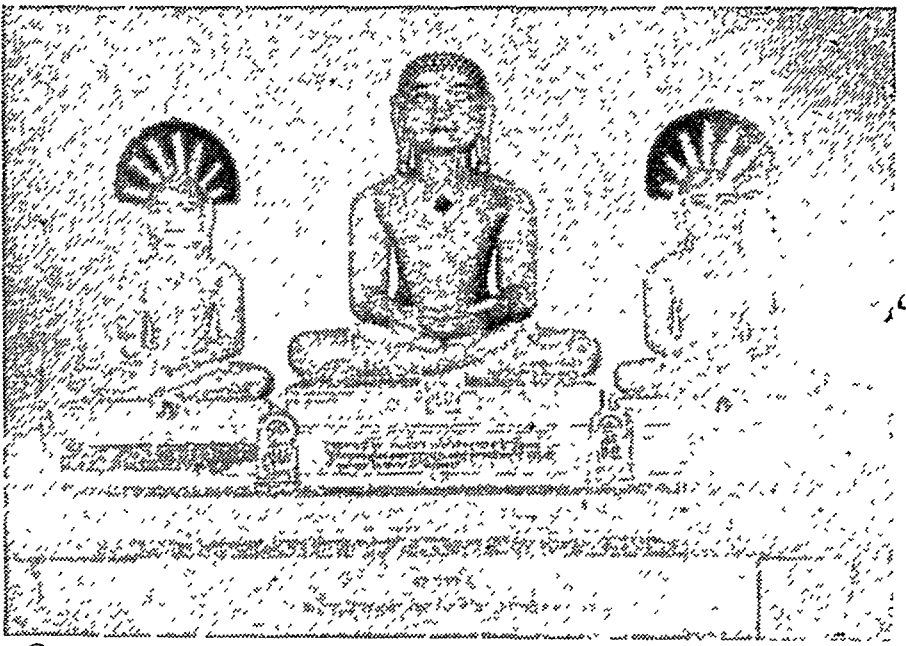
श्री पद्मप्रभु जिनालय, प्रतिमाएँ, कौशाम्बी तीर्थ (उ० प्र०)
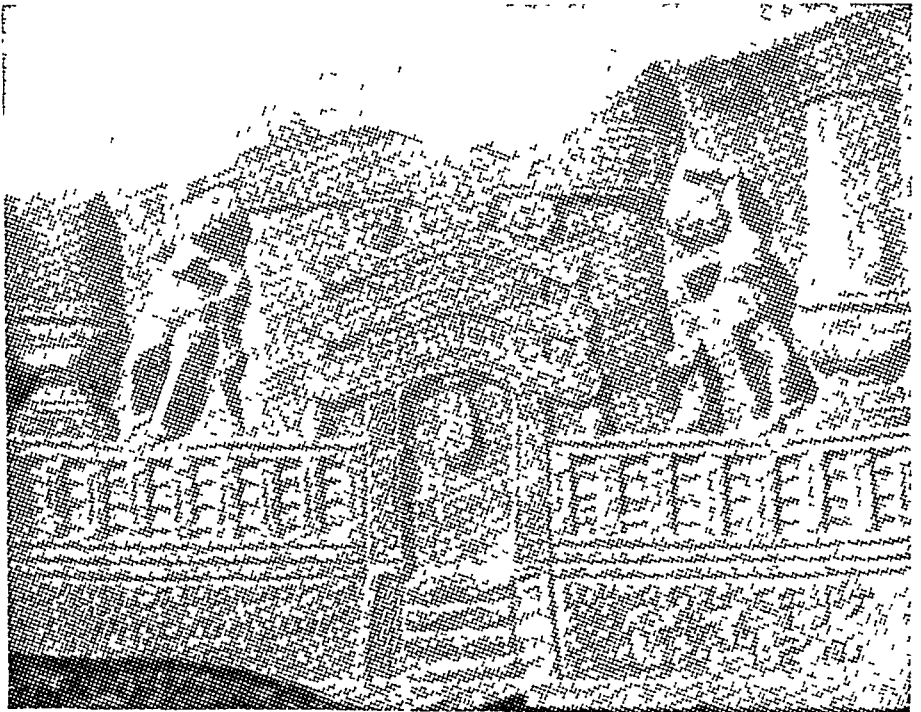
आयागपट्ट, मथुरा स्तूप
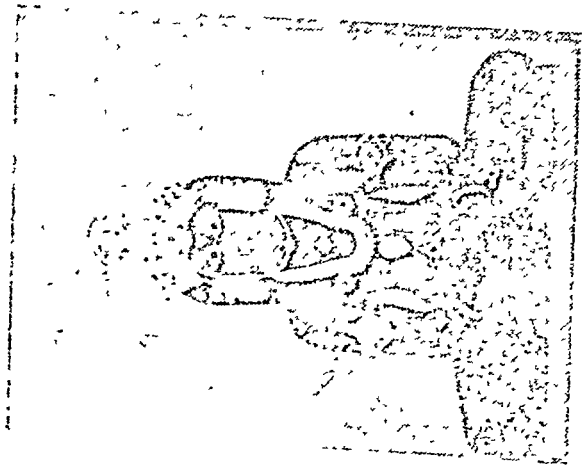
ऋषभ देव (माणिक्य स्वामी)
कुल्पाक जी तीर्थ (आन्ध्रप्रदेश)
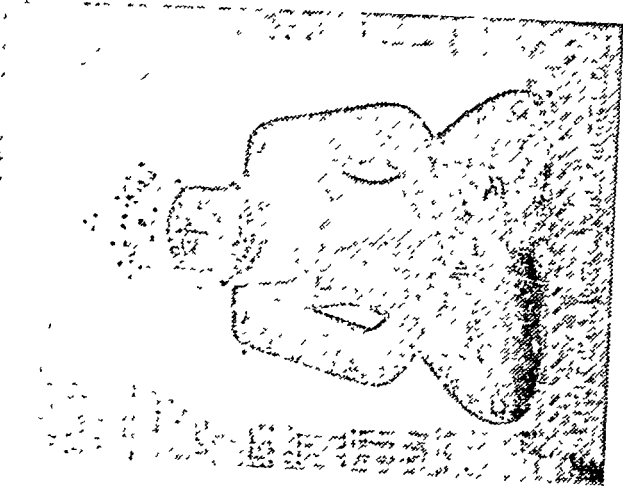
श्री महावीर स्वामी
(पिरोजे की प्रतिमा)

कौशाम्बी के भग्नावशेष व प्राचीन स्तम्भ

पद्मप्रभु जिनालय, कौशाम्बी तीर्थ (उ० प्र०)
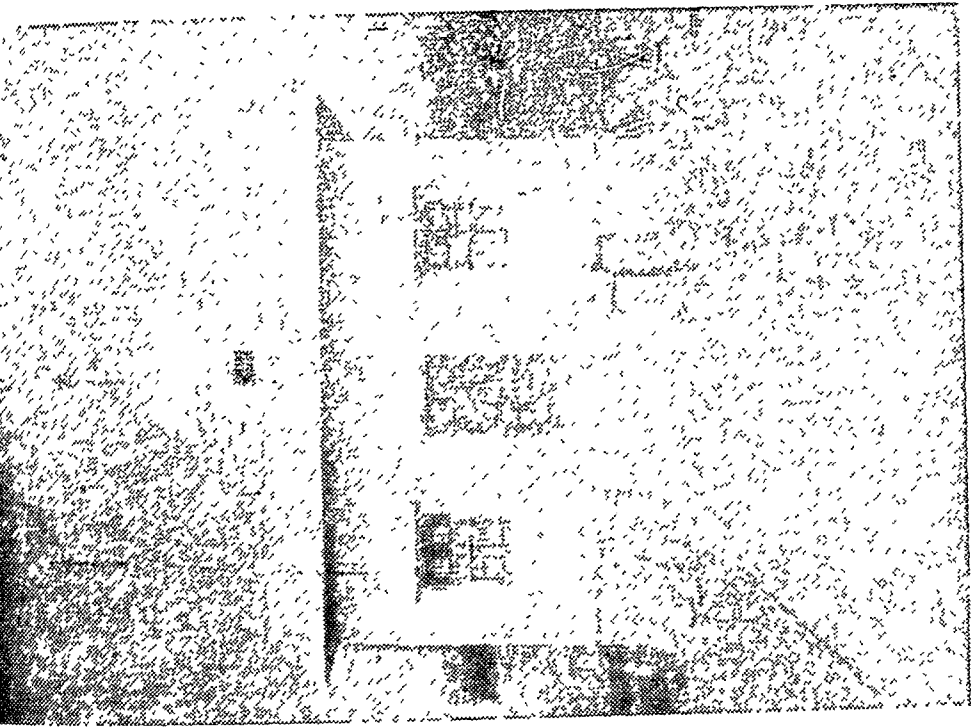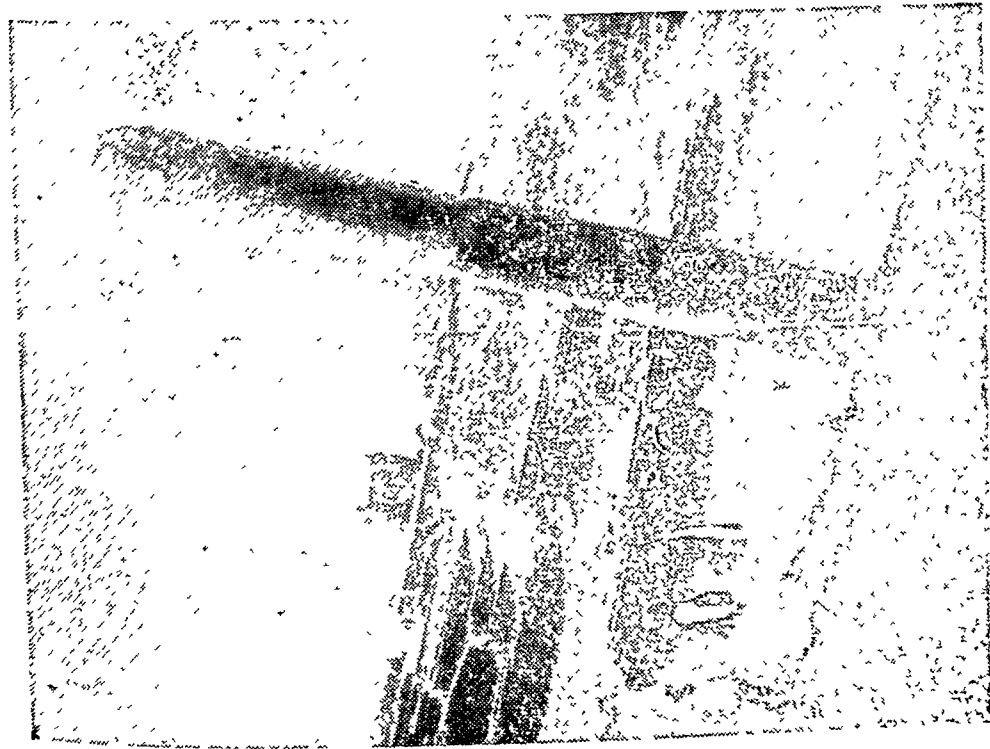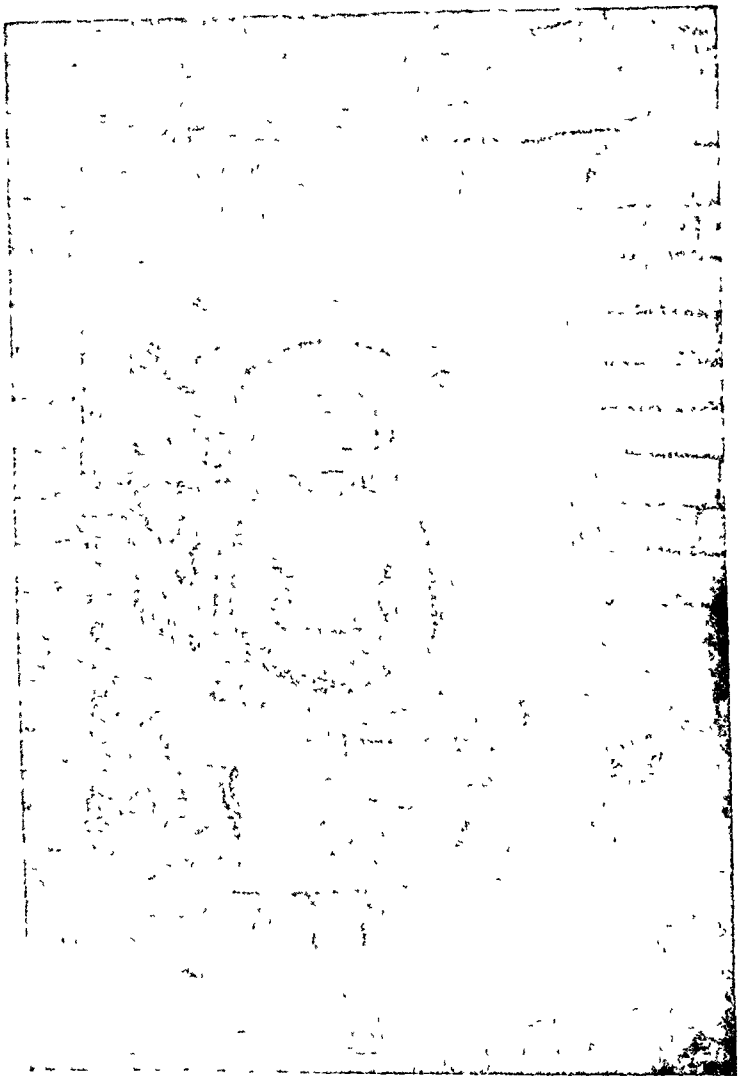
भ० महावीर स्वामी, वैभारगिरि राजगृह (विहार)
(जैन भवन, कलकत्ता के सौजन्य से)

विविध तीर्थ-कल्प के सम्बन्ध में मुनि जिनविजय का वक्तव्य

१. श्री जिनप्रभसूरिरचित कल्प-प्रदीप

कल्प-प्रदीप अथवा विशेषतया प्रसिद्ध विविध तीर्थ-कल्प नामक यह ग्रंथ जैन साहित्य की एक विशिष्ट वस्तु है। ऐतिहासिक और भौगोलिक दोनों प्रकार के विषयों की दृष्टि से इस ग्रंथ का बहुत कुछ महत्त्व है। जैन साहित्य ही में नहीं, समग्र भारतीय साहित्य में भी इस प्रकार का कोई दूसरा ग्रन्थ अभी तक ज्ञात नहीं हुआ। यह ग्रन्थ, विक्रम १४वीं शताब्दी में, जैनधर्म के जितने पुरातन और विद्यमान प्रसिद्ध-प्रसिद्ध तीर्थ स्थान थे उनके संबध की प्रायः एक प्रकार की 'गाईड-बुक' है। इसमें वर्णित उन उन तीर्थों का संक्षिप्त रूप से स्थान-वर्णन भी है और यथाज्ञात इतिहास भी है।

२. ग्रंथकार आचार्य

ग्रन्थकार अपने समय के एक बड़े भारी विद्वान् और प्रभावशाली जैन आचार्य थे। जिस तरह, विक्रम की १७वीं शताब्दी में, मुगलसम्राट अकवर बादशाह के दरबार में जैन जगद्गुरु हीरविजय सूरि ने शाही सम्मान प्राप्त किया था, उसी तरह जिनप्रभ सूरि ने भी १४वीं शताब्दी में तुघलक सुलतान महम्मद शाह के दरबार में बड़ा गौरव प्राप्त किया था। भारत के मुसलमान बादशाहों के दरबार में, जैन धर्म का महत्व बतलाने वाले और उसका गौरव बढ़ाने वाले, शायद, सबसे पहले ये ही आचार्य हुए।

इनकी प्रस्तुत रचना के अवलोकन से ज्ञात होता है, कि इतिहास और स्थल-भ्रमण से इनको बड़ा प्रेम था। इन्होंने अपने जीवन में भारत के बहुत से भागों में परिभ्रमण किया था।

गुजरात, राजपूताना, मालवा, मध्यप्रदेश, बराड़, दक्षिण, कर्णाटक, तेलंग, विहार, कोशल, अवध, युक्तप्रांत, और पंजाब आदि के कई पुरातन और प्रसिद्ध स्थानों की उन्होंने यात्रा की थी। इस यात्रा के समय, उस-उस स्थान के बारे में जो-जो साहित्यगत और परंपराश्रुत बातें उन्हें ज्ञात हुई उनको उन्होंने संक्षेप मे लिपिवद्ध कर लिया और इस तरह उस स्थान या तीर्थ का एक कल्प वना दिया। और साथ-ही में ग्रन्थकार को संस्कृत और प्राकृत दोनों भाषाओं, गद्य और पद्य दोनों ही प्रकार से, ग्रंथ-रचना करने का एकसा अभ्यास होने के कारण, कभी कोई कल्प उन्होंने सस्कृत भाषा में लिख लिया तो कोई प्राकृत में, और इसी कभी किसी कल्प की रचना गद्य में कर ली तो किसी की पद्य में। किसी एक स्थान के बारे में पहले एक छोटी सी रचना कर ली और फिर पीछे से कुछ अधिक वृत्त ज्ञात्त हुआ और वह लिपिवद्ध करने जैसा प्रतीत हुआ, तो उसके लिये परिशिष्ट के तौर पर एक कल्प या प्रकरण और लिख लिया गया। इस प्रकार भिन्न-भिन्न समय में और भिन्न-भिन्न स्थानों में, इन कल्पों की रचना होने से, इनमें किसी प्रकार का कोई क्रम नही रह सका।

३. ग्रंथ की रचना की कालावधि

ग्रन्थ की इस प्रकार खण्डशः रचना होते रहने के कारण सारे ही संग्रह के सम्पूर्ण होने में बहुत दीर्घ समय व्यतीत हुआ मालूम देता है। कम से कम ३० से अधिक वर्ष जितना काल लगा हुआ होगा। क्योंकि, जिन कल्पों मे रचना का समय-सूचन करने वाला संवत् आदि का उल्लेख है, उनमें सवसे पुराना संवत् १३६४ मिलता है, जो वैभारगिरि-कल्प [क० ११, पृ० २३] के अन्त में दिया हुआ है। ग्रन्थकार का किया हुआ ग्रन्थ की समाप्ति का सूचक जो अन्तिमोल्लेख है, उसमे संवत् १३८९ का निर्देश है।

इससे २५ वर्षों के जितने काल का सूचन तो, स्वयं ग्रन्थ के इन दो उल्लेखों से ज्ञात हो जाता है, लेकिन वैभारगिरि-कल्प के पहले भी कुछ कल्पों की रचना हो गई थी और संवत् १३८९ के बाद भी कुछ और कल्प या कृति अवश्य बनी थी, जिसका कुछ स्पष्ट सूचन ग्रन्थगत अन्यान्य उल्लेखों से होता है। इसी कारण से, ग्रन्थ-समाप्ति-सूचक जो कथन है वह किसी प्रति में तो कहीं मिलता हैं और किसी में कहीं। और यही कारण, प्रतियों में कल्पों की सँख्या का न्यूनाधिकत्व होने में भी है।

४. ग्रन्थगत विषय-विभाग

इस ग्रन्थ में भिन्न-भिन्न विषय या स्थानों के साथ सम्बन्ध रखने वाले सब मिलाकर ६०-६१ कल्प या प्रकरण हैं। इनमें से, कोई ११-१२ तो स्तुति-स्तवन के रूप में हैं, ६-७ चरित्र या कथा के रूप में हैं और शेष ४०-४१ न्यूनाधिक वस्तु स्थानवर्णनात्मक हैं। पुनः इन स्थानवर्णनात्मक कल्पों में से, चतुरशीतिमहातीर्थ-नामसंग्रह जो कल्प [क्रमांक ४५] है उसमें तो प्रायः सभी प्रसिद्ध और ज्ञात तीर्थस्थानों के नाम का निर्देश मात्र किया गया है। पार्श्वनाथ कल्प [क० ६] में पार्श्वनाथ के नाम से सम्बद्ध ऐसे कई स्थानों का उल्लेख है। उज्जयन्त अर्थात् रैवतगिरि का वर्णन करने वाले भिन्न-भिन्न ४ कल्प [क० २-३-४-५] हैं। स्तम्भनक तीर्थ और कन्यानयनमहावीर तीर्थ के सम्बन्ध में दो-दो कल्प हैं। इस प्रकार, अन्य विषय वाले तथा पुनरावृत्ति वाले जितने कल्प हैं उनको छोड़ कर, केवल स्थानों की दृष्टि से विचार किया जाय तो, इस ग्रन्थ में कुल कोई ३७-३८ तीर्थभूत स्थानों का, कुछ इतिहास या स्थान-परिचयगर्भित वर्णन दिया हुआ मिलता है।

५. स्थानों का प्रान्तीय-विभाग

यदि इन सब स्थानों को प्रान्त या प्रदेश की दृष्टि से विभक्त किया जाय तो इनका पृथक्करण कुछ इस प्रकार होगा—

गुजरात और काठियावाड़

शत्रुंजयमहातीर्थ [क० १]
उज्जयन्त (रैवतगिरि) तीर्थ [क० २-३-४-५]
अश्वावबोधतीर्थ [क० १०]
स्तम्भनकपुर [क० ५, ५९]
अणहिलपुरस्थित अरिष्टनेमि [क० २६]
अणहिलपुरस्थित कोकवसति [क० ४०]
शंखपुर तीर्थ [क० २७]
हरिकंखीनगर [क० २९]

युक्तप्रान्त और पंजाब

अहिच्छत्रपुर [क० ७]
हस्तिनापुर [क० १६, ५]
ढिल्ली या दिल्ली [क० ५१]
मथुरा [क० ९]
वाराणसी [क० ३८]
कौशांबी [क० १२]

दक्षिण और बराड

नासिक्यपुर [क० २८]
प्रतिष्ठानपत्तन [क० २३]
अन्तरिक्षपार्श्वतीर्थ [क० ५८]

राजपूताना और मालवा

अर्बुदाचलतीर्थ [क० ८]
सत्यपुर तीर्थ [क०१७]
शुद्धदन्तीगिरि [क०३१]
फलवर्द्धि तीर्थ [क० ६०]
ढिपुरी तीर्थ [क० ४३-४४]
कुडुङ्गेश्वर तीर्थ [क० ४७]
अभिनन्दनदेव तीर्थ [क० ३२]
वैभारगिरि [क० ११]

अवध और बिहार

पावा या अपापापुरी [क०२१,१४]
पाटलिपुत्र [क० ३६]
चंपापुरी [क० ३५]
कोटिशिला [क० ४१]
कलिकुंडकुर्कुटेश्वर [क० १५]
मिथिला [क० १९]
रत्नपुर [क० ७]
कांपिल्यपुर [क० २५]
अयोध्यापुरी [क० १३]
श्रावस्तीनगरी [क० ३७]

कर्णाटक और तेलंगण

कुल्पाक माणिक्यदेव [क० ५२-५७]
आमरकुंड पद्मावती [क० ५३]
कन्यानयमहावीर [क० २२-५१]

प्रस्तावना

भारतवर्ष की धार्मिक संस्कृति में 'तीर्थ' शब्द का अत्यधिक महत्त्व रहता आया है। वैयाकरणियों ने इस शब्द की व्युत्पत्ति 'तृ' धातु के साथ 'थक्' प्रत्यय लगाकर की है—'तीर्थते, अनेन वा, तृ प्लवन-तरणयोः, पातृ तुदि-इति थक्'—अर्थात्, जिसके द्वारा अथवा जिसके आधार से तिरा जाय वह 'तीर्थ' है। कोषकारों ने 'निपान-आगमयोस्तीर्थम्-ऋषिजुष्टे जले गुरौ' सूत्र द्वारा इस शब्द के अनेक अर्थ दिये हैं, किन्तु भाव वही है, अर्थात् जो तिरा दे या पार करा दे, अथवा तिरने या पार हो जाने में जो सहायक हो, साधक हो, वही 'तीर्थ' है। इसी आशय को व्यक्त करते हुए आदिपुराणकार भगवज्जिनसेनाचार्य ने कहा है—

"संसाराब्धेरपारस्य तरणे तीर्थमिष्यते।"

जो (दुःखरूप) संसार सागर (जन्म-मरण रूप सतत् संसरण) से पार कर दे वह तीर्थ कहलाता है।'

स्थावर, जंगम और भाव के भेद रूप तीर्थ तीन प्रकार के होते हैं—ऐसी पुण्यभूमियाँ या स्थल जो किसी पुण्य पुरुष, पवित्र घटना अथवा पुनीत स्मारक आदि के साथ सम्बन्धित हैं, स्थावर तीर्थ कहलाती हैं। अर्हत तीर्थंकर आदि इष्टदेव और सद्गुरु जंगम तीर्थ होते हैं। और तीर्थंकरों का प्रेरणाप्रद चरित्र, उनका उपदेश या जिनवाणी, भगवान अर्हत् का धर्मशासन, रत्नत्रय, अहिंसा अथवा क्षमादि आत्मधर्म तथा शुद्ध आत्म तत्त्व भावतीर्थ हैं। वैसे सामान्यतया धर्मतीर्थ, तीर्थक्षेत्र या तीर्थ शब्दों से स्थावर तीर्थों का ही बोध होता है। कहा भी है—

इक्षोर्विकाररसपृक्तगुणेन लोके,
पिष्टोऽधिकं मधुरतामुपयाति यद्वत् ।
तद्वच्च पुण्यपुरुषैरुषितानि नित्यं,
स्थानानि तानि जगतामिह पावनानि ।।

'जिस प्रकार लोक में इक्षुरस से बने गुड़ में गूंधा गया आटा मीठा हो जाता है, उसी प्रकार पुण्यपुरुषों द्वारा सेवन किये गये स्थान जगत के प्राणियों के लिए पावन स्थल बन जाते हैं ।'

वस्तुतः, वर्तमान कल्पकाल के ऋषभादि महावीर पर्यन्त चौबीसों तीर्थंकरों के गर्भ-जन्म-दीक्षा-ज्ञान-निर्वाण नामक पाँच कल्याणकों से धन्य हुए स्थान, उनके जीवन की अन्य महत्त्वपूर्ण घटनाओं से सम्बंधित स्थान, पुरातन मुनिपुंगवों की तपोभूमियाँ एवं सिद्धत्व-प्राप्ति के स्थान, विशिष्ट प्राचीन धार्मिक स्मारक, चैत्य, स्तूप, लयण, स्तंभ, मंदिर आदि, किसी धार्मिक महत्त्व की ऐतिहासिक धटना का स्थल, किसी सातिशय जिनप्रतिमा के चमत्कारों के कारण प्रसिद्ध हुआ स्थान, तथा ऐसे स्थान जहाँ पर्याप्त मात्रा में ऐसे धार्मिक कलावशेष या पुरातत्त्वावशेष उपलब्ध हैं जो उक्त स्थान के एक प्राचीन धार्मिक एवं सांस्कृतिक केन्द्र रहने के प्रायः सूचक होते हैं—ये सब जैन परम्परा के पवित्र एवं पूजनीय स्थावर तीर्थ है । उनकी एकाकी व ससंघ यात्रा करके श्रावक-श्राविकाएँ अपना जन्म सफल करते है । इन पवित्र स्थानों के पुनीत वातावरण में भक्तजनों के परिणाम निर्मल होते हैं । वहाँ उनका अधिकांश समय भी दान, पूजा, स्मरण, कीर्त्तन, स्वाध्याय, सामायिक, उपदेश श्रवण, व्रत, संयम, उपवास आदि धार्मिक क्रियाओं में व्यतीत होता है ।

ऐसे जैन तीर्थ सैकड़ों है और उत्तर में कैलाश पर्वत अपरनाम अष्टापद (जो तिब्बत में स्थित है) से लेकर दक्षिण में कन्या-

कुमारी पर्यन्त उत्तर-पश्चिम में तक्षशिला से लेकर पूर्वीतटवर्ती भुवनेश्वर पर्यन्त, और उत्तर-पूर्व में असम एवं बांगला देश से लेकर पश्चिमी समुद्रतट पर्यन्त इस महादेश भारतवर्ष में बिखरे पड़े हैं। देश का कोई राज्य, प्रान्त या प्रदेश ऐसा नहीं है जिसमें एक या एक से अधिक जैन तीर्थ विद्यमान न हों। अनेक प्राचीन तीर्थ विच्छिन्न अथवा विस्मृत भी हो गये और उनके स्थिति-स्थल को खोजना या चीन्हना दुष्कर हो गया है। कई की स्थिति या पहचान के विषय में मतभेद उत्पन्न हो गये और एकाधिक स्थानों से उनकी चीन्ह की जाने लगी। ऐसे भी अनेक तीर्थ हैं जो गत साधिक एक सहस्र वर्ष के बीच ही—पूर्व मध्यकाल एवं मध्यकाल में ही उदय में आये अथवा प्रसिद्धि को प्राप्त हुए हैं।

जिन तीर्थों की यात्रा का क्रम अविच्छिन्न बना रहा, उनकी स्थिति निर्भ्रान्त बनी रही, उनका अल्पाधिक विकास भी होता रहा और संरक्षण भी हुआ। किन्तु काल-दोष से—अनेक राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, भौगोलिक आदि कारणों से कई तीर्थों की यात्रा विच्छिन्न हो गई और वे विस्मृति के गर्भ में विलीन होते गये। ऐसी दशा में तीर्थविषयक साहित्य ही ऐसा आधार रह गया जिसके द्वारा अधुना अज्ञात या विस्मृत तीर्थों का नाम जीवित रहा और ज्ञात तीर्थों के सम्बन्ध में भी अनेक ऐसे तथ्य एवं वृत्त सुरक्षित रह सके जिन्हें लोकमानस ने विस्मृत कर दिया था और जिनके सत्यापन का भी अब प्रायः कोई उपाय नहीं रह गया है।

मूल प्रतिक्रमण पाठ के विसीहदंडक में, कुन्दकुन्द कृत प्राकृत भक्तियों एवं निर्वाणकांड में, पूज्यपादीय संस्कृत भक्तियों में यतिवृषभकृत तिलोयपण्णत्ति में, आगमसूत्रों और उनकी निर्युक्तियों, चूर्णियों, भाष्यों, टीकाओं में, पुराण एवं कथा साहित्य में, पट्टा-

वलियों-गुर्वावलियों में, तथा शिलालेखों में परम्परागत तीर्थों के विषय में अनेक फुटकर ज्ञातव्य प्राप्त होते हैं। परन्तु, तीर्थों के विषय में स्वतन्त्र रचनाएँ, यथा चैत्यवन्दन स्तोत्र, तीर्थ विशेषों के माहात्म्य, तीर्थकल्प, तीर्थमालाएँ आदि मध्यकाल में ही रची गयीं। मदनकीर्त्ति (लगभग १२४० ई०) कृत शासनचतुस्त्रिंशिका, उदयकीर्त्तिकृत निर्वाणभक्ति, प्रभाचन्द्रसूरि कृत प्रभावकचरित्र (१२७७ ई०) मेरुतुंग की प्रबन्धचिन्तामणि (१३०५ ई०) जिनप्रभसूरिका कल्प-प्रदीप (१३३२ ई०), राजशेखरसूरिकृत प्रबन्धकोश (१३४८ ई०), हंससोम की पूर्वदेशीय चैत्य-परिपाटी (१५०८ ई०), वर्धमानकृत दशभक्त्यादि संग्रह (१५४२ ई०), ब्र० ज्ञानसागर की तीर्थावली (१५५० ई० लगभग), विजयसागर की तीर्थमाला (१६०७ ई०), भ. विश्वभूषणकृत सर्वत्रैलोक्य जिनालय-जयमाला (१६६५ ई०), शीलविजयगणी की तीर्थमाला[1] (१६८९ ई०), महेश्वरसूरि का शत्रुञ्जय-माहात्म्य (१७०० ई०), गुणभद्रकृत तीर्थार्चनचन्द्रिका (ल. १७५० ई०), देवदत्त दीक्षित के सम्मेदाचल माहात्म्य एवं स्वर्णाचल माहात्म्य (१७८८ ई०), प्रभृति इस प्रकार की प्रमुख ज्ञात रचनाएँ हैं। कई अन्य (गिरनार आदि) तीर्थों के माहात्म्य, कई एक तीर्थों के पूजापाठ, जयमाला, स्तवन आदि, पं० भगवतीदास कृत अर्गलपुर-जिनदेवता (१५९४ ई०) जैसे स्थानीय विवरण भी प्राप्त होते हैं। वर्तमान शताब्दी में जैन तीर्थक्षेत्रों के जो अनेक विवरण-विवेचन प्रकाशित हुए हैं, वे ज्ञात एवं मान्य तीर्थों के वर्तमान रूप,

---

१ मुनि विजयधर्म सूरि ने स्वसम्पादित 'प्राचीन तीर्थमाला संग्रह' (१९२१ ई०) में ऐसी २५ तीर्थमालाओं का संग्रह प्रकाशित किया था। चैत्य-वन्दन स्तोत्रों के लिए देखिए शोधांक नं० २४ पृ. १३९-१४१ पर हमारा लेख।

तत्सम्बंधी अनुश्रुतियों एवं किंवदंतियों और उपरोक्त मध्यकालीन तीर्थ-साहित्य के आधार पर ही लिखे गये हैं।[1] इस विषय में सन्देह नहीं है कि उक्त मध्यकालीन रचनाओं में आचार्य जिन-प्रभसूरि कृत कल्पप्रदीप (विविध तीर्थ-कल्प) अनेक दृष्टियों से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है !

आचार्य जिनप्रभसूरि अपने युग के महान शासन प्रभावक आचार्य थे। गुजरात के मोहिलवाड़ी ग्राम निवासी, श्रीमाल ज्ञातीय, ताम्बीगोत्रीय श्रावक महाधर के पौत्र और रत्नपाल एवं सेतलदेवी के कनिष्ठ सुपुत्र सुभटपाल के रूप में १२६१ ई० के लगभग उनका जन्म हुआ था। ग्यारहवीं शती ई० के प्रथम पाद में आचार्य जिनेश्वरसूरि (प्रथम) द्वारा संस्थापित खरतरगच्छ के अष्टम आचार्य जिनेश्वरसूरि द्वितीय (१२२१-१२७४ ई०) थे। उनके समय में खरतरगच्छ दो शाखाओं में विभक्त हो गया— बृहत्‌शाखा के आचार्य उनके पट्टशिष्य जिनप्रबोध सूरि हुए, और दूसरे शिष्य, जिनसिंह सूरि, लघुशाखा के प्रथम आचार्य हुए। इन्ही जिनसिंह सूरि (१२२३-१२८४ ई०) के निकट सुभटपाल ने मात्र आठ वर्ष की बालवय में जिनदीक्षाली और शर्मतिलक नाम प्राप्त किया। गुरु के सान्निध्य में मनोयोग से विद्याभ्यास करके कुछ ही वर्षो में वह इतने बहुविज्ञ विद्वान हो गये कि उपाध्याय पद प्राप्त कर लिया और मात्र २३ वर्ष की आयु में, १२८४ ई० में जिनप्रभसूरि नाम से आचार्य पद पर आसीन होकर गुरु के पट्टधर हुए। इस प्रकार लघु खरतर शाखा के वह द्वितीय और

---

१. स्व. पं. नाथूराम प्रेमी ने अपने 'जैन साहित्य और इतिहास' (द्वि. सं., १९५६) में पृ. ४२२ से ४७७ पर्यन्त 'हमारे तीर्थक्षेत्र,' 'दक्षिण के तीर्थक्षेत्र' और 'तीनर्थो के विवाद' शीर्पकों से जैन तीर्थो के विपय मे अत्युत्तम ऊहापोह एवं विवेचन किया है।

सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण आचार्य हुए। वह एक बहुभाषाविज्ञ, विविध विषयनिष्णात, अनेक दीक्षाशिष्यों एवं विद्याशिष्यों के गुरु, विपुल साहित्य-प्रणेता, तीर्थोद्धारकर्त्ता, महान प्रभावक एवं राज्य मान्य जैनाचार्य थे। उनके द्वारा रचित साहित्य में व्याकरण, कोष, अलंकार, मन्त्रशास्त्र, तीर्थपरिचय, खण्डन-मंडन, वैधानिक रचनाएँ, चरित्र काव्य, स्तोत्र-स्तवन, आगमिक एवं अन्य टीकाएँ आदि, संस्कृत और प्राकृत, गद्य एवं पद्य की सैकड़ों कृतियाँ हैं। अकेले स्तोत्र ही उन्होंने ७०० रचे थे, ऐसी अनुश्रुति है। उनमें से लगभग ८५ तो अद्यावधि उपलब्ध हैं। संकीर्ण साम्प्रदायिक मनोवृत्ति से वह ऊपर थे। यही कारण है कि श्वेताम्बर सम्प्रदाय के एक (खरतर-लघु) शाखागच्छ के प्रधान आचार्य होते हुए भी कई अन्य गच्छों के साधु उनके प्रिय विद्याशिष्य थे। दिगम्बरों के साथ भी उनका अच्छा सद्भाव था, और जैनेतरों में हिन्दुओं के प्रति ही नहीं, मुसलमानों के साथ भी उनका समुचित सद्भाव रहा। अतएव जनता के प्रायः सभी वर्गो से उन्होंने आदर प्राप्त किया। वह ऐसे युगचेता, समयानुसारी प्रवृत्ति के पारखी और अवसर का लाभ उठाने में पटु थे कि दिल्ली के तुर्क सुलतान मुहम्मद बिन तुगलुक की उदार मनस्विता, विद्यारसिकता एवं दार्शनिक रुझान का लाभ उठाकर उन्होंने उससे सम्पर्क साधा, अपने चरित्र एवं प्रतिभा से उसे प्रभावित किया और उससे प्रभूत सम्मान प्राप्त किया। इतना ही नहीं, सुलतान की प्रसन्नता का का उपयोग उन्होंने जिन-शासन की प्रभावना, जिन-मन्दिरों, मूर्त्तियों और तीर्थो के संरक्षण तथा तीर्थो की ससंघ यात्राओं के लिए कई शाही फर्मान प्राप्त करने में किया। धर्म-प्रभावना के अपूर्व उत्साह में उन्होंने अपनी वृद्धावस्था, अस्वास्थ्य तथा जैन-मुनि के वर्षावास आदि नियमों की भी परवाह नहीं की। इस सुलतान के साथ उनका सम्पर्क चार-पाँच वर्ष ही रह पाया।

१३२८ में वह सर्वप्रथम उसके सम्पर्क में आये और संभवतया १३३३ ई० में, लगभग ७२ वर्ष की आयु में दिल्ली में ही दिवंगत हो गये थे।[1]

विविध तीर्थ-कल्प, जिसका अपर, बल्कि मूल, नाम 'कल्प-प्रदीप' हैं,[2] आचार्य जिनप्रभसूरि की छोटी-बड़ी शताधिक रचनाओं में अनेक दृष्टियों से सर्वोपरि महत्त्व रखता है। लोक में उनकी प्रसिद्धि मुख्यतया इसी ग्रन्थ के कर्त्ता के रूप में है। जैन विद्वानों के अतिरिक्त अनेक जैनेतर प्राच्यविद एवं इतिहासकार भी उससे परिचित हुए हैं, और इसमें चर्चित तीर्थों के विवेचन में तथा उसमें उल्लिखित कतिपय अनुश्रुतियों की ऐतिहासिकता पर ऊहापोह

---

१ आचार्य जिनप्रभसूरि का संक्षिप्त-जीवन परिचय मुनि जिनविजय जी द्वारा सम्पादित एवं सिंधी जैन ग्रन्थमाला, कलकत्ता से १९३४ ई० में प्रकाशित 'विविध तीर्थ-कल्प' (मूल) की भूमिका मे, श्री अगरचन्द नाहटा द्वारा 'विविध मार्ग-प्रपा' के प्रारम्भ में, तथा श्री लालचन्द भगवान गांधी की गुजराती पुस्तक 'जिनप्रभसूरि अने सुलतान मुहम्मद' मे प्राप्त होता है। श्री अगरचन्द नाहटा द्वारा १९७५ में प्रकाशित एवं महोपाध्याय विनयसागर जी द्वारा लिखित पुस्तक 'शासन प्रभावक आचार्य जिनप्रभ और उनका साहित्य' में तो आचार्य के जीवनवृत्त, गुरु-शिष्यपरम्परा, व्यक्तित्व, सुलतान मुहम्मद तुग़लक़ के साथ उनके सम्बन्धों, उनके चमत्कारों और प्रभावक कार्यो तथा उनकी साहित्यिक कृतियों पर विस्तारपूर्वक विचार किया गया है।

२. ग्रन्थ की अन्त्य प्रशस्ति मे 'कल्पप्रदीपनामायं ग्रन्थो विजयतां चिरम्', तथा उसके उपरान्त दी हुई पुष्पिका में 'इति श्रीकल्प-प्रदीप ग्रन्थः समाप्तः' रूप से स्वयं ग्रन्थकार ने अपनी कृति का नाम 'कल्पप्रदीप' ही सूचित किया है।

करने में इस ग्रन्थ का उपयोग हुआ है। लगभग एक सौ वर्ष पूर्व पीटरसन ने संस्कृत के हस्तलिखित ग्रन्थों की अपनी चतुर्थ रिपोर्ट में विविध तीर्थ कल्प का उल्लेख किया था; एस. पी. पंडित ने वाक्पतिकृत प्राकृत काव्य 'गउडवहो' के स्वसम्पादित संस्करण की भूमिका में विविध तीर्थ-कल्प के मथुरापुरी कल्प में वर्णित बप्पभट्टिसूरि एवं आमराज के प्रसंग का उल्लेख किया था, डा० बुहलर ने मथुरा के स्वसंपादित शिलालेखों की प्रस्तावना में तथा 'ए लीजेन्ड आफ़ दी जैना स्तूप एवं मथुरा' (१८९७ ई०) में उसका उपयोग किया है। कालान्तर में पं. नाथूराम प्रेमी, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, प्रो० कृष्णदत्त बाजपेयी, नाहटा जी, स्वयं हमने, तथा अन्य अनेक विद्वानों ने जिनप्रभसूरि के विविध तीर्थ-कल्प का उपयोग किया है।

अन्त्य प्रशस्ति के अनुसार यह ग्रन्थ 'भूमंडल के इन्द्र (अधिपति या स्वामी) श्री हम्मीर महम्मद (अमीर अर्थात् सुलतान, मुहम्मद बिन तुगलुक) के राज्य मे, योगिनीपत्तन (योगिनीपुर, दिल्ली) में भाद्रपद कृष्ण दशमी बुधवार, विक्रम संवत् १३८९ (सन् १३३२ ई०) में पूर्ण हुआ था। अनुष्टुपमान से इसका श्लोक परिमाण ३५६० था। ग्रन्थ मे कुल ६२ कल्प या प्रकरण संकलित है, जिनमें से केवल ६ के अन्त में उनकी रचना-तिथि दी गयी है—वैभारगिरि-कल्प—क्रमांक ११ (१३०७ ई०), शत्रुंजय तीर्थ-कल्प—क्रमांक १ (१३२८ ई०), ढिपुरीस्तव-क्रमांक ४४ (१३२९ ई०) अपापा वृहत्कल्प—क्रमांक २१ (१३३० ई०), हस्तिनापुर तीर्थ स्तवन—क्रमाक ५० (१३३१ ई०), और श्री महावीरगणधर-कल्प—क्रमांक ३९ (१३३२ ई०)। शेष कल्पों में उनकी रचना की तिथि सूचित नहीं की गई है। किन्तु कुछ कल्पों की रचना-तिथि अनुमान की जा सकती है, उनमें दिये गये संदर्भो के आधार पर,

यथा सत्यपुर-सांचौर तीर्थ कल्प (नं० १७) १३१० ई० के बाद कभी रचा गया है, अर्बुदगिरि कल्प (नं० ८) १३२१ ई० के उपरान्त रचा गया, और कन्यानयनीय महावीर प्रतिमा कल्प (न० २२) १३२८ ई० के उपरान्त, संभवतया १३३१-३२ ई० में रचा गया। इस कल्प का पूरक (न० ५१) तो आचार्य के देहान्त के पर्याप्त समय बाद रचा गया प्रतीत होता है—उसे उनके विद्या-शिष्य संघतिलक सूरि के पट्टधर विद्यातिलक अपर नाम सोम-तिलक सूरि ने रचा था, जिनके कुमारपालप्रबन्ध का रचनाकाल १३६७ ई० है। अस्तु, कल्प-प्रदीप के विभिन्न कल्पों की रचना आचार्य ने १३०७ से १३३२ ई० पर्यन्त लगभग २५ वर्षा के बीच की थी। दो-चार की रचना १३०७ के पूर्व भी की गयी हो सकती है। रचना-स्थलों में न० १ और २२ दिल्ली में रचे गये प्रतीत होते हैं, न० २१ देवगिरि में रचा गया और न० ५० हस्तिनापुर में। शेष में से कुछ विवक्षित तीर्थ स्थानों पर भी रचे गये हो सकते हैं और अन्यत्र भी। भाषा की दृष्टि से २२ कल्प संस्कृत में और शेष प्राकृत में रचित हैं।

पुस्तकगत कुल ६३ कल्पों में एक तो अन्त्य प्रशस्ति के रूप में है, एक (न० ४५) में ८४ तीर्थों की सूची है, कई कल्प स्तवन-स्तोत्र आदि के रूप में हैं, नन्दीश्वर द्वीप जैसे मिथिक स्थलों के तथा अष्टापद[1] जैसे अनिश्चित आकार-प्रकार व स्थिति के तीर्थों के भी कल्प हैं। कई तीर्थों पर एकाधिक कल्प रचे हैं, यथा उज्जयन्त (रैवतगिरि या गिरनार) पर चार, प्रतिष्ठान पर तीन और पावापुरी, ढींपुरी, हस्तिनापुर, अष्टापद, एवं स्तंभनक

---

१. इस पर्वत की ऊँचाई ८ योजन (लगभग १०० किलोमीटर) और स्थिति अयोध्या से १२ योजन (लगभग १५० कि० मी०) उत्तर में बताई है—इन दोनों ही बातों का प्राचीन परम्परा से सम्बन्ध है।

में से प्रत्येक पर दो-दो। कन्यानयन-महावीर पर दूसरा कल्प (न० ५१) तथा पंचकल्याणक स्तवन (न० ५६) अन्यकर्तृक है। इस प्रकार कुल केवल ३६ विभिन्न तीर्थ स्थानों के कल्प इस ग्रन्थ में प्राप्त हैं। आचार्य ने कर्त्तारूप में अपना नाम अथवा संकेत १९-२० कल्पों में ही किया है। संभावना यही है कि शेष भी उन्होंने ही रचे होंगे, किन्तु यह निश्चयपूर्वक कहना कठिन है कि उनमें से कोई भी भिन्नकर्तृक नहीं है। कल्प न० ४५ में तन्त्र के जानकारों से प्राप्त सूचना के आधार पर जिन प्रसिद्ध ८४ तीर्थो की सूची दी हैं, उसके विषय में स्वयं स्वीकार किया है कि 'इनमें से कुछ ही देखे है, शेष के विषय में सुना है।' इस सूची में एक-एक तीर्थ का कई बार उल्लेख हुआ है, एक स्थान से सम्बंधित कई तीर्थो का भी पृथक्-पृथक् उल्लेख किया है, और कई तीर्थ, यथा क्रौंचद्वीप, हंसद्वीप, लंका, पाताल लंका, त्रिकूट गिरि, कैलाश, अष्टापद आदि भारतवर्ष के बाहर हैं। जैन परम्परा में मान्य सभी तीर्थ इस सूची में समाविष्ट नही हैं, और अधिकांश तीर्थ अतिशय क्षेत्र हैं।

जिन विभिन्न वास्तविक ३६–३७ तीर्थ स्थानों का परिचय आचार्य ने इस कल्प-प्रदीप में दिया है वे गुजरात, राजस्थान, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, पंजाब–हरयाणा, विहार, महाराष्ट्र, आन्ध्र और कर्णाटक जैसे विभिन्न प्रदेशों में अवस्थित है। उनमें से अधिकतर ऐसे है जिनकी आचार्य ने स्वयं यात्रा की लगती है, और कई ऐसे हैं जिनकी यात्रा तो वे नहीं कर पाये किन्तु उनके विषय में जैसा जाना-सुना, लिख दिया है। जिन तीर्थो को उन्होंने स्वयं देखा उनके विषय में तो बहुत कुछ जैसा देखा वैसा लिखा, साथ ही स्थानीय किंवदंतियों अथवा पूर्ववर्ती साहित्यिक या मौखिक अनुश्रुतियों से जो जाना, वह भी लिख

दिया। ऐसी स्थिति में कल्प के अन्त में बहुधा यह भी स्पष्ट संकेत कर दिया कि 'जैसा सुना या जाना है, वैसा लिखा है।' अनेक वार तत्कालीन वस्तुस्थिति, ऐतिहासिक तथ्य, दंतकथाओं आदि पर आधारित सूचनाएँ, विशेषकर स्थान या प्रतिमा विशेष से सम्बंधित अतिशयों, चमत्कारों आदि के कथन, कुछ इस प्रकार मिश्रित हो गये हैं कि आधुनिक अन्वेषक के लिए उनमें से तथ्यातथ्य को पृथक्-पृथक् करना दुष्कर हो सकता है। तथापि, आचार्य की मनोवृत्ति, व्यक्तित्व, शैली और संकेतों की पकड़ पा लेने से यह कार्य बहुत कुछ सुगम हो जाता है।

पूरे ग्रन्थ के विश्लेषण से अनेक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक तथ्य उपलब्ध होते हैं, अनेक ऐसी ऐतिहासिक अनुश्रुतियाँ भी प्राप्त होती हैं जिनका सत्यापन असंभव नहीं है, और जितने अंशों में वे सत्यापित हो जाती हैं, इतिहास-निर्माण में अतीव उपयोगी होंगी। तीर्थों के परिचय में अनेक महत्त्वपूर्ण भौगोलिक सूचनाएँ भी प्राप्त होती हैं। उस युग की लोकदशा, जैन संस्कृति, कतिपय धार्मिक एवं सामाजिक प्रथाओं, आर्थिक एवं राजनैतिक परिस्थिति पर साथ ही श्वेताम्बरों एवं दिगम्बरों के, तथा जैनों और अजैनों के पारस्परिक सम्बंधों पर भी अच्छा प्रकाश पड़ता है। इस ग्रन्थ से ऐसा प्रतीत होता है कि उस काल में ये सम्बंध अपेक्षाकृत अधिक सौहार्द एवं प्रीतिपूर्ण थे। दिगम्बर-श्वेताम्वर सम्प्रदाय का भेद चिरकालीन एवं रूढ़ हो चुका था, परन्तु अभी तक मन्दिर, मूर्त्तियाँ एवं तीर्थस्थान प्रायः अभिन्न थे। उभय सम्प्रदायों के श्रावक-श्राविकाएँ ही नहीं, साधु भी बहुधा साथ-साथ उनका धर्मलाभ उठाते थे। यदि गुजरात, राजस्थान आदि के कतिपय तीर्थों के प्रति श्वेताम्बरों का विशेष आकर्षण था तो महाराष्ट्र, आन्ध्र, कर्णाटक आदि के तीर्थों पर दिगम्बरों का विशेष यातायात था, किन्तु ऐसा कोई भेद उस समय तक उदय में आया नहीं

लगता कि अमुक तीर्थक्षेत्र श्वेताम्बर है, अमुक दिगम्बर है। जिन मदिरों एवं जिन-प्रतिमाओं के विषय में भी यही स्थिति थी। जैनेतरों के लिए तो दिगम्बरों और श्वेताम्बरों में कोई भेद ही नहीं था—दोनों समान रूप से 'सरावगान' (श्रावक) कहलाते थे, क्योंकि जैन गृहस्थों के लिए उस काल में यही शव्द वहुप्रचलित था।

आचार्य जिनप्रभ शास्त्रज्ञ विद्वान थे, साथ ही जिनभक्त, तीर्थभक्त श्रद्धालु साधु थे। मन्त्र-तन्त्र, चमत्कारों और अतिशयों मे उनका सहज विश्वास था। वह युग भी तांत्रिक युग था, नाथ-सम्प्रदायी जोगियों का यत्र-तत्र वाहुल्य था, मुसल्मान सूफी फकीर भी चमत्कारों का आश्रय लेते थे। इस प्रकार के विश्वास उस काल में लोकप्रचलित थे। विविध तीर्थकल्प में वर्णित अनेक चमत्कार ऐसे हैं, जिनकी विभिन्न जिन प्रतिमाओं के प्रसंग में पुनरावृत्ति हुई लगती है, और कई एक अन्यत्र भी हुए सुने गये हैं। आज के वैज्ञानिक दृष्टि से प्रभावित तार्किक मानस को वे अधिकांशतः कपोलकल्पित लग सकते हैं, किन्तु शायद उस युग में किसी को उनमे अतिशयोक्ति प्रतीत नहीं होती थी। धर्म की प्रभावना अथवा जनसामान्य की भक्ति को सुदृढ़ करने के उद्देश्य से उक्त अतिशयों एवं चमत्कारों का आचार्य ने पग-पग पर वर्णन किया प्रतीत होता है। उन्हें स्वयं को इस प्रकार की बातों में वस्तुतः कितनी आस्था थी, यह कहना कठिन है। कम से कम जहाँ दूसरी परम्पराओं के वैसे अतिशयोक्तिपूर्ण कथन उन्होंने किये है, यथा 'प्रतिष्ठानपुराधिप सातवाहन नृप-चरित्र' (न० ३४) में, वहाँ उन्होंने अपने परीक्षाप्रधान जैन मस्तिष्क के अनुरूप स्पष्ट कह दिया कि 'यहाँ जो कुछ असभव बातें हैं वे अन्य दर्शन में कही गयी है—इस प्रकार की असंगत बातें जो हेतु से सिद्ध

नहीं होती उन्हें जैन नहीं मानते' (अत्र च यदसम्भाव्यं क्वचिद्दूचे तत्र परसमय एव मन्तव्यो हेतुर्यन्नासंगतवाग्जनो जैनः)। काश, अपनी परम्परा से सम्बंधित चमत्कारों आदि के विषय में भी आचार्य ऐसी परीक्षाप्रधान तार्किक दृष्टि रख पाते।

उर्ज्जयन्त (गिरनार), आर्हच्छत्रा, मथुरा, कौशाम्बी, अपापापुरी (पावापुर), हस्तिनापुर, मिथिला, रत्नवाहपुर (रत्नपुरी), श्रावस्ती, वाराणसी प्रभृति सर्वमान्य प्रसिद्ध तीर्थों का जिनप्रभसूरि ने जितना और जो आँखों देखा वर्णन किया है, उससे स्पष्ट है कि उन क्षेत्रों में उस समय ऐसे अनेक धार्मिक स्मारक आदि विद्यमान थे जिनका अब वहाँ कोई चिह्न भी शेष नहीं है। उनसे सम्बंधित ऐसे कई अतिशय या चमत्कार भी, जो तब प्रायः प्रत्यक्ष अनुभव में आते थे, अब चिरकाल से विस्मृत हो चुके हैं।

भगवान महावीर के पूर्ववर्ती कालों में घटित घटनाओं के वर्णन मिथिक प्रकृति की पौराणिक अनुश्रुतियाँ मात्र हैं, जो धार्मिक श्रद्धा के आधार पर ही मान्य किये जा सकते हैं। परन्तु भगवान महावीर के समय से लेकर लगभग १००० ई० पर्यन्त की अनुश्रुतियाँ बहुधा इतिहासाधारित हैं यद्यपि उनमें अनुमान, कल्पना और पौराणिकता का भी अल्पाधिक मिश्रण है। उनमें निहित तथ्यांशों के सत्यापन की आवश्यकता है। उदाहरणार्थ (कल्प नं० २६ में) वि० सं० ५०२ में अन्हिलपुर पाटन में एक पेड़ के नीचे तीन प्रतिमाओं का भूगर्भ से निकलना; म०स० (वीर निर्वाण) ९९३ (सन् ४६६ ई०) कालिकाचार्य द्वारा संवत्सरी की तिथि में परिवर्तन (न० २३)—कुछ विद्वान् इन कालकाचार्य को ईसापूर्व प्रथम शती के मध्य में लगभग रखते हैं। प्रतिष्ठानपुर की स्थापना और सातवाहन नरेशों का चरित्र (न० २३, ३३, ३४) तथा श्रीपुर तीर्थ एवं कुष्ठी राजा श्रीपाल का आख्यान (न० ५८) ऐतिहासिक दृष्टि से विचारणीय हैं। कोल्लपाक माणिक्यदेव

(न० ५७) के प्रसंग में वि० सं० ६८० में म्लेच्छों के प्रवेश की वात तथा कन्नड देश के कल्याणनगर में शंकर नामक जिनेन्द्र-भक्त राजा के होने की वात भी सत्यापन की अपेक्षा रखती हैं। वीर सं० १३०० (सन् ७७३ ई०) में सांचौर में कन्नौजनरेश द्वारा जिनालय वनवाने का जो उल्लेख है (न० १७) उसका सकेत संभवतया भिनमाल के गुर्जर प्रतिहार नरेश वत्सराज की ओर है, किन्तु उस समय वह कन्नौज का राजा नहीं था—वहाँ तव आयुधवंशी राजाओं का राज्य था। इसी कल्प के अनुसार वि० सं० ८४५ (७८८ ई०) में वलभी रांका सेठ गज्जणपति हम्मीर को ससैन्य लाया था, जिसने वलभी भंग किया और उसके राजा शिलादित्य को मार डाला—किन्तु उस समय तक गज़नी पर मुसल्मानों का अधिकार ही नहीं हुआ था। ऐसा कोई आक्रमण उस काल में सौराष्ट्र पर यदि हुआ तो वह सिंध के किसी अरव अमीर (सरदार) का हुआ हो सकता है। वि. सं. १०८१ (सन् १०२४ ई०) में जो 'एक अन्य गजनीपति गुजरात भंग करके सांचौर पहुंचा' वताया है, वह महमूद ग़जनवी ही हो सकता हैं उसके द्वारा उस वर्ष मे सोमनाथ एवं गुजरात पर भीषण आक्रमण की घटना इतिहास सिद्ध है। मथुरापुरी-कल्प (न० ९) के अनुसार वि० सं० ८२६ (सन् ७६९ ई०) में आमराय-सेवित वप्पभट्टि ने मथुरातीर्थ का उद्धार किया था और वहाँ महावीर विंव स्थापित किया था। यह महत्वपूर्ण घटना तथ्याधारित प्रतीत होती है, किन्तु जिनप्रभसूरि तथा उनके उत्तरवर्ती प्रवन्धकारों द्वारा वर्णित वप्पभट्टि चरित्र में भिन्न समयों, क्षेत्रों तथा व्यक्तियों से सम्वन्धित वृत्त कुछ इतने उलझ गये हैं कि उन्हें ज्यों का त्यों मान लेने से वे इतिहास सिद्ध नहीं होते और इसी कारण आधुनिक इतिहासकारों में उनके विषय में पर्याप्त मतभेद हैं—कोई कन्नौजनरेश यशोवर्मन (६९०-७२० ई०) के साथ,

कोई उसके पुत्र या उत्तराधिकारी के साथ, तो कोई कन्नौज के इन्द्रायुध प्रभृति किसी आयुधवंशी नरेश के साथ और कई एक गुर्जर प्रतिहार नरेश नागभटद्वि० नागावलोक के साथ उक्त आमराज का समीकरण करते हैं। इस प्रसंग का विस्तृत विवेचन स्वतंत्र लेख का विषय है। कल्प न० ५३ का आमरकुंड आन्ध्र-प्रदेश का प्रसिद्ध जैन तीर्थ रामकोंड (रामगिरि) या रामत्तीर्थ प्रतीत होता है[1], और मुरंगल नगर ककातीय नरेशों की सुप्रसिद्ध राजधानी वारंगल। इस प्रसंग में आचार्य ने ककातीय वंश की उत्पत्ति और दिगम्बराचार्य मेघचन्द्र की सहायता से उक्त राज्य वंश के प्रथम पुरुष माधवराज द्वारा राज्य की स्थापना की घटना का उल्लेख किया है जो ऐतिहासिक दृष्टि से बड़ी महत्त्वपूर्ण है दक्षिण भारत के गंग, सांतर, होयसल आदि कई अन्य राज्य-वंशों की भाँति यह राज्य भी युगचेता जैन गुरुओं के प्रसाद से अस्तित्व में आया था। उसकी उत्पत्ति का विवरण जिनप्रभसूरि ने स्वयं 'आमरकुंड' (रामकोण्ड) की एक गुहा के द्वार पर उत्कीर्ण शिलालेख में पढ़ा था—घटना भी उनके समय से लगभग दो-डेढ़ सौ वर्ष पूर्व की ही थी। उसे विश्वसनीय न मानने का कोई कारण नहीं है। क्योंकि इस घटना का उल्लेख अन्यत्र देखने में नहीं आया और शायद वह शिलालेख भी अब प्राप्त नहीं हैं, विविध तीर्थ कल्प के इस विवरण का महत्त्व पर्याप्त बढ़ जाता है।

लगभग १००० ई० से लेकर आचार्य के जीवन काल पर्यन्त समय से सम्बंधित जितने तथ्यों, घटनाओं, व्यक्तियों और तिथियों का उल्लेख विविध तीर्थ-कल्प में हुआ है, वे सब प्रायः शुद्ध

---

१. देखिए हमारी पुस्तक 'दो जैन सोर्सेज आफ़ दी हिस्टरी आफ एन्शेन्ट इण्डिया' पृ० २०६, तथा ना. रा. प्रेमी—'जैन साहित्य और इतिहास', पृ० ४४७.

ऐतिहासिक हैं, सत्यापित हैं अथवा सरलता से हो सकती हैं। वे अधिकतर आचार्य की मातृभूमि गुजरात से सम्बद्ध हैं, तथा जो अन्य प्रदेशों से भी सम्बद्ध हैं वे भी प्रायः प्रमाणिक हैं, साथ ही उनमें से अनेक पर्याप्त महत्त्वपूर्ण है—१०२४ ई० में गजनीपति (महमूद गजनवी) का गुजरात भंग करके सांचौर पहुँचना; १०३१ ई० में आबू पर विश्वविश्रुत विमलवसही का निर्माण; ११२४ ई० में, फलवर्द्धितीर्थ (न० ६०) के प्रसंग में राजगच्छी शीलभद्रसूरि के पट्टधर धर्मघोषसूरि एवं महावादी दिगम्बर गुणचन्द्र का शास्त्रार्थ तथा १२वी शती ई० के अन्त के लगभग शहाबुद्दीन गोरी द्वारा उक्त तीर्थ के भंग किये जाने की घटना; ११२८ ई० में रा खेगांर के पराभव के उपरान्त सज्जन मन्त्री द्वारा गिरनार पर नेमि जिनालय का निर्माण और मालव के भावड़साह द्वारा उसका स्वर्णकलश कराना, तथा ११६३ ई० में कुमारपाल के दण्डनायक द्वारा उक्त पर्वत पर सीढ़ियों का निर्माण (न० ५); ११६० ई० में आबू पर कुमारपाल द्वारा महावीर चैत्यालय का और १२३१ में वहाँ वस्तुपाल तथा तेजपाल द्वारा लूणिगवसहो का निर्माण तथा कालान्तर में म्लेच्छों (मुसल्मानों) द्वारा आबू के दोनों प्रधान मंदिरों की तोड़-फोड़ (न० ८), १२०९ ई० में देवाणंदसूरि द्वारा पाटन की कोकावसति की प्रतिष्ठापना और कालान्तर में मालवा के सुलतान द्वारा चालुक्य भीम द्वि० के समय में पाटन का भंग किया जाना (न० ४०) इत्यादि। वि० सं० ८०२ में अणहिलपुरपाटन की स्थापना और उस नगर से तदनन्तर क्रमशः राज्य करने वाले चावड़ा, सोलंकी (चौलुक्य) एवं वघेले राजाओं की राज्यावलि (न० २६) इतिहाससिद्ध है, उसी प्रकार मन्त्रीश्वर वस्तुपाल एवं तेजपाल भ्रातृद्वय का यशस्वी चरित्र एवं कार्यकलापों का विवरण भी (न० ४२) सिवाय इसके कि व्यय की गई विभिन्न द्रव्यराशियों

एवं निर्माण आदि कार्यों की संख्याएँ अतिशयोक्तिपूर्ण प्रतीत होती हैं।

स्वयं जिनप्रभसूरि से तथा उनके और दिल्ली के सुलतान मुहम्मद बिन तुगलुक के सम्पर्क से सम्बन्धित तथ्य कन्यानयनीय महावीरप्रतिमा-कल्प (न० २२) में प्राप्त होते है और ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। कन्यानयन (कन्नान ?)[1] की उक्त अतिशयपूर्ण महावीर-प्रतिमा की प्रतिष्ठा तथा तदनन्तर उसके साथ घटी घटनाओं में प्रायः कोई अतिशयोक्ति प्रतीत नहीं होती। इस कल्प में आचार्य ने स्वयं जो कुछ वर्णन किया है उसे प्रामाणिक एवं विश्वसनीय स्वीकार करना चाहिए। इल्प के परिशेष (न० ५१) में विद्यातिलक ने तथा अन्य परवर्ती लेखकों ने मूल वर्णन को चमत्कारों आदि की निरन्तर वृद्धि द्वारा पल्लवित किया और उत्तरोत्तर अतिशयोक्तियों से काम लिया प्रतीत होता है, तथापि विद्यातिलक के 'परिवेष' में कई तथ्य ऐसे है जो आचार्य जिनप्रभ के अपने वर्णन के पूरक हैं।

इस्लाम धर्म का उदय सुदूर अरब की मरुभूमि में पैगम्बर हजरत मोहम्मद द्वारा ७ वीं शती ई० के प्रारंभ में हुआ, और एक सौ वर्ष के भीतर ही वह धर्म प्रायः पूरे मध्य एशिया पर छा गया तथा पैगम्बर के उत्तराधिकारी खलीफाओं का राज्याधिकार भारतवर्ष के सिन्ध प्रदेश तक विस्तृत हो गया। किन्तु भारत के मध्यदेश पर सीधा आक्रमण करने वाला पहला मुसलमान गजनी का अमीर महमूद था, जिसने ११वीं शती ई० के प्रथम पाद में लगभग १७ आक्रमण करके एवं पश्चिमी भारत में भयंकर लूट-

---

१. इस स्थान की पहचान श्री अगरचंद नाहटा ने पूर्वी पंजाब में दादरी के निकटस्थ 'कन्नान' से की है, जो अन्य सब विकल्पों की अपेक्षा अधिक संगत प्रतीत होती है।

मार की और अनेक प्रसिद्ध मदिरों एवं देवमूर्त्तियों को भग्न किया। उसके उत्तराधिकारियों के समय में कुछ छुटपुट हमले मध्यप्रदेश पर हुए, किन्तु उनका राज्यविस्तार प्रायः पश्चिमी पंजाब तक ही सीमित रहा।[१]

१२वी शती ई० के अन्तिम दशक में गजनी के सुलतान शिहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी ने भारतविजय के उद्देश्य से मध्यप्रदेश पर आक्रमण किये और अन्ततः दिल्ली-अजमेर के चौहान नरेश पृथ्वीराज को तथा कन्नौज के गाहडवाल राजा जयचन्द को समाप्त करके तथा मोहवा के परमाल चन्देल और गुजरात आदि के कई अन्य राजाओं को पराजित करके वह दिल्ली को केन्द्र बनाकर उत्तरभारत में मुसलिम राज्य की स्थापना करने में सफल हुआ। अनुश्रुति है कि इस सुलतान ने अपनी मलिका के आग्रह पर एक दिगम्बर जैन मुनि को अपने दर्बार में बुलाकर सम्मानित किया था। कुछ के अनुसार यह घटना अजमेर में घटी थी और वह साधु भट्टारक वसन्तकीर्त्ति थे, जिन्हे उस अवसर पर खण्ड-वस्त्र धारण करना पड़ा था—कहते है कि तभी से वस्त्रधारी दिगम्बर भट्टारकों की प्रथा प्रचलित हुई।[२]

वस्तुतः, विदेशी, विजातीय, विधर्मी एवं अजनवी मुसल्मानों और उनके धर्म एवं संस्कृति के प्रविष्ट होने तथा उनकी राज्य-सत्ता के देश के हृत्स्थल में स्थापित हो जाने के अनेक तत्काल एवं चिरव्यापी क्रान्तिकारी परिणाम हुए, जिनने देश की राज-नीति और अर्थव्यवस्था को ही नहीं, उसकी संस्कृति, धर्मो और

---

१. देखिए—भारतीय इतिहास : एक दृष्टि (द्वि० सं०, १९६६ ई०), पृ० ३९३–४०० ।

२. वही, पृ० ४००–४०४; तथा 'प्रमुख ऐतिहासिक जैन पुरुष और महिलाएं' (१९७५), पृ० २३८–२३९ ।

समाजव्यवस्था को भी अत्यन्त प्रभावित एवं प्रवर्तित किया। धन, भोग और राज्य की लिप्सा ही उन नवागतों में सर्वोपरि थी, और उसकी पूर्त्ति के लिए—अपनी सत्ता एवं संख्या के संरक्षण और विस्तार के लिए वे बहुधा धर्म और धर्मोन्माद को प्रबल अस्त्र बनाते थे, जिसके कुफल देशज जनता को भोगने पड़ते थे। तथापि, अत्यधिक बहुसंख्यक भारतीयों पर निरन्तर क्रूर अत्याचार करते रहना और उनके धर्म, संस्कृति एवं रीति-रिवाजों की सर्वथा अवहेलना करना, स्वयं मुट्ठी भर मुसल्मान सत्ताधारियों के हित में नहीं था, व्यावहारिक और उतना सरल भी नहीं था। मुल्ला-मौलवियों की सदैव यह चेष्टा रहती थी कि राज्यशासन पूर्णतया मजहबी-मुसल्मानी हो जाय, जो केवल इसलाम और मुसल्मानों के ही लाभ के लिए हो और जिसमें काफिरों (अन्य धर्मियों) के प्रति किसी प्रकार की भी उदारता एवं सहिष्णुता न बरती जाय, तथा सुलतान जो कुछ भी करे, 'शरह' के अनुसार अर्थात् उक्त धर्माधिकारियों के आदेश-निर्देश के अनुसार ही करे। किन्तु, शासकों में जो महत्त्वाकांक्षी, नीति-चतुर और व्यावहारिक हुए उन्होंने मुल्ला-मौलवियों की उक्त चेष्टाओं का सदैव प्रतिरोध किया और उन्हें सीमित रखने का यथाशक्य प्रयत्न किया।

मुहम्मदगोरी के पश्चात् उसके कुतुबुद्दीन ऐबक आदि गुलाम-वंशी सुल्तानों ने १२०६ से १२९० ई० तक दिल्ली में शासन किया। तदनन्तर जलालुद्दीन खिलजी ने नये वंश की स्थापना की पूर्ववर्ती सुलतानों की अपेक्षा वह अधिक नरम प्रकृति का, उदार और सहिष्णु था। मुल्ला-मौलवियों की धार्मिक नीति पर चलने से उसने साफ इन्कार कर दिया था और कह दिया था कि "इतिहास में हिन्दू लोग बराबर ही खुले आम मूर्त्तिपूजा करते आये हैं और अपने धर्म-कर्म स्वतन्त्रतापूर्वक करते रहे हैं। स्वयं

मेरे महल के नीचे, यमुना तट पर नित्य भजन कीर्त्तन होते हैं और शंख-घड़ियाल बजते हैं—मैं सुनता हूं और देखता हूँ। अतएव उनकी इन धार्मिक प्रवृत्तियों पर प्रतिवन्ध लगाना अव्यावहारिक है।"[1] उसने तो सिदिमौला नामक एक मुल्ला को उसकी धृष्टता से कुपित होकर मरवा भी डाला था।

उसका उत्तराधिकारी अलाउद्दीन खलजी (१२९६-१३१६ ई०) बड़ा महत्त्वाकांक्षी, भारी विजेता, प्रतापी और कठोर शासक था। उसके समय में प्रायः सम्पूर्ण भारत दिल्ली-सल्तनत के प्रभाव क्षेत्र में आ गया था। मुल्ला-मौलवियों के विरोध के वावजूद वह राज्यकार्य में स्वेच्छाचारी और मुसल्मानेतरों के प्रति अधिक व्यावहारिक एवं सहिष्णु रहा। विद्वानों का भी वह आदर करता था। भारतभक्त एवं समन्वयवादी सुप्रसिद्ध अमीर खुसरो उसका राजकवि था, राघव और चेतन नाम के दो ब्राह्मण पंडित उसके दरवारी थे, माधव नामक हिन्दू उसका एक मन्त्री था, जैन वैज्ञानिक ठक्कर फेरु राज्यसेवा में नियुक्त था, दिल्ली का नगर सेठ पूर्णचन्द्र नामक एक अग्रवाल जैन सुलतान का कृपापात्र था। जिनप्रभसूरि के कथनानुसार माधव मन्त्री की प्रेरणा पर ही सुलतान ने अपने भाई उलुगखाँ को गुजरात-विजय करने भेजा था। गुजरात के प्राथमिक आक्रमण में भड़ौच में स्वयं सुलतान का जैन मुनि श्रुतवीर से साक्षात्कार हुआ वताया जाता है। सेठ पूर्णचन्द्र से कहकर उसने दिगम्बराचार्य माधवसेन को दिल्ली वुलवाया था, राघव एवं चेतन के साथ दर्बार में शास्त्रार्थ कराया था और उन्हे सम्मानित किया था—इन्हीं आचार्य ने दिल्लो में काष्ठासंघ की गद्दी स्थापित्त की थी और सुलतान से कई फरमान

---

१ आगा मेंहदी हुसैन—राइज एण्ड फाल आफ मुहम्मद विन तुगलक (लन्दन, १९३८) प्रीफेस, पृ० १२।

प्राप्त किये बताये जाते हैं। कहा जाता है कि श्वेताम्बराचार्य रामचन्द्रसूरि और जिनचन्द्रसूरि को भी उसने सम्मानित किया था। सुलतान का फरमान एवं सहायता प्राप्त करके सेठ पूर्णचन्द्र गिरनार तीर्थ की यात्रा के लिए एक बड़ा संघ लेकर गया था। उसी समय पेथड़शाह के नेतृत्व में वहाँ गुजरात का भी एक बड़ा संघ आया था, और दोनों संघों ने सद्भावपूर्वक साथ-साथ तीर्थ वन्दना की थी। गुजरात के सूबेदार अलपखाँ ने भी पाटन के सेठ समराशाह को शत्रुंजय तीर्थ का उद्धार करने और यात्रासंघ ले जाने के लिए सैनिक सहायता सहर्ष प्रदान की थी। अलाउद्दीन के उत्तराधिकारी मुबारकशाह खलजी (१३१६-१३२० ई०) ने सेठ समराशाह को दिल्ली बुलाकर एक उच्च पद पर नियुक्त किया बताया जाता है। तुग़लुक वंश का संस्थापक गयासुद्दीन तुगलुक-शाह (१३२१-१३२५ ई०), जिसकी माँ एक हिन्दू जाटनी थी और जो भारत में ही जन्मा था, स्वभावतः क्रूर और धर्मान्ध नहीं था। सेठ समराशाह को वह पुत्रवत् मानता था और उसे उसने एक उच्च पद देकर तेलंगाना भेजा था। सोमचरित्रगणिकृत 'गुरुगुणरत्नाकर' (१४८५ ई०) के अनुसार सूर और वीर (या नानक) नाम के प्राग्वाटजातीय दो जैन भ्राता भी इस सुलतान के प्रतिष्ठित सरदार थे। दिल्लीनिवासी सेठ रथपति ने शाही फरमान प्राप्त करके १३२३ ई० में ससंघ तीर्थ यात्रा की थी जिसमें पाँच मास का समय लगा था। इन तथ्यों से स्पष्ट है कि विजयार्थ या विद्रोहदमनार्थ किये गये युद्धों के अवसरों को छोड़कर इस काल में भारतीयों को सामान्यतया स्वधर्मपालन की सीमित स्वतन्त्रता प्राप्त थी और उन्हें यदा-कदा शासनकार्य में उच्च पद भी दिये जाने लगे थे।

गयासुद्दीन का पुत्र एवं उत्तराधिकारी उलुगखाँ उर्फ जूनाखाँ था जिसने मुहम्मद बिन तुगलुक नाम से १३२५ से १३५१ ई०

पर्यन्त शासन किया। दिल्ली के सुलतानों में उसका राज्य सर्वाधिक विस्तृत एवं शक्तिशाली था और पूर्व मुग़लकालीन भारत का वह संभवतया सर्वमहान मुसल्मान नरेश था। उसका व्यक्तित्व अनेक विरोधी तत्त्वों का मिश्रण, अतिविचित्र एवं विवादास्पद रहा है। जहाँ वह सुशिक्षित, वहुभाषाविज्ञ, दर्शन, न्याय, तर्क, चिकित्सा शास्त्र आदि विविध विद्याओं और ज्ञान-विज्ञानों में पारंगत विद्यारसिक स्वतन्त्र विचारक, साधु-सन्तों और विद्वानों का समादर करने वाला, परमतसहिष्णु, उदार, दानशील, न्यायप्रिय, आविष्कारवुद्धि-सम्पन्न, सदाचारी और वीर योद्धा था, वहाँ साथ-ही-साथ वहुत क्रोधी, उतावला, अधीर, अदूरदर्शी अव्यावहारिक, निरंकुश, क्रूर, निर्दयी और कुछ सनकी भी था। स्वयं अपने पिता की मृत्यु में उसका हाथ रहा माना जाता है, और उसी के संचित धन से उसने विरोधी सरदारों का मुंह वन्द किया। अपराधियों, विशेषकर विद्रोहियों को वह अत्यन्त कठोर एवं अमानुषिक दण्ड देता था, और इस विषय में पद, वर्ग या सम्वन्ध का भी लिहाज नहीं करता था। अपने सगे भानजा, कई उच्च पदाधिकारियों और एक काजी को भी उसने खुले आम मृत्यु-दण्ड दिया था। उसके सनकी स्वभाव और राजधानी का परिवर्तन, तांवे के सिक्के चलाना, चीन का आक्रमण प्रभृति विचित्र योजनाओं एवं अभियानों के कारण उसके मरते ही सल्तनत का द्रुत वेग से पतन होने लगा और एक-एक करके प्रायः सभी प्रान्तीय सूवेदार स्वतन्त्र हो गये।

इस सुलतान की विफलता एक सवसे वड़ा कारण मुल्ला-मौलवियों का क्षोभ एवं विरोध था, जो उससे डरते भी थे, चिढते भी थे और उसके विरुद्ध विद्रोहों को उभारते रहते थे। मध्यकालीन मुसल्मानी तवारीखें (इतिहास-ग्रन्थ) भी अधिकांशतः मुल्ला-मौलवियों द्वारा ही लिखी गयी, और उनमें उन्होंने

उसकी भरसक निन्दा भर्त्सना ही की है तथा उसके विद्याप्रेम, भारतीय धर्मों (हिन्दू, जैन आदि) के साधु-संतों, जोगियों (योगियों विद्वानों के साथ सत्संग, उदारता, सहिष्णुता, स्वतन्त्र विचार-शीलता आदि सद्गुणों को भयंकर दुर्गुणों के रूप में चित्रित किया है। उनसे यह तो स्पष्ट हो जाता है कि इस सुलतान ने अस्पताल और दानशालाएं खोलीं, विद्वानों को मुक्त हस्त से वह धन देता था, सूफी फकीर शेख रुकनुद्दीन का भक्त था, अरस्तु के दर्शन का मर्मज्ञ था जोगियों और पंडितों का सत्संग करता था, दरवार में बुलाकर उनके भाषण और वादविवाद चाव से सुनता था, स्वयं भी उनसे वादविवाद करता था, उनका सम्मान करता था, संस्कृत का अभ्यास करता था और काफिरों को राज्यकार्य में भी नियुक्त करता था, किन्तु उक्त साधु-सन्तों एवं विद्वानों में से प्रायः किसी का भी कहीं नामोल्लेख नहीं किया, उनके धर्म, आम्नाय, जाति, वर्ग आदि का भी नामोल्लेख नहीं किया उनके स्वयं के या उनके धर्म, तीर्थों, साधर्मियों आदि के हित में सुलतान द्वारा किये गये कार्यों का भी कोई उल्लेख नहीं किया।

मुहम्मद बिन तुगलुक के स्वयं के जीवन-काल में रचित हैं अमीर खुसरो का तुगलकनामा, किरमानी का सियार-उल-औलिया, छाछी के गीत, कमाल करीम नागौरी का मजमुअ-ए-खानी, अहमद हसन दबीर का वसातीन-उल-उन्स, अब्बास दमिश्की का मसालिक-उल-अबसार, इसामी की फुतूह-उस्सलातीन, इब्न बतूता की 'रिहला' तथा स्वयं सुलतान का आत्मचरित्र जिसके केवल चार पृष्ठ ही संयोग से बच रहे, शेष नष्ट हो गया। यात्री इब्न बतूता, जो भारत में १३३३ से १३४९ ई० तक रहा, को छोड़कर अन्य किसी उपरोक्त रचना में इस सुलतान के राज्य-

काल, चरित्र आदि पर विशेप प्रकाश नहीं पड़ता और यह लेखक भी सुलतान से चिढ़ा हुआ था। इसामी ने बहुत कुछ लिखा है, किन्तु वह शत्रुपक्ष का लेखक था। सुलतान के आत्मचरित्र का जो अत्यल्प अंश उपलब्ध है उसमें सर्वाधिक उल्लेखनीय उसका यह उद्गार है कि 'इससे तो अच्छा था कि मै एक मूर्त्तिपूजक होता!' जो स्पष्ट ही उसने अपने सार्धमियों (मुसल्मानों) की धर्मान्धता से चिढ़कर किया था। उसके उत्तराधिकारी फीरोज तुगलुक (१३५१-८८ ई०) के समय में लिखी गई फुतुहाते-फीरोजशाही, सीराते फीरोजशाही, मुनशाते माहरू, बर्नी की तारीखे फीरोजशाही एवं फतवाए जहाँदारी और अफीफ की तारीखे फ़ीरोजशाही में मुहम्मद तुग़लक के राज्यकाल का पूरा विवरण है, किन्तु ये लेखक उसके कट्टर विरोधी थे और उसके प्रति उन्होंने उन्मुक्त विषवमन किया है। उत्तरवर्ती तवारीखों के आधार भी प्रायः ये ही ग्रंथ रहे हैं।

उक्त मध्यकालीन तवारीख़ों के अनेक अत्युक्तिपूर्ण, असंगत, अर्धसत्य एवं परस्परविरोधी कथनों को लेकर आधुनिक इतिहासकारों के लिए इस सुलतान का व्यक्तित्व, चरित्र और उसके राज्यकाल की घटनाएँ विवादास्पद बन गई हैं। डा० आगा मेहदी हुसैन की दोनों पुस्तकों—'राइज़ एण्ड फाल आफ़ मुहम्मद बिन तुगलुक' (लन्दन, १९३८) तथा 'दी तुग़लुक़ डायनेस्टी' (कलकत्ता १९६३)—का तो प्रधान नायक ही यह सुलतान है, और विद्वान लेखक ने उसके विरोधी पक्ष के लेखकों के कथनों एवं निष्कर्षों का खण्डन करने का यथाशक्य प्रयत्न किया है। बल्कि उससे भी आगे बढ़कर उन्होंने उसे एक अत्यन्त उदार, सर्वधर्मसहिष्णु, महान विद्याप्रेमी एवं परम नीतिपरायण आदर्श सुल्तान सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। किन्तु अपनी युक्तियों एवं तर्कों के अतिरिक्त जो कुछ बाह्य समर्थन उन्हें प्राप्त हो सका

है वह (प्रथम पुस्तक में तो) मात्र दो संस्कृत शिलालेखों का है जो दो वैश्यों ने दिल्ली नगर से नातिदूर अपने ग्रामों में कुँए खुदवाकर उनपर अंकित करा दिए थे। दूसरी पुस्तक में १३२५ ई० में सयूरगान को दिया फर्मान तथा विविधतीर्थ-कल्प का भी उल्लेख है और उसके ही आधार पर सुलतान द्वारा जिनप्रभसूरि का सम्मान करने एवं फ़रमान देने का उल्लेख है। किन्तु इसके समर्थन में तत्कालीन तवारीख़ों आदि का वह कोई संदर्भ दे नहीं सके—क्योंकि ऐसा कोई संकेत वहाँ संभवतया है ही नहीं। शायद भाषा की अनभिज्ञता के कारण विविधतीर्थ-कल्प का भी आग़ा साहब समुचित उपयोग नहीं कर पाये। कहीं उनकी दृष्टि में आचार्य के स्वयं तथा उनके प्रशिष्य विद्यातिलक सूरि के ये कथन आ जाते कि "श्री महम्मदशाह द्वारा की गई शासनोन्नति देखकर इस पंचम काल में भी लोग चौथे काल की कल्पना करते हैं, तथा 'पंचम काल में चौथे आरे जैसी प्रवृत्ति हो रही थी", तो न जाने वह इस सुलतान की प्रशंसा में कितना कुछ और लिख डालते। इसके अतिरिक्त अन्य जैन स्रोत, यथा धनपालकृत बाहुबलि चरित्र, तत्कालीन ग्रंथप्रशस्तियाँ, पट्टावलियाँ, गुर्वावलियाँ, विविधतीर्थ-कल्प की परम्परा का उत्तरवर्ती साहित्य—भी आग़ा साहब के दृष्टिगोचर नहीं हुए। चाहे वे वैष्णव शिलालेख हों, या ये जैन स्रोत, अथवा प्रोफेसर आग़ा जैसे पक्षसाधक आधुनिक विद्वान, सभी अतिशयोक्तियों से ग्रस्त है। संतुलित दृष्टि तो वैसी अतिशयोक्तियों में से तथ्यांश खोजने का प्रयत्न करती है।

इस सब विवेचन से एक और तथ्य उजागर होता है, जिस पर हम बराबर बल देते रहे हैं, कि मध्यकालीन या मुसलिम शासन-कालीन भारत का इतिहास मात्र वही नहीं है जो मुसल्मानी तवारीखों में निबद्ध है—उसके अतिरिक्त भी वह बहुत कुछ है, जो जैन और हिन्दू साधन-स्रोतों से प्राप्त होता है। इसमें सन्देह

नहीं है कि मध्यकालीन इतिहास के भी जैन साधन-स्रोत उसकी महत्त्वपूर्ण पूरक सामग्री प्रदान करते हैं और उस काल के इतिहास-लेखन में उनका समुचित उपयोग किया जाना चाहिये।

जहाँ तक सुलतान मुहम्मद बिन तुग़लुक़ का सम्बन्ध है, जैन स्रोतों से विदित है कि अपने शासन के प्रथम वर्ष (१३२५ ई०) मे ही इस सुलतान ने अपने राज्य के जैनियों (सयूरगान = सराओगान, श्रावकों)[1] के हितार्थ एक शाही फ़र्मान जारी किया था जिसमें इन 'सयुरगान' की प्रशंसा करते हुए उन्हे राज्य सम्मान, प्रश्रय एवं भेंट पुरस्कार आदि देने का आश्वासन दिया था तथा प्रशासकीय विभागों को आदेश दिये गये थे कि उन्हें इस सम्बन्ध में क्या करना है। राजधानी दिल्ली और गुजरात, धार, नागौर आदि प्रदेशों के खानों एवं अमीर-सदह् को भी तत्सम्बन्धी सूचनाएँ भेजी गई थी। पाटन के सेठ समराशाह को सुल्तान भाई जैसा मानता था और उसने उसे तेलिंगाने का शासक भी नियुक्त किया बताया जाता है। अपने कृपापात्र ज्योतिषी धराधर, जो संभवतया जैन था, की प्रेरणा से सुलतान ने १३२८ ई० में आचार्य जिनप्रभसूरि को दरवार में आमन्त्रित किया, उनका प्रभूत सम्मान किया, यथासंभव उनका सत्संग किया, अन्य धर्मो के विद्वानों के साथ उनके शास्त्रार्थ भी कराये, आचार्य के अनुरोध पर उसने उन्हें कन्नान की सातिशय महावीर-प्रतिमा को, जो कुछ काल तक तुग़लकाबाद के शाही खजाने में रखी रही थी, उन्हें दे दिया। आचार्य के नेतृत्व में श्रावकों ने

१ देखिए हमारा लेख—'तुग़लुक कालीन सयुरगान', जैनसंदेश-शोधाङ्क-१९ (९ जौलाई १९६४), पृ० ३२४-३२५; तथा डा० आगा मे० हु०-'तुगलुक डायनेस्टी' (कलकत्ता, १९६३) पृ० ३६३-३६४।

प्रतिमा को महोत्सवपूर्वक उपयुक्त देवालय में विराजमान किया। सुलतान के प्रश्रय में सुलतान सराय को 'भट्टारक सराय' नाम दिया गया, एक पोषधशाला भी वहाँ स्थापित की गई और जैनीजन वहाँ बसाये गये। अपने तीर्थों के संरक्षण आदि के लिए आचार्य ने सुलतान से कई फर्मान प्राप्त किये, हस्तिनापुर, मथुरा आदि अनेक तीर्थों की संघसहित यात्रा की तथा अनेक धर्मोत्सव किये। सुलतान जब दौलताबाद चला गया तो वहाँ भी उसने आचार्य को बुला लिया और लगभग तीन वर्ष वह उक्त दक्षिण देश में रहे। दिल्ली आने पर सुलतान ने उन्हें पुनः दिल्ली बुलवाया और १३३२ ई० में वहाँ वह फिर से पधारे, विविध तीर्थकल्प पूरा किया और थोड़े समय उपरान्त वहीं दिवंगत हुए प्रतीत होते हैं। उनकी अनुपस्थिति में तथा उनके स्वर्गवास के पश्चात भी उनके पट्टधर जिनदेवसूरि दिल्ली में रहते हुए सुलतान के कृपाभाजन बने रहे और धर्मोद्योत करते रहे। सुलतान की माँ मखदूमेजहाँ बेगम भी जैन गुरुओं का आदर करती थी। जिनप्रभ सूरि सम्बन्धी यह सब विवरण कल्प न० २२ एवं ५१ में विस्तार के साथ दिया हुआ है। यति महेन्द्रसूरि का भी सुलतान ने सम्मान किया बताया जाता है। राजधानी तुग़लकाबाद के शाही किले के परिकर में ही 'दरबार चैत्यालय' नामका एक जिनालय विद्यमान था, जिसमें १३४२ ई० में उसके निकट ही रहने वाले पाटन निवासी अग्रवाल जैन साह सागिया के वंशजों ने एक महान पूजोत्सव किया था। इन लोगों के गुरु काष्ठासंघी माधवसेन के प्रशिष्य और नयसेन के पट्टधर भट्टारक दुर्लभसेन थे। सुलतान भी उनका आदर करता था। इस अवसर पर अनेक ग्रन्थों की प्रतिलिपियाँ भी पंडित गन्धर्व के पुत्र बाहडदेव से करायी गई थीं।[1]

---

१. प्रशस्तिसंग्रह (जयपुर १९५०) पृ० ९७; लिपिक बाहड ने उत्तरपुराण की अपनी १३३४ ई० की प्रशस्ति मे भी सुलतान का नामोल्लेख किया है, वही, पृ० ९२।

नन्दिसंघ के दिल्ली पट्टाधीश भट्टारक प्रभाचन्द्र भी, जिनका मुनिजीवनकाल लगभग १२८०-१३५५ ई० था, जो शतजीवि थे, शायद प्रथम श्वेताम्बर भट्टारक थे, और जिन के विरुद नरपति-वन्द्य, रामराजगुह, वादीन्द्र त्रैविद्य, मण्डलाचार्य, आदि थे, इस सुलतान के समय में ही दिल्ली पधारे थे। उनके द्वारा दिल्ली में पट्टस्थापन के समय उनका पट्टबन्ध महोत्सव बड़े समारोह के साथ हुआ था और उन्होने वादियों का मान-भंजन करके—उन पर विजय प्राप्त करके सुल्तान मुहम्मद शाह का मन अनुरंजित किया था, जैसा कि उनके शिष्यों ब्रह्मनाथूराम (१३५९ ई०) एवं धनपाल (१३९७ ई०) की प्रशस्तियों से प्रगट है।[1] इस प्रकार सुलतान मुहम्मद बिन तुग़लक और जैनों के सम्बन्धों के विषय मे अनेक तथ्य प्राप्त होते हैं।

अस्तु, इसमें सन्देह नहीं है कि आचार्य जिनप्रभसूरि का विविध तीर्थ-कल्प अपने विषय एवं उस काल के सम्बन्ध में अपने ढंग की अद्वितीय रचना है और उसका ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व प्रभूत है। मुनि जिनविजय जो ने उसके सुसम्पादित मूल पाठ को प्रकाशित करते समय (१९३४ ई० में) सूचित किया था कि दूसरे भाग में ग्रन्थ का भाषानुवाद एवं विस्तृत विवेचन प्रस्तुत करेंगे। वह योजना कार्यान्वित नहीं हो पायी। संस्कृत-प्राकृत से अनभिज्ञ पाठक इस अनुपम कृति का लाभ नहीं उठा पाते थे। बन्धुवर भँवरलाल नाहटा ने उसका प्रायः शब्दानुसारी सरल अनुवाद प्रस्तुत करके जिज्ञासु जगत का बड़ा उपकार किया है। उनके पितृव्य अगरचन्द नाहटा इस योजना के प्रेरक हैं और उनके आग्रह से मुझे इस संस्करण को

१. जैनग्रन्थ प्रशस्ति संग्रह, द्वितीय भाग (दिल्ली, १९६३), पृ० ३३, प्रस्तावना पृ० ८० फुटनोट।

प्रस्तावना लिखने का अवसर मिला, अतः मै नाहटाद्वय का आभारी हूँ। आशा है, मध्यकालीन मुसलिम शासन-काल के ऐतिहासिक अध्ययन मे तथा तत्कालीन जैन इतिहास के पुनर्निर्माण में इस ग्रन्थ का सम्यक् उपयोग होगा।

ज्योतिनिकुंज
चारबाग, लखनऊ-१
२१ मार्च, १९७६ ई०

—ज्योतिप्रसाद जैन

भूमिका

भारतीय संस्कृति में महापुरुषों के जीवन से सम्बन्धित स्थानों और तिथियों को बड़ा भारी महत्त्व दिया गया है। जिन स्थानों में उनका च्यवन, जन्म, दीक्षा, केवलज्ञान और मोक्ष होता है, जहाँ जहाँ भी वे विचरण करते हैं, उनके जीवन की विशेष घटना घटती है, साधना करते हैं, सिद्धि पाते हैं, उन सब स्थानों को तीर्थ माना जाता है। जिसके माध्यम से संसार समुद्र से तिरना होता है उसे तीर्थ कहा जाता है।

जैनधर्म में सर्वोच्च पद तीर्थङ्कर का है। चतुर्विध संघरूप तीर्थ की स्थापना करने के कारण वे तीर्थङ्कर कहे जाते हैं। इनके द्वारा असंख्य प्राणियों का निस्तार होता है, धर्म का मर्म प्रकाशित होता है, जिज्ञासु भव्यजन मार्गदर्शन पाते हैं। तीर्थंकर और उनकी वाणी के आश्रय से लाखों-लाखों प्राणी निर्वाण पथ के अनुगामी होते हैं इसलिए उन अनंत उपकारी तीर्थकरों का नाम स्मरण, पूजा भक्ति द्वारा अनन्त जन्मों के अनन्त कर्म नष्ट हो जाते हैं अतः, उनकी स्तवना में हजारों कवियों ने अनेक भाषाओं में अनेक विषयों को लेकर अनेक स्तोत्र, स्तवन-रास, चरित्र काव्यादि रचे हैं। तीर्थङ्करों की जन्मतिथियाँ की शास्त्रीय रूप से पंच-कल्याणक तप के रूप में आराधना की जाती है। इन पंचकल्याणकों के अनेक वर्णन मूर्त्तिकला-चित्रकलादि में चित्रित किए गए हैं। तीर्थकरों से सम्बन्धित सभी स्थानों को तीर्थरूप में मान्य कर के वहाँ की यात्रा करने की प्राचीन परम्परा है। आचाराङ्ग निर्युक्ति तक में इन स्थानों की पूज्यता का उल्लेख है।

"अट्ठावय-उज्जिते, गयग्गप ए य धम्मचक्के य ।
पासरहावत्तनगं, चमरुप्पायं च वंदामि ॥"

गजाग्रपदे दशार्णकूटवर्त्तिनी तथा तक्षशिलायां धर्मचक्रे तथा अहिच्छत्रायां पाश्वनाथस्य धरणेन्द्र महिमास्थाने"।

आचारांग निर्युक्ति श्रुतकेवली भद्रबाहुस्वामी रचित होने से २३५० वर्ष प्राचीन है। निशीथ चूर्णि में भी तत्कालीन प्रसिद्ध जैनतीर्थों के नामोल्लेख करते हुए लिखा है—

"उत्तरावहे धम्मचक्कं मथुराए देवनिम्मिओ थूभो ।
कोसलाए जियंत सामि पडिमा तित्थंकराण वा जम्मभूमिओ ॥"

प्राचीन जैन तीर्थों के सम्बन्ध में डॉ० जगदीशचंद्र जैन की पुस्तक पठनीय है। जैन तीर्थों सम्बन्धी स्वतन्त्र साहित्य का निर्माण भी बहुत लम्बे समय से होता रहा है। शुभशील रचित शत्रुञ्जय कल्पवृत्ति के उल्लेखानुसार भगवान् महावीर के शिष्य सुधर्मा स्वामी ने तीर्थ माहात्म्य विस्तार से लिखा था जिसका संक्षेप भद्रबाहु स्वामी ने किया इसके बाद वज्रस्वामी, पादलिप्त सूरि, धनेश्वर सूरि और धमघोष सूरि आदि ने शत्रुजय कल्प लिखे।

सुधर्मस्वामिना यस्य माहात्म्यं ग्रन्थकोटिभिः ।
वर्णितं तच्च सक्षिप्त वर्ण्येत तत्कथं मन्दबुद्धिभि· ॥१०॥
तच्च वज्रर्षिणा भव्योपकाराय लघूकृतम् ।
ततः श्रीपादलिप्तेन सूरिणापि हितेच्छुना ॥११॥
ततो धनेश्वरसूरीश्वर. संक्षिप्तवाँस्तदा ।
ततोऽन्येऽपि गुरूत्तंसाः सञ्चिक्षिपुश्च तत्पुनः ॥१२॥
ततस्तपागणाधीशो धर्मघोषगुरूत्तमः ।
श्री शत्रुञ्जयकल्पं तु चकारामुं तमोऽपहम् ॥१३॥

शत्रुञ्जय कल्प की गाथा से भी इस बात की पुष्टि होती है, यतः

इय भद्दबाहु रइआ, कप्पा सत्तुंञ्ज तित्थ माहप्प ।
श्री वयर पहुद्धरिय, ज पालित्तेण संखविअं ॥३८॥

वस्तुतः तीर्थकल्प के कर्त्ता श्रीजिनप्रभसूरिजी ने भी अपने कई कल्पों में यह उल्लेख किया है कि भद्रबाहु, वज्रस्वामी और संघदास आदि प्राचीन आचार्यों के बनाये हुए कल्पों के आधार से उन्होंने कल्पों का निर्माण किया है।

१ शत्रुञ्जयकल्प में इस प्रकार उल्लेख है:—

कल्पप्राभृततः पूर्वं कृतः श्रीभद्रबाहुना।
श्री वज्रेण ततः पादलिप्ताचार्यैस्ततः परम् ॥१२२॥

२. सिरिवइरसीस भणिअं जहा य पालित्तएण च ॥१॥

३. सिरि संघदास मुणिणा लहुकप्पो निम्मिओ अ पडिमाए
गुरुकप्पाओ अ मया सबध लवे समुद्धरिओ ॥६९॥

खेद है कि उपरोक्त पूर्वाचार्यो द्वारा निर्मित प्राचीन कल्पादि लुप्त हो गए। यहाँ केवल ऐसीं रचनाओं की प्राचीन परम्परा बतलाने के लिए उपर्युक्त उद्धरण दिए गए है।

श्रीजिनप्रभसूरिजो ने जितने अधिक तोर्थो के कल्प-स्तवनादि रचे और उनका संग्रह कर के प्रस्तुत कल्पप्रदीप या विविध तीर्थ-कल्प ग्रन्थ तैयार कर दिया है वह विश्वसाहित्य में अजोड़ है। प्राकृत भाषा मे एक अपूर्ण तित्थकप्प की प्रति खंभात के भण्डार (विनयनेमिसूरि) में उपलब्ध है पर वह कब किसने रचा, ज्ञात नहीं। रचना भी पुनरावृत्तियुक्त अस्तव्यस्त व विस्तृत है फिर भी उसका सार प्रस्तुत ग्रन्थ के परिशिष्ट में दिया जा रहा है। इसी तरह की एक संस्कृत रचना सोमधर्म की उपदेश सप्तति प्राप्त है जिसमें एक प्रकरण तीर्थो सम्बन्धी है जिसका सार परिशिष्ट नं० १ में दिया है। परिशिष्ट नं० २ में तीर्थयात्रा का एक विवरण जो जैन श्वे० पचायती मन्दिर में कपड़े पर लिखा मिला हैं जो अपनी दृष्टि में महत्त्वपूर्ण होने से दे दिया।

वैसे तीर्थो के कुछ कल्प प्राचीन गूर्जर काव्य संग्रह आदि

ग्रन्थों में भी छप चुके है। जैन तीर्थो सम्बन्धी सामग्री इतना अधिक प्राप्त है जिनमे से कुछ तीर्थयात्राएँ आदि प्राचीन तीर्थ-माला सग्रह में प्रकाशित हैं पर अप्रकाशित सामग्री इतनी अधिक उपलब्ध है कि जिसके अनेक खण्ड तैयार हो सकते है। गत पचास वर्षों में हमने भी अनेक स्थानों से ऐसी प्रकाशित सामग्री का संग्रह करना चालू रखा है जिसके फलस्वरूप वहुत बड़ी सामग्री एकत्र हो चुकी है इनमें से कुछ तीर्थमालाएँ आदि कई पत्र-पत्रि-काओं मे प्रकाशित करते रहे हैं। कुछ सामग्रो एल० डी० भारतीय संस्कृति विद्यामदिर, अहमदाबाद से एक संग्रह के रूप में प्रकाश-नार्थ प्रेषित है।

तीर्थो सम्बन्धी साहित्य का प्रकाशन

दिगम्बर और श्वेताम्वर उभय सम्प्रदायों के सैकड़ों तीर्थ भारत के कोने कोने में विद्यमान है। प्राचीन काल से उन तीर्थो की यात्रा साधु-साध्वी एवं चतुर्विध संघ तथा श्रावक संघ करते आ रहे हैं। ऐसे बहुत से यात्री सघों का विवरण समय समय पर लिखा जाता रहा है। यों तीर्थो के माहात्म्य और ऐतिहासिक वृत्तान्त काफी लिखे गए। ऐसे साहित्य का प्रकाशन बहुत वर्ष पूर्व कुछ हुआ था पर इधर में प्राचीन सामग्री विशेष प्रकाश में नहीं आ रही है।

आवागमन की सुविधा पूर्वापेक्षा बहुत अधिक बढ़ चुको है अतः यात्री सघ खूब निकलने लगे पर स्थिरता के अभाव में जैसा चाहिए लाभ नहीं उठाया जा रहा है। तीर्थो को यात्रा के लिए व प्राचीन इतिहास जानने के लिए लोगों की बहुत उत्सुकता है पर जिस ढंग का और जितने परिमाण में साहित्य प्रकाशन व प्रचार होना चाहिए, नही हो रहा है। तीर्थो सम्बन्धी प्रकाशित साहित्य की एक सूची लगभग ३० वर्ष पूर्व प्रेमी अभिनंदन ग्रन्थ में हमने

प्रकाशित की थी। उसके बाद भी बहुत से महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं। यशोविजय जैन ग्रन्थमाला, भावनगर से प्रकाशित और मुनि जयन्तविजय जी व विशालविजय जी लिखित साहित्य विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। आनंद जी कल्याण जी की पेढी श्वे० तीर्थ-मंदिरों की सबसे बड़ी व्यवस्थापिका है उसकी ओर से जैन तीर्थ सर्व सग्रह नाम ग्रंथ की ३ जिल्दें स० २०१० में गुजराती में प्रकाशित हुईं जिनमें भारत भर के जैनमन्दिरादि की सूची व मुख्य तीर्थ स्थानों का इतिहास सब तीर्थो के नकशे के साथ दिया गया है। इतः पूर्व स० २००५ में मुनि श्री न्यायविजय जी (त्रिपुटी) ने जैन तीर्था नो इतिहास नामक ग्रन्थ प्रकाशित करवाया था। ये दोनों ग्रन्थ श्वेताम्बर तीर्थो की जानकारी के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण हैं पर गुजराती में हैं। हिन्दी में जैन तीर्थो का एक बड़ा सचित्र ग्रन्थ मद्रास के जैन संघ द्वारा शीघ्र ही प्रकाशित होने जा रहा है।

दिगम्बर जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी, बम्बई द्वारा भगवान् महावीर के २५०० निर्वाण शताब्दी के समय भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ ग्रन्थ प्रकाशन की योजना बनी थी। इस ग्रन्थ का पहला भाग सन् १९७४ में, दूसरा सन् १९७५ और तीसरा सन् १९७६ में प्रकाशित हो चुका है। चौथा भाग शीघ्र ही प्रकाशित हो रहा है और पांचवां तैयारी में है। यों तो श्वेताम्बरों की अपेक्षा दिगम्बर तीर्थों सबंधी साहित्य बहुत कम प्रकाशित हुआ है पर इन पांचों भागों से अवश्य ही एक अभाव की पूर्ति होगी। पं० बलभद्र जैन ने वर्षों के परिश्रम से यह ग्रन्थ तैयार किया है एवं सचित्र व सुन्दर रूप में छपा है। आनंद जी कल्याण जी की पेढी को भी २५०० वें निर्वाण महोत्सव के प्रसंग पर हमने प्रेरणा दी थी कि श्वे० तीर्थो के सचित्र इतिहास भी हिन्दी में इसी तरह के प्रकाशित किये जाएं पर खेद

है कि उन्होंने इसके महत्त्व और आवश्यकता-उपयोगिता पर ध्यान नहीं दिया।

कलकत्ता के श्री महेन्द्र सिंघी ने हिन्दी में पूर्वांचल के जैन तीर्थों के सचित्र इतिहास प्रकाशित करने का प्रयत्न किया है। कुशल निर्देशन मे हमने भी तीर्थकल्प के कुछ कल्पों का अनुवाद व कुछ तीर्थो का इतिहास प्रकाशित किया है। जैन भवन कलकत्ता ने जैन जर्नल के विशेषांक रूप में शत्रुंजय तीर्थ सम्बन्धी शताब्दी पूर्व प्रकाशित अंग्रेजी सचित्र ग्रन्थ प्रकाशित किया है जो विशेष उल्लेखनीय है। यद्यपि पेढी ने भी स्वतंत्र प्रकाशन इस ग्रथ का किया है पर उसका मूल्य अधिक है। प्रत्येक तीर्थ की व्यवस्थापक समिति को अपने अपने तीर्थों का खोज पूर्ण सचित्र इतिहास हिन्दी-गुजराती और अंग्रेजी तीनों भाषाओं में प्रकाशित-प्रचारित करना चाहिए। दक्षिण भारत के जैन तीर्थो के इतिहास कन्नड़-तामिल तेलगु आदि भाषाओं में प्रकाशित करना चाहिए।

प्रस्तुत तीर्थकल्प का महत्त्व

चौदहवीं शताब्दी के महान् विद्वान् और शासन प्रभावक आचार्य श्री जिनप्रभसूरि भारत के अनेक प्रान्तों में विचरण करते रहे हैं। पद्मावती देवी इनके [illegible] और इनके प्रत्यक्ष थीं अत केवल विद्वत्ता ही नहीं, अनेक चमत्कार पूर्ण कार्यो से इन्होंने जैन शासन की महान् सेवा की है। तत्कालीन मुस्लिम सम्राट् कुतुबुद्दीन और मुहम्मद तुगलक को रजित एव चमत्कृत करके जैन शासन के प्रति आकृष्ट किया था। वहुत से तीर्थो की रक्षा कराने के साथ-साथ कन्नाणा की महावीर प्रतिमा को शाही कैदखाने से मुक्ति दिलाकर नव्य जिनालय में प्रतिष्ठित किया था जिसका निर्माण सुलतान सराय और भट्टारक सराय नाम से वादशाह ने ही कराया था। वादशाह ने इनके रहने के लिए तथा श्रावकों के

आवास के हेतु नई बस्ती प्रदान की थी। इन सब सुकृतों का उल्लेख प्रस्तुत तीर्थकल्प के "कन्यानयनीय महावीर कल्प और कल्प परिशेष में विस्तार से आया है जो समकालीन और विश्वसनीय है। सूरिजी की जीवनी और उनकी साहित्य सेवा के सम्बन्ध में विस्तृत जानने के लिए हमारे प्रकाशित व महो० विनयसागर जी लिखित "शासन प्रभावक जिनप्रभसूरि" ग्रंथ द्रष्टव्य है।

आचार्य श्री ने अपने विचरण काल में अनेक तीर्थों की यात्राएं की थीं उनमें से शत्रुञ्जय, गिरनार, स्तंभ तीर्थ आदि कई तीर्थों के तो प्राचीन कल्प उपलब्ध थे, उनके आधार से तथा अपने सुने हुए देखे हुए वृत्तान्तों के आधार से बहुत से तीर्थकल्पों की रचनाएं की थीं इनमें से संवतोल्लेख वाले व आनुमानिक निर्णीत सवतों वाले कल्पों की नामावली यहाँ दी जा रही है—

१. वैभारगिरि कल्प सं० १३६४।
२. चम्पापुरी कल्प सं० १३६० की घटना का उल्लेख।
३. सत्यपुर तीर्थ कल्प सं० १३६७ की घटना का उल्लेख।
४. अर्बुदगिरि कल्प सं० १३७८ (शक सं० १२४३) में लल्ल और पीथड़ के उद्धारका उल्लेख।
५ शत्रुंजय तीर्थ कल्प स० १३८५ ज्येष्ठ सुदि ७।
६. ढिंपुरी स्तव सं० १३८६ (शक सं० १२५१)।
७. अपापा वृहत्कल्प सं० १३८७ भाद्रपद शु० १२ पुष्यार्क देवगिरि नगरे।
८ कन्यानयनीय महावीर प्रतिमा कल्प सं० १३८५ का उल्लेख।
९ हस्तिनापुर तीर्थ स्तव सं० १३८८ (शक सं० १२५३) वै० सु० ६।
१०. महावीर गणधर कल्प सं० १३८९ ज्ये० सु० ५।

११. ग्रन्थ समाप्ति सं० १३८९ भा० सु० १० योगिनीपुर।
१२. कन्यानयनीय महावीर कल्प परिशेष सं० १३८९ आपाढ का उल्लेख।

प्रस्तुत ग्रन्थ में समकालीन कई ऐतिहासिक घटनाओं के सवत्तोल्लेख सह उल्लेख व कई राजवंशो व मुस्लिम सम्राटादि का उल्लेख ऐतिहासिक दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण है।

इसमें श्वेताम्वर, दिगम्बर भेद भाव के बिना व उत्तर भारत व दक्षिण भारत के तीर्थो का विश्वसनी वर्णन दिया है। कई प्रमुख जैन श्रावकों, जैनाचार्यों व उनके सुकृत्यों का उल्लेख भी यथा प्रसग किया गया है। कुछ बातें पौराणिक भी है। कई वर्णन केवल सम्बन्धित ही नहीं किन्तु बौद्धों, सनातनियों आदि के लिए भी उपयोगी हैं। इस प्रकार यह ग्रन्थ ऐतिहासिक सांस्कृतिक दृष्टि से बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है।

भाषा विज्ञान की दृष्टि से भी इसका महत्त्व निर्विवाद है क्योंकि इसमें प्राकृत संस्कृत गद्य पद्य विविध शैली की रचनाएं हैं जिनमें देश्य शब्दो का भी प्रयोग हुआ है। कई शब्दों का वास्तविक अर्थ तो समझना भी कठिन है, जिनका अनुमान से काम निकालना पड़ा है। वास्तव मे कहीं-कहीं तो वर्णन अति संक्षिप्त होने से उनके भावों का स्पष्टीकरण भी कठिन हो गया है। कोश ग्रन्थों में उन शब्दों के नाम भी नहीं मिलते वे भविष्य में रचे जाने वाले कोशो में अवश्य आने चाहिए। अन्य ग्रन्थों मे वे शब्द किस अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं इस विषय में अनुसन्धान व विचार किया जाना चाहिए।

प्रस्तुत ग्रन्थ का नाम विविध तीर्थकल्प रखा गया है क्योंकि कल्प संज्ञक रचनाएँ अधिक हैं अवशिष्ट स्तव, स्तवन, स्तुति, चरित्र और विचार संज्ञक कई रचनाएँ हैं। प्रशस्ति सह कुल ६२ रच-

नाओं में भाषा और गद्य-पद्यादि की दृष्टि से इस प्रकार वर्गीकरण किया जा सकता है। संस्कृत की कुल २७ रचनाओं में १४ पद्य और १३ गद्यमय हैं। एवं प्राकृत की ६ पद्य और ३० गद्य रचनाएँ हैं।

विविध तीर्थकल्प के ६२ कल्पों में निम्नोक्त तीर्थो सम्बन्धी रचनाएं हैं—

१. अणहिलपुर अरिष्टनेमि कल्प
२ अपापापुरी कल्प,
३. अयोध्याकल्प,
४. अर्बुदाद्रिकल्प,
५. अवन्तिदेश अभिनन्दन कल्प,
६. अश्वावबोध कल्प
७. अष्टापदगिरि कल्प,
८. अहिच्छत्रा नगरी कल्प,
९. उज्जयन्त (गिरनार-रैवतगिरि)
१०. कन्यानयनीय महावीर कल्प,
११. कलिकुण्ड कुर्कुटेश्वर कल्प,
१२. काम्पिल्यपुर तीर्थ कल्प,
१३. कुडुंगेश्वर नाभेयदेव कल्प,
१४. कुल्पाकऋषभ-माणिक्यस्वामी कल्प,
१५. कोकावसति पार्श्वनाथ कल्प,
१६. कोटिशिला तीर्थ कल्प,
१७. कौशाम्बी नगरी कल्प,
१८. चौरासी महातीर्थ नाम संग्रह कल्प,
१९. चम्पापुरी कल्प,
२०. [illegible] तीर्थ कल्प,

२१. नन्दीश्वरद्वीप कल्प,
२२. नाशिकपुर कल्प,
२३ पाटलिपुत्र कल्प,
२४. पार्श्वनाथ (स्तभन) कल्प
२५. प्रतिष्ठानपुर कल्प,
२६. फलवर्द्धि पार्श्वनाथ कल्प,
२७ मथुरापुरी कल्प,
२८. मिथिला तीर्थ कल्प,
२९. रत्नवाहपुर कल्प,
३० वाराणसी नगरी कल्प,
३१. वैभारगिरि कल्प.
३२. शंखपुर पार्श्व कल्प,
३३. शत्रुञ्जय तीर्थ कल्प,
३४ शुद्धदन्ती पार्श्व कल्प,
३५ श्रावस्ती नगरी कल्प
३६. श्रीपुर अन्तरीक्ष कल्प,
३७ सत्यपुर तीर्थ कल्प
३८ हरिकंखी पार्श्व कल्प,
३९. हस्तिनापुर कल्प,
४० आमर कुण्ड पद्मावती कल्प,
४१. व्याघ्री कल्प,
४२ कपर्दि कल्प,
४३. अम्बिका कल्प,
४४. वस्तुपाल तेजपाल कल्प,

इनमें पावापुरी, अष्टापद, कन्यानयन, ढिंपुरी, हस्तिनापुर के दो-दो हैं, प्रतिष्ठान के तीन है, गिरनार के चार है व पार्श्वनाथ (स्तंभन) के दो हैं। अतः ६२ में १२ वाद जाने से ५० रहे और

उनमें पंच कल्याणक, अतिशय, पंचकल्याणक (२४ जिन) स्तव, पंचपरमेष्ठि, ११ गणधर, समवशरण, आदि ६ कल्प तीर्थों के न होकर शास्त्रीय विचार बाद देने से ४४ ही अवशिष्ट रहेंगे। इनमें भी १ अष्टापद महातीर्थ कल्प धर्मघोषसूरि का, २ पंचकल्याणक स्तवन सोमसूरि का एवं ३ कन्यानयन महावीर कल्प परिशेष आचार्य संघतिलकसूरि के आदेश से विद्यातिलक द्वारा रचित हैं। इन कल्पों में सभी एक-एक तीर्थ सम्बन्धी हैं परन्तु (४५) चतुरशीति महातीर्थ नाम संग्रह कल्प में उस समय के अनेक तीर्थों का उल्लेख चौबोस तीर्थंकरों के क्रम से स्थानसूची सह किया है जो ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यह शाश्वत ती है। यों तीर्थ मुनियों की परम्परा भ० ऋषभदेव के निर्वाणस्थल अष्टापद से आरम्भ होती है जो हिमालय में छिपा पड़ा है।

इस कल्प का अनुवाद प्रस्तुत ग्रन्थ के पृ० १९२ में प्रकाशित है। इनमें से बहुत से तीर्थों व मन्दिरों का आज कोई पता नहीं चलता।

विविध तीर्थकल्प मे श्रोजिनप्रभसूरि जी ने ज्ञातव्य दिए हैं उनसे तत्कालीन जैन तीर्थो की स्थिति पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। अनेक नवीन ऐतिहासिक तथ्य सामने आते हैं। गत सात सौ वर्षो में जो पट परिवर्त्तन हुआ है उसका लेखा जोखा चित्र की भाँति सामने आ जाता है। अनेक मुस्लिम शासकों द्वारा विध्वंस लोला हुई धर्म प्राण भक्त श्रावकों ने जोर्णोद्धार व नवनिर्माण कराया उसके विवरण अत्यन्त मूल्यवान हैं।

शत्रुञ्जयतीर्थ—मूलमन्दिर के दाहिनी ओर पुण्डरीक स्वामी और बाँयें तरफ जाबड़ सहकारित बिंब था। वामपार्श्व में सत्यपुरीयावतार जिनालय, दाहिनी ओर शकुनिका चैत्य के पीछे अष्टापद मन्दिर, नन्दीश्वर, स्तंभन तीर्थ, गिरनार, स्वर्गारोहण चैत्य मे

नमि-विनमि सेवित ऋषभ. दूसरे शृंग पर श्रेयांसनाथ, शान्तिनाथ, नमिनाथ, ऋषभदेव व महावीर सुशोभित थे। कुन्ती और पाँच पांडवों के बिम्ब लेप्यमय थे जो आज भी हैं। संप्रति, विक्रम, वाग्भट, पादलिप्त, आम, दत्त के उद्धार का उल्लेख। जावड़ शाह के बिम्बद्वार के अजिता यतन स्थानपर अनुपमा सरोवर हुआ। जावड का उद्धार सं० १०८ में वज्रस्वामी के उपदेश से हुआ, वह मधुमती (महुवा) निवासी था। वस्तुपाल और पेथड़ ने भी उद्धार कराया। वस्तुपाल ने म्लेच्छों द्वारा भंग होने की संभावना से ऋषभदेव व पुण्डरीक प्रतिमाओं को भूमिगृह में रखा। सं० १३६९ में जावड़ स्थापित बिम्बों का म्लेच्छों द्वारा भग हुआ। तव समरा-साह ने सं० १३७१ में मूल नायकोद्धार किया।

२ गिरनार तीर्थ—गिरनार जी की उपत्यका में खंगारगढ और तेजलपुर थे। वहाँ ऋषभदेव व पार्श्वनाथ के मन्दिर थे। कल्याणक त्रय मन्दिर वस्तुपाल मन्त्री ने और शत्रुजयावतार कपर्दी मरुदेवी प्रासाद एव ऋषभदेव, पुण्डरीक, अष्टापद, नन्दीश्वर-द्वीप के जिनालय भी बनवाये थे। काश्मीर के रत्न और अजित श्रावक के समय लेप्यमय बिम्ब स्नान से गल जाने पर देवी ने उन्हे रत्नमय बिम्ब दिया। गुजरात के जयसिंह देव ने खंगार को मार कर सज्जन को दण्डनायक स्थापित किया। सं० ११८५ में उसने जिनालय बनाया, मालवा के भावड़ साह ने स्वर्णमय आमाल-सार कराया। कुमारपाल के श्रीमालवंशीय दण्डनायक ने सं० १२२० में पाज बनवाई व धवल ने प्रपाएँ (प्याऊ) कराई। वस्तुपाल तेजपाल वीरधवल के मन्त्री थे। तेजपाल ने तेजलपुर बसाया और पिता के नाम से आसराज विहार पार्श्व जिनालय कराया। माता कुमार देवी के नाम से कुमर सरोवर कराया। तेजलपुर से पूर्व दिशा में उग्रसेनगढ मे ऋषभदेवादि के मन्दिर हैं। उग्रसेनगढ, खंगारगढ और जूनागढ एक ही है। गढ के बाहर दक्षिणशा दि में चँवरी-

वेदी, लड्डुओं के ओरे, पशुवाड़ा आदि स्थान हैं। उत्तर दिशा में दशारमंडप है। तेजपाल ने तीन कल्याणक चैत्य व देपाल मंत्री ने इन्द्रमण्डप का उद्धार कराया था।

३ स्तंभनतीर्थ—इसका लघुकल्प संघदास मुनि ने बनाया था। जिनप्रभसूरि ने संक्षिप्त रचना की। अभयदेवसूरि द्वारा जयत्तिहुअण स्तोत्र रचना का उल्लेख है। नं० ५९ कल्पशिलोंछ में विशेष वर्णन है।

४ अहिच्छत्रा तीर्थ—यह पार्श्वनाथ भगवान् के कमठोपसर्ग का तीर्थ है। धरणेन्द्र की सर्पणगति के अनुसार दुर्ग का निर्माण हुआ जो उस समय मौजूद था। चमत्कारी जलकुण्डों व मिट्टी सो धातु सिद्धि होने के साथ-साथ सकूपिका, सवा लाख कुँए-वापिकाएँ, मन्दिर में धरणेन्द्रपद्मावती सेवित पार्श्वनाथ किले के पास नेमिनाथ व अम्बिका मूर्त्ति विद्यमान थी। उत्तरावापी का जल रोगनाशक था एवं अनेक प्रकार की औषधियों व लौकिक तीर्थो का भी वर्णन किया है।

५. अर्वुद गिरि—चन्द्रावती के विमलदण्डनायक ने सं० १०८८ में विमलवसही और सं० १२८८ मे वस्तुपाल तेजपाल ने लूणिगवसही बनाई थी। म्लेच्छों द्वारा भग कर देने पर महणसिंह के पुत्र लल्ल ने विमलवसही का और चण्डसिंह के पुत्र पीथड़ ने स० १३७८ में लूणगवसही का जीर्णोद्धार कराया था। कुमारपाल ने ऊंचे शिखर पर वीरचैत्य वनवाया जिसका उल्लेख है। जैनेत्तर स्थानों का वर्णन भी महत्त्वपूर्ण है।

६ मथुरा तीर्थ—पुरातत्त्व की दृष्टि से मथुरा का अत्यधिक महत्त्व है। वहाँ के सुपार्श्वनाथ स्वामी के कुबेरादेवी निर्मित बौद्ध स्तूप जिनप्रभसूरि जी के समय में अच्छी स्थिति में और प्रसिद्ध तीर्थ था। वहाँ के अनेक वृत्तान्त और सं० ८२६ बोप्रभहिसूरि द्वारा

महावीर प्रतिमा प्रतिष्ठा व आमराजा द्वारा जीर्णोद्धार कराने आदि का महत्त्वपूर्ण उल्लेख है।

७. अश्वावबोध तीर्थ भरौंच—यह तीर्थ भी मुनिसुव्रत स्वामी के समय का है। इस कल्प में उसकी उत्पत्ति का महत्त्वपूर्ण इतिहास है। शत्रुजयोद्धारक वाहक के अनुज अंबड़ ने अपने पिता के पुण्यार्थ शमली विहार का उद्धार कराया था, आचार्य हेमचद्र द्वारा सिंधवा देवी के उपद्रव दूर करने का उल्लेख है।

८. कौशाम्बी तीर्थ—यहाँ के पद्मप्रभ जिनालय में उस समय भगवान् महावीर को पारणा कराती हुई चन्दनबाला की मूर्ति थी जो आज नहीं है। पास मे ही वसुहार गाँव था।

९. अयोध्या कल्प से विदित होता है कि देवेन्द्रसूरि जी यहाँ के तीन महाबिम्ब आकाश मार्ग मे लाये थे जिनमे सेरीसा पार्श्वनाथ का बिम्ब धारासेणक गांव के खेत मे रह गया था। महाराजा कुमारपाल ने उस महाप्रभावक बिम्ब की स्थापना की थी।

१०. हस्तिनापुर में शान्तिनाथ, कुंथुनाथ, अरनाथ और मल्लिनाथ के मनोहर चैत्य थे। अम्बा देवी का भी देवल था।

११ साचोर तीर्थ राजा नाहड़ निर्मापित और जज्जिगसूरि प्रतिष्ठित था। यह तीर्थ भी अत्यत चामत्कारिक था। स० ८४५ में हमीर ने वल्लभी का भग किया तब और बाद में स० १०८१ में गजनी पति भी साचोर का भग करने में असमर्थ रहा। स० १३४८ मे भी ब्रह्मशान्ति ने चमत्कार दिखाया और स० १३५८ में अलाउद्दीन के भाई उलूखान के आक्रमण समय भी अनाहत बाजे सुनकर सेना भग गई पर स० १३६७ मे सुलतान अलाउद्दीन ने गोमांस रुधिर से अपवित्र कर प्रतिमा को दिल्ली लाकर आशातना की।

१२. मिथिला तीर्थ – विदेह जनपद में जगई नाम से प्रसिद्ध मल्लिनाथ और नमिनाथ भगवान् के चैत्य थे। वहाँ की विद्या समृद्धि और प्राकृतिक रहनसहन प्रशंसनीय था। आज तीर्थ विच्छेद है।

१३. पावापुरी तीर्थ—इस लघुकल्प के अनुसार निकटस्थ पहाड़ी में दरार और दीवाली के दिन कुंए के पानी से दीपक जलने का उल्लेख है। बृहत्कल्प तो बहुत विस्तृत और अनेक शास्त्रीय पौराणिक ज्ञातव्यों से परिपूर्ण है।

१४. (ए) कन्यानयन महावीर प्रतिमा—यह प्रतिमा सिरि जिनपतिसूरि जी ने सं० १२३३ आषाढ सुदि १० को प्रतिष्ठित की थी। इसके निर्माता उनके चाचा सेठ नागदेव थे। सं० १२४८ में पृथ्वीराज चौहान का सुलतान सहाबुद्दीन द्वारा निधन होने पर सेठ रामदेव (राज्य प्रधान) के निर्देश से कयंवास स्थल के टीबों में प्रतिमा छिपा दी थी। १३११ में सुथार जोज्जो को स्वप्न देकर भगवान् प्रगट हुए। किन्तु परिकर प्राप्त न हुआ जिसपर प्रशस्ति लेख मिलने की सम्भावना की। स० १३८५ तक वहाँ पूजित रही जट्ठुअ राजपूतों की धाड़ से गाँव उजड़ गया। उसी वर्ष हांसी के अल्लविय सिकदार ने श्रावक और साधुओं को बन्दी बनाकर विडम्बित किया। पार्श्वनाथ प्रतिमा का भंग हुआ। महावीर स्वामी की प्रतिमा दिल्ली-तुगलकाबाद के शाही खजाने में लाकर रखी गई। फिर प्रभावक आचार्य श्रीजिनप्रभसूरि जी द्वारा मुहम्मद तुगलक को प्रतिबोध देकर अनेक चमत्कारों से प्रभावित सम्राट् द्वारा मन्दिर बना कर पूजे जाने का विशद वर्णन दो कल्पों में है।

श्री जिनप्रभसूरि जी जब देवगिरि पधारे तो प्रतिष्ठानपुर

पधार कर संघपति जनसिंह, साहण, मल्लदेव आदि के साथ मुनि-सुव्रत (जीवित) स्वामी की प्रतिमा को वन्दन किया।

१५. अणहिलपुर अरिष्टनेमि कल्प—से विदित होता है कि कन्नौजपति ने अपनी पुत्री महनिका को कञ्चुलि सम्बन्ध में दिए गए गूर्जरदेश में जक्ख सेठ को पोठी लेकर आने पर लक्खाराम में चौमासा बिताना पड़ा और स्वप्नादेश से खोये बैल मिले और अरिष्टनेमि, पार्श्वनाथ और अम्बिका की प्रतिमाएं इमली के वृक्ष के नीचे से निकाली। मदिर बनने पर ब्रह्माण गच्छीय यशोभद्रसूरि ने प्रतिष्ठित किए। उसी स्थान पर सं० ८०२ में वनराज चावड़ा ने अणहिलपुर पाटण बसाया। वहां को वंशावली इस कल्प में दी गई है।

१६ नाशिकपुर कल्प—इस पौराणिक तीर्थ के कल्प में चन्द्र-कान्त मणिमय चन्द्रप्रभ प्रतिमा को प्रभु की विद्यमानता में ही सौधर्मेन्द्र से प्रतिमा प्राप्त करने और प्रजापति के मन्दिर बनाने का उल्लेख है। रामचंद्र जी व कुन्ती द्वारा बाद में जीर्णोद्धार हुआ। शान्तिसूरि ने कलिकाल में जीर्णोद्धार कराया। राजा परमर्दी ने २४ गांव अर्पण किए। महल्लय क्षत्रिय डाकूवाइओ के द्वारा प्रासाद गिरा देने पर पल्लीवाल ईश्वर के पुत्र माणिक्य के पुत्र कुमार सिंह ने जीर्णोद्धार कराया था।

१७ हरिकंखी पार्श्वनाथ कल्प से विदित होता है कि चालुक्य भीमदेव के समय अतनु वुक्क सलार ने अणहिलपुर पाटण को भंग कर लौटते हुए हरिकंखी गांव की प्रतिमा को भग्न कर डाला। अधिष्ठाता देव के निर्देश से जोड़कर छ महीना बंद रखने पर जुड़ जाने का चमत्कार वर्णित है।

१८. शुद्धदन्ती पार्श्वनाथ कल्प—यह राजस्थान के सोजत से सम्बन्धित है इस परगने को 'सात सौ देश लिखा है, सोधतिवाल

गच्छ यहीं से सम्बन्धित है। अयोध्या से रामचंद्र जी के देहरासर की रत्नमय प्रतिमा अधिष्ठाता देव ने गगनमार्ग से यहाँ ला कर भूमिगृह में रखी और उसे रत्नमय से पाषाण मय कर दिया। तुर्कों द्वारा मस्तक उतार देने पर भी अजापालक द्वारा मस्तक को शरीर पर चढ़ा देने से वह पुनः अखण्ड हो गई।

१९ अवन्ति देशस्थ अभिनंदन कल्प में मेदपल्ली में तुर्कों द्वारा खण्डित प्रतिमा को जोड़कर प्रतिदिन पूजा करने के नियम वाले वइजा श्रावक द्वारा पूजे जाने व अधिष्ठाता द्वारा चन्दन लेप से अखण्ड हो जाने का निर्देश व बाद में जिनालय निर्माण व मठ-पति अभयकीर्ति भानुकीर्ति द्वारा चैत्यव्यवस्था का उल्लेख व मालवपति जयसिंह देव द्वारा २४ हल की भूमि मठपति को व १२ हल भूमि पूजक को प्रदान करने का उल्लेख है।

२०. चम्पापुरी कल्प में सुभद्रा सती द्वारा बंद छोड़ा हुआ एक दरवाजा अठारह सौ वर्षो तक विद्यमान था जिसे सं० १३६० में लक्षणावती (गौड़ बंगाल) के सुलतान समसदीन ने तुड़वाकर पत्थर और कपाटों को ले जाकर शंकरपुर दुर्ग के निर्माण में काम लगाने का महत्त्वपूर्ण उल्लेख है।

२१. श्रावस्ती नगरी 'महेठ' नाम से तब भी प्रसिद्ध थी, संभव-नाथ जिनालय गगनचुंबी था और देवानुभाव से संध्या समय बन्द हो जाता और प्रातःकाल स्वयं खुल जाता था। एक बार सुलतान अलाउद्दीनके मल्लिक हब्बस ने बहराइच से आकर प्राकार कपाट व विम्बों को भग्न कर डाला। उस चैत्य शिखर पर चीता आकर उत्सवादि के समय बैठ जाता और मंगल दीपक होने पर चला जाता था। उस समय वहाँ बौद्धायतन भी था जहाँ समुद्र वंशीय करावल्ल नरेन्द्र जो बौद्ध भक्त थे प्रक्षरित पलाना हुआ। अलंकृत महातुरंगम चढ़ाते थे, यहाँ बहुत प्रकार की औषध उत्पन्न होती थी।

२२. वाराणसी कल्प—वाराणसी चार भागों में विभक्त थी। १ राजधानी वाराणसी, २. मदन वाराणसी, ३. विजय वाराणसी ४ देव वाराणसी (यहाँ विश्वनाथ का मन्दिर है जिसमें जैन चतुर्विंशति पट्ट उस समय भी पूजा जाता था। कमल सरोवर के पास पार्श्वनाथ जिनालय में अनेक जिन-प्रतिमाएँ थीं। तीन कोश पर धर्मेक्षासन्निदेश में बोधि सत्त्व का उच्च शिखरी आयतन था। (यह स्थान आजकल सारनाथ कहलाता है) ढाई योजन पर चन्द्रप्रभ स्वामी की चार कल्याणकभूमि चन्द्रावती है।

२३. कोका वसतिपार्श्वनाथ कल्प—प्रश्नवाहन कुल के हर्षपुरीया श्री अभयदेवसूरि ने अणहिलपुर आकर जयसिंहदेव से मलधारि विरुद पाया। वे घृतवसति में प्रवचन करने जाते थे पर गोष्ठी के निषेध करने पर मोखदेवनायग आदि श्रावकों ने नये स्थान की गवेषणा की। कोका श्रावक से यथोचित मूल्य में भूमि लेकर उसी के नाम से संबद्ध कोकावसति का निर्माण कराया। भ० पार्श्वनाथ को प्रतिष्ठित किया गया पर भीमदेव के राज्य काल में मालवा के सुलतान ने पाटण का भंग कर दिया और कोकावसति की पार्श्वनाथ प्रतिमा को तोड़ डाला। नायग के वंशधर रामदेव, आशधर ने उद्धार कराया। आरासन से प्रतिमा के लिए तीन फलक मंगवाये पर संतोष न होने पर रामदेव अनशन कर बैठ गया। आठवें उपवास में देवादेश हुआ कि गहूँली पर पुष्पाक्षत्त वाले स्थान के नीचे पाषाण फलक है। उसे निकाल कर बिम्ब निर्माण कराया और सं० १२६६ में देवानन्दसूरि ने प्रतिष्ठा की। इसमें रामदेव के वंशजों के नाम दिए हैं और देल्हण को स्वप्न दिया कि अधिष्ठायक चार घड़ी यहाँ रहते हैं अतः संखेश्वर पार्श्वनाथ की यात्रा यहीं सफल होगी।

२४. ढिंपुरीतीर्थ—पारेत जनपद में शराविका पर्वत के पास

चर्मणवती नदी के किनारे चेल्लण पार्श्वनाथ ढिंपुरी तीर्थ है जो वंकचूल द्वारा निर्यापित है। प्रतिमा भग्न करने आये हुए म्लेच्छों के हाथ स्तंभित हो गए। सिंहगुफापल्ली ही ढिंपुरी है। यहाँ महावीर स्वामी, पार्श्वनाथ प्रतिमाएँ थीं। नदी का नाम रंतिदेव भी है स्तोत्रानुसार ऋषभदेव, मुनिसुव्रत, अम्बिका-क्षेत्रपालादि की मूर्त्तियाँ भी यहाँ थीं।

२५. कुडुंगेश्वर नाभेयदेव कल्प—श्वे० चारणमुनि वज्रसेन ने शक्रावतार तीर्थ मे आदीश्वर भगवान् की प्रतिष्ठा की। यह कल्प शासनपट्टिका को देखकर इस कल्प को बनाने का महत्त्वपूर्ण उल्लेख है। सिद्धसेन दिवाकर से प्रतिबोध पाकर सम्राट् विक्रमादित्य ने "वि० सं० १ चैत्रसुदि १ गुरुवार को गोहृद मंडल के सांवद्रादि ९१ गाँव, चित्रकूट मडल के बसाड़ आदि ८४ गाँव, घुटारसी आदि २४ गाँव मोहड़ वासक मडल के ईसरोडा आदि ५६ गाँव कुडुगेश्वर ऋषभदेव तीर्थ के लिए। यह पट्टिका उज्जैन में भाटदेशीय महाक्षपटलिक परमार्हत् श्वेताम्बर ब्राह्मण, गौतम के पुत्र कात्यायन ने राजाज्ञा से लिखी। इस कल्प में विक्रम से सिद्धसेनसूरि ने तुम्हारे से ११९९ वर्ष बाद परनार्हत् कुमारपाल होगा—भविष्य वाणी की—ऐसा उल्लेख है।

कल्यानयन महावीर कल्प परिशेष—यह विद्यातिलक मुनि की कृति है पर समकालीन इतिवृत्त होने से इसका महत्त्व अत्यधिक है। श्री जिनप्रभसूरि जी ने दौलताबाद के साहू पेथड़, साहु सहजा ठा० अचल कारित चैत्यों का तुर्कों द्वारा भंग किये जाते समय फरमान दिखा कर निवारण करने का उल्लेख हैं। ताजमल्लिक, नगर नायक कुतुलखान महामल्लिक दीनार आदि एवं सुलतान की माता मगदूम-इ-जहाँ आदि के उल्लेख है एवं चैत सुदि १२ को पाँच शिष्यों की दीक्षा एवं व्रत ग्रहणादि के साथ मालारोपण, व्रत

ग्रहण एव आषाढ़ सुदि १० को १३ जिन प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा बड़े समारोह पूर्वक करने का उल्लेख है। मथुरा, हस्तिनापुर यात्रा व श्रावकों द्वारा तीर्थोद्धार, प्रतिष्ठादि अनेक धर्मकार्यों का वर्णन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। विस्तारभय से उनका यहां विवरण न लिख कर मूलकल्प को ही देखने का अनुरोध है।

२६. आमरकुण्ड पद्मावती देवी कल्प—तिलंग जनपद विभूषण आन्ध्र देश में आमरकुण्ड नगर में पद्मावती देवी का मन्दिर है। उरंगल शिलापत्तन में पहाड़ पर ऋषभदेव शान्तिनाथ के प्रासाद थे एवं दि० मेघचन्द्र मुनि रहते थे उनके छात्र क्षत्रिय माधवराज ने देवी की कृपा से विस्तृत राज्य प्राप्त किया। कंकति से काकतीय वश हुआ। राजाओं की वंशावली भी महत्त्वपूर्ण है इस विषय में जैन संदेश के शोधाङ्क में डॉ० ज्योति प्रसाद जैन का लेख द्रष्टव्य है।

२७. चतुरशीति महातीर्थ नाम संग्रह कल्प—इस विषय में ऊपर लिखा जा चुका है।

२८. कुल्पाकमाणिक्यदेव तीर्थकल्प—यहाँ आदिनाथ भ० की प्रतिमा भरत निर्मापित अष्टापद तीर्थ की है। उसे रावण के यहाँ मंदोदरी ने इन्द्र से प्राप्त की। फिर समुद्र में देवों द्वारा पूजित रही यह मरकत मणि की प्रतिमा है। कल्याण नगर के शंकर राजा ने मारि उपसर्ग निवारणार्थ पद्मावती के सांनिध्य से लवणाधिप से प्राप्त की और बछड़ों को जो कर लाते हुए सदेह होने से पीछे देखा तो अटक जाने पर वहीं स्थापित की गई। उन दिनों कुल्पाक "दक्षिण वाराणसी" कहलाता था। शंकर राजा ने प्रासाद बनवा कर स्थापित की। भगवान् के न्हवण जल से दीपक जलता था एवं मिट्टी का स्नानजल से भिगो कर बाँधने से अन्धों को नेत्र ज्योति प्राप्त हो जाती थी। साँप काटे व्यक्ति भी निर्विष हो जाते

थे। वि० सं० ६८० पर्यन्त भगवान् अधर रहे बाद में वेदी पर विराजमान हुए वहाँ अमी झरती थी। यह तीर्थ आज भी प्रभावशाली है।

२९. श्रीपुर—अंतरिक्ष पार्श्वनाथ कल्प—यह प्रतिमा भी रावण के समय की है और चिंगउल देश के श्रीपाल राजा का कुष्ट दूर हो गया तब तालाब में से निकालकर स्वप्न निर्देशानुसार लाई गई। आज भी प्रतिमा अधर है जिसके नीचे से वस्त्र निकलता है और उसका चामत्कारिक वर्णन कल्प में पाया जाता है। प्रभु के न्हवण जल से सिंचित आरती नहीं बुझती और न्हवण जल से दाद खाज कुष्टादि चर्म रोग मिट जाते हैं।

३०. फलवर्द्धि पार्श्वनाथ कल्प—सवालक्ष देश में मेडता के निकटवर्त्ती यह पूर्वकाल में बड़ा नगर था। धांधल श्रीमाल और ओसवाल शिवंकर वहाँ रहते थे। गाय का दूध झरने के स्थान में प्राचीन बिम्ब निकला और मन्दिर निर्माण प्रारम्भ हुआ। प्रतिदिन देवानुभाव से द्रम्म मुद्रा का स्वस्तिक मिलता जिससे मन्दिर निर्माण कार्य चलता था। सेठ के पुत्र के छिपकर देखने से द्रम्ममुद्रा आना बन्द हो गया। सं० ११८१ में राजगच्छीय धर्मघोषसूरि ने प्रतिष्ठा की। सुलतान साहाबुद्दीन ने मूल बिम्ब को भग्न किया तो म्लेच्छ सेना में अंधत्व, रुधिर-वमनादि होने लगा तब सुलतान ने फरमान निकाला कि इसे कोई भग्न न करे। यहाँ का अधिष्ठाता जाग्रत-चमत्कारी है। पौ० ब० १० को पार्श्व जन्म दिवस का मेला अति प्राचीन समय से लगता आ रहा है।

३१. वैभार गिरि कल्प—इस कल्प से विदित होता है कि उस समय राजगृह में दारिद्रविद्रावक रसकूपिका, त्रिकूट खण्डिकादि शिखर व करण गांव के अवशेष थे। गरम व ठण्ढे पानी के कुण्ड तो आज भी हैं पर उपर्युक्त स्थान कहाँ थे? पता नहीं। उस समय

भी उस प्रदेश में बौद्ध विहारों की प्रचुरता थी। सप्तपर्णी गुफा को जैन वाङ्मय में तब भी रौहिणेय गुफा कहते थे। कल्प में लिखा है कि पूर्वकाल में यहाँ छत्तीस हजार वणिकों के घर थे जिनमें आधे जैन और आधे बौद्ध थे। नालदा में कल्याणक स्तूप और गौतम स्वामी का मंदिर भी था।

३२. कलिकुण्ड कुर्कुटेश्वर कल्प—यह तीर्थ चम्पापुरी के निकट अगदेश में था। पहाड़ के नीचे सरोवर था जहाँ पार्श्वनाथ स्वामी का विचरण हुआ था। वर्णन देखते मन्दार गिरि की कल्पना होती है।

३३. रत्नवाहपुर कल्प—आजकल रत्नवाहपुर को नौराही कहते है, सोहावल स्टेशन है। यहाँ धर्मनाथ भगवान् के चार कल्याणक हुए। इस नागकुमार अधिष्ठित तीर्थ में नागमूर्त्ति युक्त धर्मनाथ भगवान् को सर्वसाधारण जनता पूजती थी और उन्हें धर्मराज नाम से पुकारती थी। वर्षा न होने पर हजारों घड़े दूध से अभिषेक कराते और मेघवृष्टि हो जाती। कुंभार बालक के धोखा देने से नागकुमार ने कुंभारों का वश नाश कर दिया तब से मिट्टी के बर्त्तन भी जनता को अन्य स्थान से लाना पड़ता था।

३४. काम्पिल्यपुर—भगवान् विमलनाथ के वाराह लंछन के कारण इसे शूकर क्षेत्र भी कहते थे। भगवान् के राज्याभिषेक सह-पंच कल्याणक होने से नगर का भी यही नाम रूढ था।

३५. शखपुर पार्श्व (संखेश्वर) कल्प में जरासध द्वारा जरा-प्रभावित यादव सेना को भगवान् नेमिनाथ के निर्देश से श्रीकृष्ण ने नागराज से पार्श्वनाथ प्रतिमा प्राप्त कर जरा दूर की। कालान्तर में शखकूप में प्रकट होने से चैत्य में विराजमान की और उसे पूजने लगे। अधिष्ठाता द्वारा चमत्कार—परचे दिखाने से जनसाधारण तो क्या तुर्कराजा लोग की तीर्थ की महिमा करते हैं।

३६. पाटलिपुत्र नगर कल्प--इस नगर को कूणिक के पुत्र उदायी ने बसाया था जिसका कल्प में विस्तृत वर्णन है। उदायी के बाद नवनंद और कल्पक का वंशज शकडाल मंत्री हुआ। यहाँ स्थूलिभद्र आदि अनेक महापुरुष हुए जिनका कल्प में वर्णन है। और साथ ही साथ यहाँ की समृद्धि के आश्चर्यकारी उदाहरण हुए हैं। यहाँ अनेक प्रकार के चावल होते थे जिनमें गर्दभिका शाखि-रत्न को बार-बार काटने पर भी पुनः-पुनः ऊग जाता। जिनप्रभ-सूरि जी के समय में यह गौड़ देशान्तर्गत था क्योंकि लक्षणावती के सुलतान ने उसे गौड़ देश में मिला दिया था।

३७. प्रतिष्ठानपुर के कल्पों में पौराणिक वार्त्ता है जिसमें सातवाहन को विक्रमादित्य के समकालीन बतलाया है और नागराज के सांनिध्य से विक्रम की सेना को हराने का वर्णन है। यह राजा जैन हो गया। उसने जिन चैत्य बनवाये और पचास वीरों ने भी अपने नामाङ्कित जिनालय निर्माण कराये। सातवाहन के मरने पर शक्तिकुमार का राज्याभिषेक हुआ। वीर क्षेत्र प्रतिष्ठान में तब से आजतक कोई राजा प्रवेश नहीं करता।

३८. अष्टापद तीर्थ कल्प--अयोध्या से बारह योजन की दूरी पर अष्टापद लिखा है। कैलाश और धवलगिरि इसी के नाम हैं, निकट ही मान सरोवर है। आकाश साफ होने पर अयोध्या के निकटवर्ती उड्डयकूट पर जाने से उसकी धवल शिखर-परम्परा दिखायी देती है। जिनप्रभसूरि लिखते हैं कि यद्यपि यह तीर्थ अगम्य है पर प्रतिबिम्बित दर्शन पाकर भव्यजन यात्राफल प्राप्त करता है। इसमें भरत चक्रवर्त्ती ने २४ तीर्थंकर और अपने ९९ भाइयों के स्तूप-मूर्त्तियाँ व स्वयं की मूर्ति भी स्थापित की थी। यहाँ के विशालकाय जिनालय का भी भव्य वर्णन किया गया है। सगर चक्रवर्त्ती द्वारा परिखा निर्माण, गंगानदी को गंगासागर तक गति, वज्रस्वामी के जीव तिर्यक् जृंभक देव को गौतमस्वामी

द्वारा प्रतिबोध, भगवान् महावीर द्वारा प्रतिबोध, भगवान् महावीर द्वारा गिरिराज पर चढ़ने वाले को तद्भवमोक्षगामी वतलाने पर गौतम स्वामी के चढ़ने व १५०३ तापसों को प्रतिवोध देने का विशद वर्णन है।

जिन संक्षिप्त कल्पों की बातों का उन्होंने विस्तार किया है उनमें से धर्मघोष सूरि कृत कल्प को श्रीजिनप्रभसूरि ने इस विविध तीर्थकल्प में सम्मिलित कर दिया है।

३९. कोटिशिला—यह तीर्थ एक योजन चौड़ा और एक योजन ऊँचा मगध देश में देवताओं द्वारा पूजित बतलाया है जो अब अज्ञात है। यहाँ ६ तीर्थंकरों के शासन में करोड़ो मुनि सिद्ध हुए है और वासुदेव लोग इसे ऊचा उठा कर शक्ति सन्तुलन बताते हैं। बलभद्र जैन ने इस तीर्थ की अवस्थिति के विषय में भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ भाग-२ के पृ० २२३ मे उहापोह की है।

४०. नन्दीश्वर द्वीपकल्प—नन्दीश्वर द्वीप मनुष्य लोक से बाहर आठवां द्वीप है जहाँ शाश्वत बावन पहाड़ों पर बावन जिनालय है। इनका कल्प मे विशद वर्णन है। देवेन्द्रादि विशिष्ट अवसर पर अट्ठाई महोत्सव करते है एवं लब्धिधारी या देव के साहाय्य से ही इसके दर्शन कर सकते हैं।

४१. वस्तुपाल तेजपालमंत्रि कल्प—प्राग्वाट आसराज कुमार देवी के नन्दन इन विश्वविश्रुत भ्राता युगल के सुकृत्यों का वर्णन आचार्य प्रवर ने बड़े ही हार्दिक प्रेम से किया है और मन्त्रिद्वय को तीर्थ स्वरूप बतलाया है क्योंकि जिनके हृदय में जिनेश्वर विराजमान हों वही तीर्थ है।

४२. कपर्द्दि यक्ष कल्प—पालीताना में सरपच कपर्द्दि निवास करता था जो सप्त व्यसन रत था। गुरु महाराज ने उसके द्वारा प्रदत्त स्थान में चातुर्मास किया और अन्त में नवद्वार मंत्र स्मरण

व शत्रुंजय को नमस्कार करने का नियम दिलाया। वह अनशन पूर्वक मर के शत्रुंजयगिरि का अधिष्ठायक कपर्दिद यक्ष हुआ।

४३. व्याघ्री कल्प--शत्रुंजय पर वाघणपोल प्रसिद्ध है। तीर्थाधिराज के द्वार पर एक व्याघ्री आकर अनशन कर के बैठ गई और ७-८ दिन की आराधना से स्वर्ग गई। उसका देह सस्कार अगर चंदन से करके प्रतोली के दक्षिण की ओर उसकी मूर्ति स्थापित की गई।

४४. अम्बिकादेवी कल्प—गिरनार पर अम्बिका शिखर दूसरी टोंक प्रसिद्ध है। अम्बिका कोडीनार के ब्राह्मण सोम की भार्या थी जो जैन धर्म परायणा थी। श्राद्ध के दिन ब्रह्म भोज से पूर्व मुनिराज को आहार देने से क्रुद्ध सास और पति द्वारा अपमानित होकर अपने सिद्ध-बुद्ध पुत्रों के साथ निकल कर जाते हुए पीछे से पति को आते देख मार्गवर्त्ती कुएँ में गिर गई और नेमिप्रभु के ध्यान से मर कर गिरनार की अधिष्ठातृ अम्बिका देवी हुई। सोमभट्ट भी महासती के पीछे कूद पड़ा जो देव हुआ और सिंहरूप धारण कर देवी का वाहन हो गया। अम्बिका को कोंहडी भी कहते हैं।

अवशिष्ट कल्पों में कुछ सैद्धान्तिक विषयों सम्बन्धी है। किसी कारण से उनका इस ग्रन्थ में संग्रह कर लिया गया है पर वे तीर्थो सम्बन्धी नहीं होने से उनको अलग रखा जाना ही अधिक समीचीन होता। समय-समय पर कल्प रचे जाते रहे अतः इनमें कुछ तारतम्य है। अनुक्रम ठीक से नहीं रह सका, प्रान्तीय वर्गीकरण भी नहीं हो सकता। सं० १३९० में जब इन सबको दिल्ली में संगृहीत कर ग्रंथ का रूप दिया गया तब आजकल की भाँति कोई क्रम ठीक बैठाया नहीं जा सका और मुनि जिनविजय जी ने भी

वैसा कोई क्रम नहीं बैठाया जो सम्पादकीय के नाते उन्हें करना चाहिए था। हमने भी इसी क्रम से अनुवाद किया है। सं १९९० में मुनि जिन-विजयजी ने जब इस ग्रंथ रत्न का अनेक हस्त-लिखित प्रतियों के आधार से सिंघी जैन ग्रन्थमाला के ग्रंथाक १० के रूप में प्रकाशित कराया तो अपने निवेदन के अन्त में वर्त्तमान राष्ट्रभाषा में द्वितीय अवतार होगा जो ऐतिहासिक अन्वेषण वाले विवेचनादि से अलंकृत व स्थान विशेष के चित्रादि से विभूषित होगा पर मुनि जी का वह मनोरथ पूर्ण नहीं हो सका। अन्त में तथाविध योग्यता न होने पर भी हमने ऐसे ग्रन्थ का हिन्दी में अनुवाद प्रकाशित होना चाहिए इस प्रबल भावना से यह अन-धिकार सा कार्य किया है इसमें जो त्रुटियाँ रही हों उसके लिए क्षमा प्रार्थी हूँ। विशेषज्ञ हमें संशोधनादि सूचित करेंगे। ऐसी आशा है।

प्रस्तुत ग्रन्थ की प्रस्तावना डा० ज्योति प्रसाद जी जैन जैसे जैनइतिहास के विशिष्ट विद्वान् ने हमारे अनुरोध पर लिख भेजने की कृपा की है उसके लिए अत्यन्त आभारी हूँ।

प्रस्तुत ग्रन्थ के परिशिष्ट में हम इस विषय की वर्षों की संचित सामग्री देना चाहते थे पर जो कुछ सामग्री दी गई है उससे भी ग्रन्थ का आकार काफी बड़ा हो गया है इसलिए अन्य सामग्री को देने का लोभ सवरण करना पड़ा है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रकाशन में श्री नाकोड़ा पार्श्वनाथ जैन तीर्थ के अध्यक्ष एव ट्रस्टियों व सदस्यों ने बहुत रुचि दिखाई और प्रकाशन का सारा खर्च वहन किया इसके लिए हम उनके बहुत ही आभारी हैं।

इस ग्रन्थ में श्वे० जैन तीर्थों सम्बन्धी बहुत से चित्र देने की

इच्छा रही पर सब तीर्थों के फोटो प्राप्त करना सम्भव नहीं हुआ अतः जिन जिन तीर्थों के जितने ब्लाक जैन भवन, कलकत्ता श्रीजैन सेवा समिति व श्री महेन्द्र कुमार सिंघी से प्राप्त हुए उन्हें साभार प्रकाशित किए हैं।

इस ग्रंथ का मुद्रण श्री महावीर प्रेस, वाराणसी में हुआ है वहाँ से प्रत्येक फर्मे का प्रूफ मंगाने में पर्याप्त विलम्ब होता इसलिए वहीं प्रूफ संशोधन कर छापे गये अतः बहुत सी अशुद्धियां रह गईं जिसका हमें खेद है।

अन्त में जिन जिनसे भी हमें सहयोग मिला है उन सबके प्रति आभार प्रकट करते हुए जैन तीर्थों सम्बन्धी अवशिष्ट सामग्री भी हम शीघ्र प्रकाशन करने में समर्थ हों यही शुभेच्छा है।

इस ग्रन्थ का अनुवाद कलकत्ता में परमपूज्या विदुषी आर्यारत्न श्री सज्जनश्री जी महाराज के सांनिध्य में हुआ। पूज्य प्रेरणा सम्राट् काकाश्री अगरचंद जी नाहटा का आदेश मिला कि इस महान् ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद करो! तो पर्यूषण में प्रारम्भ करके प्रतिदिन अनुवाद को पूज्या साध्वी जी महाराज के पास बैठ कर मिला लेता व जहाँ भी गाडी अटकती महाराज साहब उसको चला देते इस प्रकार दीवाली के पूर्व इसका अनुवाद पूर्ण हो गया और प्रेस कापी बनाकर काकाजी अगरचंदजी को भेज दी। उन्होंने महोपाध्याय विनयसागर जी आदि को भी दिखलाया तथा श्रीयुत् देवेन्द्रराजजी मेहता ने भी प्राकृत भारती से प्रकाशन में बड़ी उत्सुकता दिखाई पर अन्त में काकाजी अगरचंद जी की प्रेरणा से नाकोड़ा तीर्थ कमेटी को ही इसके प्रकाशन का श्रेय मिला। प्राकृत तित्थकप्प जो अपूर्ण और अव्यवस्थित रूप में मिला उसके

मूल और अनुवाद संशोधन में मुनि श्री नेमिचंद्रजी ने मौन, उपवास रहते हुए भी समेत शिखर जी में उल्लेखनीय सहयोग दिया। इसके लिए उनका भी आभार व्यक्त करना आवश्यक समझते है।

विनीत
भँवरलाल नाहटा

अनुक्रमणिका

परिशिष्ट १

विविध तीर्थ-कल्प

१. शत्रुञ्जय तीर्थ-कल्प

श्री पुण्डरीक गिरि शिखर के प्रासाद के अलङ्कारभूत श्री ऋषभदेव आप सबका कल्याण करें। अतिमुक्त केवली ने नारद ऋषि के समक्ष जो श्री शत्रुञ्जय तीर्थ का माहात्म्य कहा था, उसे मैं अपनी और दूसरों की स्मृति के लिए लेश मात्र कहूंगा। भव्य जनों को पाप नष्ट करने की इच्छा से उसे श्रवण करना योग्य है।

शत्रुञ्जय पर पाँच कोटि तपस्वियों के साथ श्री पुण्डरीक स्वामी चैत्री-पूनम के दिन सिद्ध हुए अतः यह पर्वत भी पुण्डरीक (गिरि) नाम से स्मरण किया गया।

देवों, मनुष्यों और ऋषियों द्वारा उस तीर्थ के १. सिद्धक्षेत्र, २. तीर्थराज, ३. मरुदेव, ४. भगीरथ, ५. विमलाचल, ६. बाहूबली, ७. सहस्रकमल, ८. तालध्वज, ९. कदम्ब, १०. शतपत्र. ११. नगाधिराज, १२. अष्टोत्तर शतकूट, १३. सहस्रपत्र, १४. ढङ्क, १५. लौहित्य, १६. कपर्दिनिवास, १७. सिद्धिशेखर, १८. शत्रुञ्जय, १९. मुक्तिनिलय, २०. सिद्धि पर्वत, और २१. पुण्डरीक ये इक्कीस नाम किये हुए गाये जाते हैं।

ढंक आदि पाँच कूट देवों सहित हैं और जिनके विवरों में रसकूपिका, रत्नखान और औषधियाँ विराजित हैं। काल के प्रभाव से मिथ्यादृष्टि लोगों द्वारा, [१]ढंक, [२]कदम्ब, [३]लौहित्य, [४]तालध्वज और [५]कपर्दि ये पाँचों स्वीकृत किए हुए हैं। अर्थात् उनके अधिकार में हैं।

इसका विस्तार अवसर्पिणी काल में आप्तों ने पहले आरे में अस्सी योजन, दूसरे में सत्तर, तीसरे में साठ, चौथे आरे में पचास, पाँचवें आरे में बारह योजन और छट्ठे आरे मे सात हाथ का कहा है।

युगादीश-ऋषभदेव के समय यह पर्वत पचास योजन मूल, दश योजन विस्तार और आठ योजन ऊँचा था। कीर्ति से भुवन को पवित्र बनाने वाले ऋषभसेनादि असंख्य नाथ तीर्थंकर यहाँ पर समौसरे है और अतीत काल में महर्षि लोग सिद्ध हुए हैं। श्री पद्मनाभादि भावी जिनेश्वरों का यहाँ समवसरण होगा।

श्री नेमिनाथ भगवान को छोड़कर ऋषभदेव से लेकर महावीर स्वामी पर्यन्त तेईस तीर्थङ्कर यहाँ समौसरे हैं।

इस अवसर्पिणी में पवित्र बुद्धिवाले श्री भरत चक्रवर्ती ने आदीश्वर भगवान के केवलज्ञान उत्पन्न होने पर इस पर्वत पर योजन प्रमाण ऊँचा चैत्य कराया था जो आदीश्वर भगवान की अंक रत्न की प्रतिमा और बाईस छोटी देवकुलिकाओं में सोने चाँदी की बाईस तीर्थंकरों की प्रतिमाओं से युक्त था।

बाईस तीर्थङ्करों की तदाकार पादुका और लेप्य निर्मित बिम्ब-युक्त आयतनश्रेणी यहाँ सुशोभित है। यहाँ राजा श्री बाहूबली ने समवसरण सहित मरुदेवी का ऊँचा प्रासाद कराया था।

इस अवसर्पिणी में प्रथम तीर्थङ्कर के प्रथम गणधर, प्रथम भरत चक्रवर्ती के प्रथम पुत्र पुण्डरीक स्वामी यहाँपर सर्वप्रथम सिद्ध हुए।

यहाँ नमि-विनमि नामक विद्याधरेन्द्र महर्षि दो कोटि मुनियों के साथ सिद्ध को प्राप्त हुए। द्राविड़ और वालिखिल्लादि राजाओं ने दश कोटि साधुओं के साथ यहाँ परम पद को प्राप्त किया।

जय, राम आदि तीन कोटि राजर्षि यहाँ पधारे, नारदादि एक लाख नब्बे मुनि शिव पद को पाये। यहाँ प्रद्युम्न, शाम्ब आदि कुमार साढ़े आठ कोटि साधुओं के साथ मोक्ष गए।

पचास लाख कोटि सागरोपम तक श्री ऋषभदेव के वंशज आदित्ययश (सूर्ययश) से लेकर सगरपर्यन्त राजागण परम्परा से यहाँ चौदह लाख मोक्ष गए तथा असंख्यात सर्वार्थसिद्ध में गए।

भरत के वंशज शैलक और शुकादि यहाँ असंख्यात कोटाकोटि परिमाण में सिद्ध हुए। यहाँ अर्हत् प्रतिमोद्धार कराने वाले पाँच पाण्डव, कुन्तीसहित बीस कोटि मुनियों के साथ मोक्ष गए।

दूसरे तीर्थंकर अजितनाथ व सोलहवें तीर्थंकर शांतिनाथ ने यहाँ वर्षाकाल-चातुर्मास बिताया। श्री नेमिनाथ के वचनों से यात्रा के लिए आये हुए नन्दिषेण आचार्य ने यहाँ सर्वरोगहर 'अजित शान्ति स्तव' की रचना की।

इस महातीर्थ के छोटे-मोटे असंख्य उद्धार हुए तथा यहाँ पर असंख्य प्रतिमाएँ और असंख्य चैत्यों का निर्माण हुआ।

छोटे तालाब-कुण्ड तथा भरत कारित गुफाओं में भक्तिपूर्वक पूजन-वंदन करने वाले एकावतारी होते हैं।

संप्रति विक्रमादित्य-सातवाहन-वाहड़-पादलिप्त-आम और दत्त के कराये उद्धार प्रसिद्ध है। इसे महाविदेह निवासी सम्यक् दृष्टि भी स्मरण करते हैं, ऐसा कालिकाचार्य के समक्ष शक्रेन्द्र ने कहा था।

यहाँ श्री जावड़शाह के त्रिम्बोद्धार के समय बने श्री अजितनाथ आयतन के स्थान पर अनुपमा सरोवर हुआ।

यहाँ कल्किका प्रपौत्र मेघघोष राजा मरुदेवा और शान्तिनाथ के भवन का उद्धार करावेगा। इसके अन्त में दुष्प्रसहसूरि जी के उपदेश से राजा विमलवाहन उद्धार करावेगा। (पंचम ओर के शेष में) तीर्थोच्छेद होने पर भी यह ऋषभकूट यहाँ देवार्चित पूजायुक्त पद्मनाभ तीर्थंकर पर्यन्त रहेगा।

तीर्थ के माहात्म्य से यहाँ के रहने वाले विशदाशय तिर्यञ्च भी प्रायः निष्पाप होकर सद्गति प्राप्त करते हैं। इस तीर्थके स्मरण

मात्र से मनुष्यों के सिंह-अग्नि-समुद्र-साँप-भूपाल-विष-युद्ध-चोर-वैरी-मारिजन्य भय नष्ट हो जाते हैं।

भरतेश्वर की वनवायी लेप्यमय आदिनाथ प्रतिमा का उत्संग शय्यास्थ एवं आत्मस्थ होकर ध्यान करने से सर्वभयों को जीतने वाला होता है। उग्रतप व ब्रह्मचर्य से जो पुण्य की प्राप्ति होती है, वही शत्रुञ्जय में निवास करने से प्राप्ति होती है।

तीर्थों पर करोड़ों के व्यय से कामित आहार देने का पुण्यफल यहाँ विमलाचल पर एक उपवास करने पर प्राप्त हो जाता है। तीन लोक में जो कुछ भी तीर्थ हैं—पुण्डरीक गिरि का अभिवंदन-दर्शन करने मात्र से उन सबके दर्शन हो जाते है।

सैकडों दानशालाओं में भोजन होने पर भी यहाँ कभी अरिष्ट पक्षी-कौए नही आते। यहाँ यात्रा पर जाते लोगोंको भोजन देने पर करोड़ गुणा पुण्य होता है और यात्रा करके लौटते हुए को भोजन देने पर अनन्तगुणा पुण्य होता है।

विमलाचल को देखे विना भी संघ को प्रतिलाभ देने पर कोटि गुणा पुण्य व देखने पर अनन्त गुणा पुण्य होता है।

इसी तीर्थ को वंदन करने पर तीर्थंकरों के केवलज्ञान व निर्वाण जहाँ हुए है, उन सभी तीर्थों की वंदना हो जाती है।

जन्म-दीक्षा-ज्ञानोत्पत्ति-मोक्षगमन उत्सव दूसरे तीर्थों में पृथक्-पृथक् होते है किन्तु यहाँ सभी एक साथ होते है।

अयोध्या, मिथिला, चम्पा, श्रावस्ती, हस्तिनापुर, कौशाम्वी, काशी, काकन्दी, कम्पिल, भद्दिलपुर, रत्नवाह—शौरीपुर, कुण्ड-ग्राम, पावापुरी, चन्द्रानना, सिहपुर, राजगृह, रैवतक, सम्मेत-शिखर, वैभार, अष्टपदादि तीर्थों की यात्रा के फल से यहाँ की यात्रा करने से सौ गुना फल होता है।

पूजा के पुण्य से सौ गुणा पुण्य, विम्बनिर्माण से एवं चैत्य निर्माण से सहस्र गुणा व प्रतिपालन से अनन्त गुणा पुण्य होता है।

जो इस तीर्थ-शिखर पर प्रतिमा या मन्दिर बनवाता है वह भारत्तवर्ष की ऋद्धि भोगकर स्वर्गश्री प्राप्त करता है।

नमस्कार-सहित तपश्चर्यादि करता हुआ मनुष्य पुण्डरीक गिरि की स्मृति से उत्तरोत्तर तप फल प्राप्त करता है।

त्रिकरण शुद्धि पूर्वक इस तीर्थ को स्मरण करने वाला मनुष्य छःमासी तप का फल प्राप्त करता है।

आज भी पुण्डरीक गिरि पर उत्तम अनशन करके शीलरहित भी सुखपूर्वक स्वर्ग प्राप्त करता है।

यहाँ छत्र, चामर, कलश, ध्वज, स्थाल का दान करने वाला विद्याधर एवं रथदान करने वाला चक्रवर्ती हो जाता है।

भावशुद्धिपूर्वक यहाँ दश पुष्पमालाओं को देने वाला भोजन करता हुआ भी उपवास का फल प्राप्त करता है।

दुगुणा देने से छट्ठ तप, त्रिगुणा से अष्टम, चौगुना देने से दशम, पाँच गुणा से द्वादश और क्रमशः बढ़ते-बढ़ते देने से फल की भी उत्तरोत्तर वृद्धि कही गई है।

विमलाचल पर स्नान पूजा मात्र से जो पुण्य होता हैं, अन्य तीर्थो में वह स्वर्ण-भूषण और भूमिदान करने से भी नहीं होता।

यहाँ धूप खेने से पक्षोपवास का फल और कर्पूर-पूजा से मासक्षमण का फल प्राप्त करता है।

यहाँ निर्दोष भोजनादि से साधुओं को प्रतिलाभने से कार्त्तिक-मासक्षमण का फल होता है। तीनों काल मंत्र पूर्वक स्नान करके चैत्र व आश्विन में "नमोऽर्हद्भ्यः" पद का ध्यान करने से तीर्थंकर पद अर्जन करता है।

पालीताना नगर में पार्श्वनाथ और महावीर स्वामी के दो जिनालय है और जिनके नीचे नेमिनाथ भगवान का महान् आयतन है।

मंत्रीश्वर वाग्भट ने तीन करोड़ तीन लाख स्वर्ण व्यय कर

आदीश्वर भगवान के प्रासाद का उद्धार करवाया। यहाँ तीर्थ में प्रवेश करते ही पहले आदीश्वर भगवान की विशद प्रतिमा के दर्शन करने पर आँखें तृप्त होती है।

श्री विक्रमादित्य से एक सौ आठ वर्ष बीतने पर जावड़शाह ने प्रचुर द्रव्य व्यय करके प्रतिमा को विराजमान किया। और उसने मम्माण पर्वत में उत्पन्न चमकीली कान्ति वाले मम्माण रत्न पाषाण के ज्योतिरस रत्न द्वारा प्रतिमा घटित—निर्माण करवाई।

मधुमती नगर निवासी सेठ जावड़ ने पहिले श्री वज्रस्वामी से शत्रुञ्जय का माहात्म्य सुना था। वह गन्धोदक स्नान कराने की रुचि से लेप्यमय बिम्ब का विचार कर चक्रेश्वरी देवी को स्मरण करके मम्माण पर्वत की खान में गया और वहाँ से पाषाण की प्रतिमा बनवा कर रथ में आरोपण कर शुभ दिन में भार्या-सहित विमल गिरि की ओर चला। दिन में प्रतिमा सहित रथ जितना रास्ता चलता था, उतना ही रात्रि में वापस लौट आता था। यह आश्चर्य देखकर जावड़साह का चित्त खिन्न हो गया और उसने कपर्दि-यक्ष का स्मरण किया। और उसके हेतु और विधि को ज्ञात कर वह अपनी पत्नी के सहित रथ के मार्ग में टेढ़ा सो गया। उसके साहस से प्रसन्न हुए देवता ने रथ को बिम्ब सहित पहाड़ के शिखर पर चढ़ा दिया। सात्त्विकों के लिए कुछ भी दुःसाध्य नहीं है।

मूलनायक का उत्थापन करके उनके स्थान पर मम्माणी पाषाण की प्रतिमा स्थापन करने पर लेप्य बिम्ब के भयंकर शब्द से पर्वत के टुकड़े हुए और उनके द्वारा छोड़ी हुई बिजली श्रेष्ठी के बिम्ब ने हाथ में लेकर मर्दन कर दी। वह सीढ़ियों में छेद करती हुई पहाड़ के देव को भेद कर निकल गई।

जावड़ सेठ चैत्य शिखर पर पत्नी सहित चढ़कर प्रमोद से

हर्ष रोमाञ्चित हो नाचने लगा। म्लेच्छ देश से १८ जहाज आये, जिनका द्रव्य व्ययकर सेठ ने यह धर्म-प्रभावना की। इस प्रकार जावड़शाह ऋषभदेव, पुण्डरीक और कपर्द्दि यक्ष की मूर्त्तियाँ विराजमान कर स्वर्ग का अतिथि बना। भगवान के दाहिनी ओर पुण्डरीक स्वामी और बाँयें तरफ जावड़ शाह द्वारा स्थापित दूसरा विम्ब सुशोभित है।

इक्ष्वाकु और यादव वंशी लोग यहाँ असंख्य कोटा-कोटि सिद्ध हुए है जो 'कोटि-कोटि तिलक' नाम को सूचित करते हैं।

पाँचों पाण्डव, उनकी माता कुन्ती यहाँ से मुक्त हुए, यह इस तोर्थ पर रही हुई टौंक पर लेप्यमय छहों मूर्त्तियाँ सिद्ध करती हैं।

यहाँ श्रीसंघ के अद्‌भुत भाग्य से रायण चैत्य वृक्ष चन्द्र-किरणों से झरते अमृत के सदृश दुग्धवर्षा करता है। यहाँ व्याघ्री-मयूर आदि तिर्यञ्च भी मुक्त भक्ति पूर्वक आदीश्वर भगवान के चरणों को नमस्कार करने से स्वर्ग को प्राप्त हुए है। वाम पार्श्व में सत्यपुरीय महावीरावतार जिनालय और दक्षिण पार्श्व में शकुनि चैत्य के पृष्ठ भाग में अष्टापद का मंदिर है। भव्य जन सरलता-पूर्वक यात्रा कर पुण्य वृद्धि करें, इस हेतु से नन्दीश्वर, स्तंभनक और गिरनार महातीर्थ के मन्दिर विराजमान हैं। अस्तिहस्त नमि और विनमि से सेवित श्री नाभेय जिनेश्वर स्वर्गारोहण चैत्य में शोभायमाने हैं। दूसरे उत्तुंग शिखर को श्रेयांस, शान्तिनाथ, नेमिनाथ, ऋषभदेव और महावीर आदि जिनेश्वर अलंकृत करते हैं। पुण्यशाली जन यहाँ जिनालय में ससार का उच्छेद करने वाली भगवती मरुदेवी को नमस्कार करके अपने आपको कृतकृत्य मानते हैं।

यहाँ कल्पवृक्ष सदृश कपर्द्दि नामक यक्षराज नमस्कार करने वालों एवं यात्रीसंघ के विविध विघ्नों का नाश करते हैं।

यहाँ पर भगवान नेमिनाथ के आदेश से श्रीकृष्ण ने आठ

दिन उपवास करके पर्वत गुफा में रहे और कपर्द्दि यक्ष का आराधन कर तीन बिम्बों को पर्वतगुफा में छिपाकर रखा। सुनते हैं कि आज भी शक्रेन्द्र वहाँ आते हैं और पूजा करते हैं।

पाण्डवों द्वारा स्थापित श्री ऋषभदेव के उत्तर दिशा की ओर वह गुफा आज भी चेलना तलाई तक विद्यमान है। यक्ष के आदेश से प्रतिमाओं के दर्शन होते हैं।

यहाँ भगवान अजितनाथ और शान्तिनाथ वर्षावास रहे थे। वहाँ उनके दो पूर्वाभिमुख चैत्य थे, अजितनाथ चैत्य के निकट अनुपमा सर हुआ। मरुदेवी के पास आँखों को शीतल करनेवाला शान्तिनाथ चैत्य भव्य प्राणियों की भव-भ्रान्ति को दूर करता है।

श्री शान्तिनाथ जिनालय के आगे तीस हाथ पर सात पुरुष नीचे सोने और रूपे की दो खानें हैं। वहाँ से सौ हाथ आगे पूर्व द्वार वाली सिद्ध रस से भरी हुई आठ हाथ नीचे रसकूपिका है। श्री पादलिप्ताचार्य ने तीर्थोद्धार के लिए उसके समीप स्वर्ण और रत्न स्थापित किए थे। पूर्व दिशा मे ऋषभदेव के नीचे ऋषभकूट से ३० धनुष जाकर अष्टम तप पूर्वक वलिविधान आदि करने पर वैरुट्या देवी वह धन दिखलाती है। उनकी आज्ञा से शिला उघाड़ कर रात्रि में वहाँ प्रवेश किया जाता है। वहाँ उपवास करने से सर्वसिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। ऋषभदेव भगवान् का पूजन वंदन करने से (भव्य प्राणी) एकावतारी होता है। पाँच सौ धनुष आगे पाषाणकुण्डिका है, वहाँ सात पद जाकर वुद्धिमान को वलिविधि करनी चाहिए। किसी-किसी पुण्यशाली को वहाँ शिलोत्पाटन कर दो उपवास करनेपर रसकूपिका प्रत्यक्ष होती है।

कल्कि का पुत्र परमार्हत् धर्मदत्त होगा, वह प्रतिदिन जिन-विम्ब की प्रतिष्ठा कराके भोजन करेगा। उसका पुत्र जितशत्रु राजा शत्रुञ्जय का उद्धार करेगा और वह वत्तीस वर्ष राज्य-लक्ष्मी का भोग करेगा। उसका पुत्र मेघघोष यहाँ कपर्द्दि यक्ष के

आदेश से श्री शान्तिनाथ और मरुदेवी के चैत्य का उद्धार करेगा। नन्दिसूरि, आर्य श्रीप्रभ, मणिभद्र, यशोमित्र, धनमित्र, विकटधर्म, सुमङ्गल और सूरसेन इस तीर्थ के उद्धार कराने वाले होंगे जो दुष्प्रसहसूरि के समय होने वाले विमलवाहन से पहले उद्धार करेंगे।

जो यहाँ यात्रियों को कष्ट देते हैं अथवा उनका धन अपहरण करते हैं वे अपने पाप के भार से वंश सहित घोर नरक में पड़ते हैं। यहाँ यात्रा-पूजा-तीर्थ द्रव्य की रक्षा और यात्री संघों का सत्कार करने वाला, गोत्रसहित स्वर्ग लोक में पूजा जाता है।

यहाँ पर वस्तुपाल और पेथड़ आदि के बनवाये हुए धर्म-स्थानों का वर्णन करते हुए वक्ता पार नहीं पा सकता है। दूषक-काल के प्रभाव से म्लेच्छों द्वारा इसके भविष्य में भंग होने की संभावना करके मन्त्री वस्तुपाल एवं तेजपाल—बुद्धिमानों—ने ऋषभदेव व पुंडरीक स्वामी की प्रतिमाएँ मम्माणी पाषाण की बनवा कर भूमिगृह में रख दी थी।

कलिकाल के प्रभाव से सं० १३६९, वैक्रमीय में म्लेच्छों ने जावड़ स्थापित बिम्ब को भंग कर दिया। इसके बाद सं० १३७१ में समरा शाह ने मूलनायक बिम्ब का उद्धार किया।

इस तीर्थ पर जो संघपति हो गए हैं, हो रहे हैं, और भविष्य में होंगे, वे धन्य है। वे चिरकाल तक लक्ष्मी से समृद्ध रहें।

श्री भद्रबाहु स्वामी ने पहले 'कल्प पाहुड़' से श्री शत्रुंजय कल्प बनाया था और उनके बाद श्री वज्रस्वामी ने और फिर पादलिप्ताचार्य ने भी बनाया। उन्हीं कल्पों से उद्धृत कर संक्षेप से श्री जिनप्रभ सूरि ने यह श्री शत्रुंजय कल्प प्रणीत किया है।

इस कल्प को वांचने, ध्यान करने, व्याख्यान करने, पढ़ने और श्रवण करने पर भक्तिशाली भव्य तीसरे भव में सिद्धि प्राप्त करते हैं।

हे शत्रुंजय शैलेश ! तुम्हारे गुण कौन विद्वान थोड़ा-सा भी कहने में समर्थ हो सकते हैं ? इस तीर्थ के प्रभाव से यात्रा करने वाले और नमस्कार करने वाले मनुष्य के मन-परिणाम शुभ होते हैं और वृद्धिगत होते हैं।

हे गिरिराज ! तुम्हारी यात्रा को चलते हुए सघ के रथ, घोड़े, ऊँट और मनुष्यों के चरणों से पवित्र हुई रज भव्य-जनों के अंग में लगने पर पाप को नष्ट करती है। अन्यत्र मासक्षमण करने पर जितने पापों का क्षय होता है उतना आपको नमस्कार करने मात्र से हो जाता है।

श्री नाभेय-ऋषभ के द्वारा जहाँ निवास किया गया है और इन्द्र से प्रशंसित वैभव वाला है, ऐसे हे गिरिराज ! हे सिद्धक्षेत्र ! मन वचन और काया से तुम्हें नमस्कार करता हूँ। मैंने सरल मन से तुम्हारा कल्प बना कर जो पुण्य अर्जन किया है, उससे सारा विश्व वास्तविक सुख वाला बने।

पोथी में रहे हुए इस कल्प को जो पूजेगा उसे समस्त इच्छित सम्पत्तियाँ और सिद्धि प्राप्त होगी।

इसके प्रारंभ करने पर संघ में 'राजाधिराज' प्रसन्न हुए थे, इसलिये यह 'राजप्रासाद' नामक कल्प चिरकाल पर्यन्त जयवन्त रहे।

सं० १३८५ वैक्रमीय में ज्येष्ठ शुक्ल ७ शुक्रवार को यह कल्प पूर्ण किया।

२. रैवतगिरि-कल्प संक्षेप

श्री नेमिनाथ जिनेश्वर को मस्तक नमाकर—नमस्कार कर, रैवतगिरिराज—गिरनार का कल्प जैसा श्री वज्रस्वामी के शिष्य और पादलिप्त सूरि ने कहा है, (कहूँगा)।

छत्रशिला के समीप शिलासन पर भगवान श्री नेमिनाथ ने दीक्षा ली, सहस्राम्रवन में उन्हें केवलज्ञान हुआ, लक्खाराम में में देशना दी और 'अवलोकन' के उच्च शिखर पर निर्वाण पाये। रैवतगिरि की मेखला में श्रीकृष्ण ने वहाँ तीन कल्याणक के स्वर्ण-रत्नमय प्रतिमालंकृत जीवित स्वामी के तीन चैत्य कराके अम्बिका देवी (प्रतिमा) भी कराई। इन्द्र ने भी वज्र से पहाड़ को कोर के स्वर्ण वलानक और रौप्यमय चैत्य, रत्नमय वर्ण और प्रमाणोपेत प्रतिमा, अम्बा शिखर पर रंगमण्डप, अवलोकन शिखर, बालानक मण्डप में शाम्ब ने इतने कराये। श्री नेमिनाथ के मुख से निर्वाण स्थान ज्ञातकर निर्वाण के पश्चात् श्रीकृष्ण ने सिद्धविनायक प्रतिहार की प्रतिमा स्थापित थी। तथा दामोदर के अनुरूप १. कालमेघ, २. मेघनाद, ३. गिरिविदारण ४ कपाट, ५. सिंहनाद, ६. खोड़िया और ७. रैवत्त तीव्रतप क्रीडन से क्षेत्रपाल उत्पन्न हुए। इनमें मेघनाद सम्यग्दृष्टि और भ० नेमिनाथ का चरणभक्त है। गिरिविदारण ने कंचन बालानक में पाँच उद्धार विकुर्वण किये। वहाँ एक अम्वा देवी के आगे उत्तर दिशा में एक सौ सात कदम पर गुफा है, जहाँ अष्टम तप करके बलि-विधानपूर्वक शिला उठाने पर वीच में गिरिविदारण प्रतिमा है। वहाँ से पचास कदम जाने पर वलदेवकारित शाश्वत जिनप्रतिमा को नमस्कार कर उत्तर

दिशा में पचास कदम जाने पर तीन वारी आती है। पहली वारी तीन सौ कदम जाने पर गोदोहनासन से प्रविष्ट हो पाँच उपवास पूर्वक भ्रमर रूप दारुण सत्त्व से उठाकर सात कदम अधोमुख प्रवेश करके बालानक मण्डप मे इन्द्र के आदेश से धनद कारित अम्बा देवी की पूजा करके स्वर्ण जाली में स्थापन करना। वहाँ स्थित होकर मूलनाथ श्री नेमिनाथ जिनेन्द्र को वन्दन करना चाहिए। दूसरी वारी में एक पाद पूजा करके स्वयंवर वापी से नीचे चालीस कदम जाने पर मध्यवारी आती है। वहाँ से सात सौ कदम पर एक कुँआ है। वहाँ वर हंस स्थित होकर यहाँ भी मूलनायक को वन्दन करना। तीसरी वारी का मूल द्वार-प्रवेश अम्बा देवी के आदेश से होता है, अन्यथा नहीं। ऐसा कंचन बालानक का मार्ग है और वहाँ अम्बा के आगे वीस हाथ पर विवर है। अम्बा देवी के आदेश से यहाँ तीन उपवास पूर्वक शिलोद्घाटन द्वारा वीस हाथ जाने पर सात सम्पुट और पाँच पेटियों के नीचे रसकूपिका है, जो प्रत्येक अमावस्या के दिन खुलती है। यहाँ भी तीन उपवास करके अम्बा देवी के आदेश से बलिविधान-पूजन करके (रस) ग्रहण करना चाहिए।

इसी प्रकार जीर्णकूट पर तीन उपवास करके बलिपूजन द्वारा सरल मार्ग से सिद्ध विनायक उपलब्ध होता है। और वहाँ चिन्तित कार्य की सिद्धि होती है। यदि वैसे प्रत्यक्ष हो जाय तो एक दिन ठहरना चाहिए। वैसे ही राजिमती गुफा से एक सौ कदम पर गो-दोहिका (आसन) द्वारा रसकूपिका और कृष्ण चित्रकवल्ली है एवं राजीमती की प्रतिमा रत्नमय है और अम्बिका की भी वहाँ है, अनेक रूप्यमय औषधियाँ भी वहाँ रही हुई है।

वहाँ छत्रशिला, घंटशिला और कोटिशिला—तीन शिलाएँ बतलाई हैं। छत्रशिलाके बीचो-बीच कनकवल्ली है। सहस्राम्रवन

में रजत-स्वर्णमय चौबीस एवं लक्खाराम में चौबीस जिनेश्वरों की वहत्तर गुफाएँ कही हैं।

कालमेघ के आगे स्वर्णवालुका नदी से तीन सौ आठ कदम उत्तर दिशा में जाकर गिरि-कन्दरा में प्रविष्ट होकर जल से स्नान करके उपवासपूर्वक रहने से द्वार खुलता है। प्रथम द्वार में स्वर्ण-खान, दूसरे द्वार में रत्न-खान है जो संघ के लिए अम्बा देवी द्वारा विकुर्वित्त है। वहाँ कृष्ण के पाँच भण्डार हैं, अन्य दामोदर के समीप हैं। अंजनशिला के अधोभाग में वीस पुरुष नीचे रजत-स्वर्ण-धूलि वतलायी है।

उसके पश्चिम में मंगलक देवदाली है जिससे रस-सिद्धि होती है। संघ के समुद्धार कार्य के लिए श्री वज्रस्वामी ने वतलाई है।

शस्य कड़ाह में लेकर कोटिबिन्दु का संयोग करने पर घण्ट-शिला चूर्ण के योग से अंजन-सिद्धि होती है।

विद्यापाहुड़ उद्देशक से रैवत कल्प समाप्त हुआ। (ग्रंथाग्रं० ३८)

●

३. श्री उज्जयन्तस्तवः

श्री रैवतक, उज्जयन्त आदि नामों से प्रसिद्ध, श्री नेमिनाथ भगवान द्वारा पवित्रित श्री गिरनार गिरीश्वर की स्तवना करता हूँ।

भुवन में यह स्थान सौराष्ट्र देश नाम से विख्यात है जिसकी भूमि रूपी कामिनी के ललाट पर यह गिरिराज तिलक के समान है।

इसकी उपत्यका में ऋषभदेवादि (जिनालयों से) अलंकृत खंगार दुर्ग है और भगवान पार्श्वनाथ भूषित तेजलपुर है।

इसके दो योजन ऊँचे शृंग पर जिनालयों की श्रेणी शरच्चन्द्र की किरणों जैसी निर्मल पुण्यराशि की भाँति सुशोभित है।

यहाँ श्री नेमिनाथ का सुन्दर चैत्य है और उसपर स्वर्णमय दण्ड-कलश और आमलसार सुशोभित है।

यहाँ शिवादेवीनन्दन श्री नेमिनाथ भगवान् की चरणपादुका के दर्शन, स्पर्शन और पूजन से शिष्ट लोगों के पाप-व्यूह नष्ट होते हैं।

विशाल राज्य को पुराने तृण की भाँति छोड़कर व स्नेहपूर्ण बन्धुओं को त्याग कर प्रभु ने यहाँ महाव्रत स्वीकार किये।

उन प्रभु ने यहीं केवलज्ञान पाया और वे जगज्जनों का हित-साधन कर यहीं से मोक्ष प्राप्त हुए। अतएव यहाँ मंत्रीश्वर श्री वस्तुपाल ने भव्य जनों के चित्त में चमत्कृति करनेवाले तीन कल्याणक मन्दिरों का निर्माण कराया।

यहाँ जिनेश्वर की प्रतिमाओं से पूर्ण इन्द्र-मण्डप में श्री नेमिनाथ भगवान का स्नान कराते हुए लोग इन्द्र को तरह लगते है।

इस गिरिराज पर अमृतमय जल से पूर्ण गजेन्द्रपद नामक कुण्ड है, जहाँ के जल से अर्हन्त भगवान का स्नात्र-न्हवण कराया जाता है।

यहाँ वस्तुपाल के बनवाये हुए शत्रुञ्जयावतार चैत्य में ऋषभ-देव, पुण्डरीक, अष्टापद और नन्दीश्वर (स्थापित) हैं। स्वर्ण वर्ण वाली सिंहवाहिनी अम्बिका सिद्ध[1] बुद्ध[2] पुत्रों से युक्त है, वह आम्र-लुम्बधारिणी संघ के विघ्न हरण करती है।

श्री नेमिनाथ प्रभु के चरण-कमलो से पवित्रित अवलोकन नामक शिखर के दर्शन करते भव्यजन कृतार्थता प्राप्त करते है।

जाम्बवती की कुक्षी से उत्पन्न कृष्ण के पुत्र शाम्ब ने और प्रद्युम्न एवं महाद्युम्न ने ऊँचे श्रृंग पर दुष्कर तपश्चर्या की। यहाँ नाना प्रकार की औषधियाँ रात्रि में जाज्वल्यमान-चमचमाहट करती हैं। घण्टाक्षरशिला व छत्रशिला ऊँचे स्थान पर शोभित है।

सहस्राम्रवन व लक्षाराम एवं दूसरे भी वनसमूह मयूर, कोयल और भँवरों के संगीत से सुभग लगते हैं।

ऐसा वृक्ष, वल्ली, पुष्प या फल कोई नहीं है जिसे यहाँ इह-लौकिक विद्वान भी न चाहते हों। जहाँ रथनेमि को उन्मार्ग से सन्मार्ग में लाया गया था, उस राजिमती की गुफा के अन्दर कौन वंदन नहीं करते ?

यहाँ पर भव्य जनों द्वारा सम्पन्न पूजा, स्नात्र, दान और तप मोक्ष सुख प्राप्ति के हेतु होते हैं। यहाँ जो इस पहाड़ पर दिग्भ्रम से भी किसी भी मार्ग में चला जाय तो वह भी चैत्य स्थित जिनेश्वर को स्थापित और पूजित-अर्चित देखता है।

काश्मीर से आये हुए रत्नश्रावक ने यहाँ कुष्माण्डी–अम्बिका के आदेश से लेप्यमय बिम्ब के स्थान पर पाषाणमय नेमिनाथ प्रतिमा स्थापित की।

नदी-झरने-कुण्ड-खानों और लताओं की संख्या को कौन गिनने वाला (गिनती कर सकता) है ? चैत्यों से अलंकृत शिखरों वाले रैवतगिरि को नमस्कार हो, जिस महातीर्थ का अभिषेक मुक्तिदायक है।

सूरीन्द्रों से वर्णित और देवताओं के समान प्रभा वाले इस गिरिराज की मैंने स्तुति की है ऐसा गिरनार और रजत-हेम सिद्धि वाली भूमि आप सबको हर्षित करे। कवि ने युक्ति से अपना जिनप्रभसूरि नाम भी इस गाथा में दे दिया है।

❁

४. उज्जयन्त महातीर्थ-कल्प

सौराष्ट्र देश में उज्जयन्त नामक रम्य पर्वत है जिसके शिखर पर चढ़ कर भक्तिपूर्वक नेमि जिनेश्वर को नमस्कार करो।

अम्बिका देवी को न्हवण-अर्चन-गंध-धूप-दीपक से पूजन कर प्रणाम करके धनार्थी अर्थ प्राप्त करता है।

गिरिशिखर, कुहर, कन्दरा, झरणे, कपाट, विकट कूपादि में खत्तवाय को देखो, जैसा कि पूर्वाचार्यों ने कहा है।

कन्दर्प के दर्प को काटने वाले, कुगति दूर करने वाले, भगवान नेमिनाथ का मन्दिर निर्वाण-शिला नाम से जगत में विख्यात है।

उसके उत्तर की ओर दश धनुष पर अधोमुख विवर है, जिसके द्वार पर चार धनुष नीचे अवदान लिंग है, वहाँ पशु मूत्र गन्ध वाला रस है। सौ पल ताँबे के साथ मिलाने पर चन्द्रमा और कुन्द के समान उज्वल चाँदी सहसा बन जाती है।

पूर्व दिशा से धनुष्यान्तर पर वैसा ही है जैसे आगे बताया, वह पाषाणमय है और दक्षिण दिशा में बारह धनुष जाने पर वहाँ हिंगुल वर्ण वाला दिव्य प्रवर रस दिखाई पड़ता है जो अग्नि के संग से सर्व प्रकार के लोहे को स्पर्श मात्र से ही वेध कर सोना बना देता है।

उज्जयन्त पर विहला नामक नदी है और पार्वती की प्रतिमा है जिसे अंगुली से दबाने पर पर्वतीय द्वार खुल जाता है।

उज्जयन्त गिरिराज पर शक्रावतार है जिसके उत्तर की ओर सोपान पंक्तियाँ है और कबूतर के वर्ण वाली मिट्टी है। पंच गव्य से बाँधकर पिण्डी बनाकर धमन करने पर श्रेष्ठ चाँदी बनती है

जो दारिद्रय व्याधि को नष्ट करती है और दुख-कान्तार से पार लगा देती है।

शिखर के विशाल शृंग पर जहाँ पाद कुट्टिमा दिखाई पड़ती है उसके समीप शिखर पर कव्वड़-हड़ा है उस पर पामह नामक चाँदी है।

उज्जयन्त-रैवत वन में जहाँ शुद्दार वानर है, उसका बाँया कान कटा हुआ है, वह विवर के श्रेष्ठ द्वार को खोल देता है। उस विवर में प्रविष्ट होकर सौ हाथ जाने पर सुवर्ण वर्ण वाले वृक्ष दिखाई पड़ते हैं, उनसे नीला रस झरता है वह निश्चय से सहस्रवेधी रस हैं। उसे लेकर निकलते हुए वानर-हनुमंत को वाम पाद से स्पर्श करना चाहिए, वह उस श्रेष्ठ द्वार को ढॅक देता है जिससे कोई भी मनुष्य जानने नहीं पाता।

उज्जयन्त शिखर पर कोहंडि-अम्बिका गृह विख्यात है उसके पोछे शिला है। उसके दोनों और औषधि है जिसे अलसी के तेल से मिश्रित कर (प्रयोग करने पर) वह प्रतिवात वंकित अंगों को ठीक कर देती है। जिस पर अंबिका तुष्ट हो जाती है, उसकी दुर्गत्ति व सभी व्याधियाँ दूर हो जाती हैं। वहाँ पर प्रधान मन्न-शिल वर्णवाली वेगवती नामक नदी है, उसकी मिट्टी को धमन करने पर श्रेष्ठ रजत बन जाती है।

उज्जयन्त पर ज्ञानशिला है, जिसके नीचे सोने के समान वर्ण वाली मिट्टी है, जिसका बकरे के मूत्र में पिण्ड बनाकर खैर के अंगारों में धमन करने पर सोना बनता है। ज्ञानशिला के नीचे की मिट्टी पंचगव्य से पिण्डी बनाकर हडे के नीचे रस हैं, उससे सहस्र वेध करने पर सोना बनता है। गिरिराज के निकट 'तिल-विसारण' नामक औषधि है उसको लाकर शिला पर गाढी बाँधे, उससे दो लाख द्रम्म प्राप्त होते है। सुवर्ण तीर्थ पर लड्डुअ प्रधान सेना नाम की नदी है, उसके पिण्ड से भी सोना बनता है, इसमें कोई सन्देह नहीं।

विलक्ष नगर में मधुक गृह नामक दिव्य शिखर है, उसके वीच में गणपत्ति रस-कुण्ड है जिसके ऊपर उपवास करके पूजन करने पर गणपति के चलाया हुआ प्रवर-रस "पामाषेवी" (?) है और वंग को स्तम्भित कर देता है, इसमें सन्देह नहीं।

सहस्राश्रव नामक तीर्थ करज वृक्ष से मनोहर और सुन्दर है। वहाँ पर तुरियाचार नाम के पाषाण है, उसके दो भाग हैं। एक भाग पारदमूत्र से पीसकर अंधमूपा में धमन करने पर चाँदी वन जाती है, जिससे मनुष्य दुःखरूपी कान्तार से पार उतर जाता है।

अवलोकन शिखर की शिला के पीछे वहाँ श्रेष्ठ रस झरता है जो तोते के पंख के समान वर्ण वाला है और 'सुव्व' को श्रेष्ठ सोना वना देता है।

प्रद्युम्नगिरि पर अम्बिकाश्रम पद नामक स्थान है, वहाँ भी पीली मिट्टी है और हेमवाद से श्रेष्ठ सोना वनती है।

उज्जयन्त पर जहाँ ज्ञानशिला है और उसके नीचे भी पीली मिट्टी है, उसे 'साहामिय' लेप से छाया में सुखाने पर सोना वनता है।

उज्जयन्त के प्रथम शिखर पर चढ़कर दक्षिण की ओर उतरने पर तीन सौ धनुष 'धूलिकर' नाम की गुफा है, उसे उघाड़ कर निपुण व्यक्ति को देखकर वहाँ जाना चाहिए। वहाँ वारह दण्ड के अन्तर पर जंवू फल जैसा दिव्य रस है, जिसे भांड में सहस्त्र भाग चाँदी के साथ घोलने पर सहसा वाजारू सोना हो जाता है।

अम्विका भुवन के पूर्व दिशा से उत्तर दिशा पर्यन्त तापस-भूमि है, वहाँ वासुदेव की पाषाणमय प्रतिमा दीखती है, उससे उत्तर दिशा में दश हाथ जाने पर पार्वती की प्रतिमा दिखाई पड़ती है। जिसे अवराह मुहर अंगुष्टिका से दवाने पर रास्ता देती है। नौ धनुष प्रवेश करने पर दक्षिणोत्तर दिशा में कूप

दिखाई पड़ता है उसमें निश्चय ही हरिताल लक्ष वर्ण वाला सहस्र-वेधी रस है।

उज्जयन्त पर ज्ञानशिला विख्यात है, वहाँ पाषाण है, उसके उत्तर पार्श्व में दक्षिण अधोमुख विवर है, उसके दश धनुष दक्षिण जाने पर हिंगुल वर्ण वाला शतवेधी रस है सो "सुव्व" को वेध देता है इसमें कोई सन्देह नहीं।

वृषभ-ऋषभादि कूट पर पाषाण है, वहाँ पर संगम है। हाथी को लीद के साथ स्पर्श करने पर वह सोना बन जाता है। जिनालय के दक्षिण की ओर जानेपर जलुकचरी मिट्टी है, तिर्यञ्च और मनुष्य के रक्त से विद्ध होने पर ताँबे को सोना बना देती है।

वेगवती नामक नदी है, उसमें मनशिल वर्ण वाले पाषाण हैं। 'सुव्व' को पंचवेध करने पर स्रवित होता है और धमन करने पर ताँबे को शीघ्र सोना बना देता है।

यह उज्जयन्त कल्प अविकल्प है, अम्बिका को प्रणाम कर जो जिनभक्त करता है वह इच्छित सुख को प्राप्त करता है।

उज्जयन्त महातीर्थ का कल्प समाप्त हुआ।

●

५. रैवतगिरि-कल्प

पश्चिम दिशा में सौराष्ट्र देश में पर्वत-राज रैवत के शिखर पर श्री नेमिनाथ भगवान का उत्तुग शिखर वाला भवन है। पूर्वकाल में वहाँ भगवान नेमिनाथ स्वामी की लेप्यमय प्रतिमा थी। एक बार उत्तरदिशा-विभूषण कश्मीर देश से अजित और रतन

नाम के दो भ्राता संघपति होकर गिरनार आये। उन्होंने शीघ्रता-वश वहुत से पंचामृत भरे कलशों द्वारा न्हवण-स्नात्र कराया जिससे श्री नेमिनाथ भगवान की लेप्यमय प्रतिमा गल गई। उन्होंने अपने पर (गल्ती) अत्यन्त खेद करते हुए आहार का प्रत्याख्यान कर दिया। इक्कीस उपवास के अनन्तर स्वयं भगवती अम्बिका देवी आई, संघपति को उठाया। उसने देवी को देखकर जय जय कार शव्द किया। देवी ने कहा—यह विम्व ग्रहण करो, पर पीछे मत देखना। अजित संघपति एक तार से खींचते हुए श्री नेमिनाथ भगवान का रत्नमय विम्व कंचनबालानक से लाये। प्रथम भवन की देहली में आरोपण कर संघपति ने अत्यन्त हर्षपूर्वक पृष्ठ भाग में देखा। प्रतिमा वहीं पर निश्चल हो गई। देवी ने कुसुम-वृष्टिपूर्वक जय जयकार किया। यह प्रतिमा वैशाखी पूर्णिमा के दिन संघपति ने नव्यकारित प्रासाद मे पश्चिमाभिमुख स्थापित किया। स्नात्र-महोत्सव करके अजित संघपति अपने भाई के साथ स्वदेश लौट गया। कलिकाल में देवी ने लोगों का कलुषित चित्त ज्ञात कर रत्नमय प्रतिमा की झलकती हुई कान्ति को आच्छादित्त कर दिया।

पहले गुजरात में जयसिंह देव ने राजा खेंगार को मार कर सज्जन को दण्डाधिप स्थापित किया। उसने विक्रम संवत् ११८५ में श्री नेमिनाथ भगवान का अभिनव जिनालय वनवाया। मालव-देशमण्डन सेठ भावड़ साह ने स्वर्णमय आमलसार-कलश कराया। चालुक्यचक्री श्री कुमारपालदेव नरेन्द्र संस्थापित श्री श्रीमाल कुलोद्भव सौराष्ट्र दंडनायक ने विक्रम सवत् १२२० में पाज (पद्या-सीढियाँ) करवायी। उसी भावना से धवल ने अंतराल में पर्व-प्रपा भराये। पाज चढ़ते हुए लोगों को दक्षिण दिशामें लक्षा-राम दिखाई देता है।

अणहिल वाड़ पाटण में पोरवाड़कुलमण्डन आसराज-कुमार

देवी के पुत्र और गुर्जराधिपति श्री वीरधवल की राज्यधुरा को चलाने वाले मन्त्रीश्वर वस्तुपाल तेजपाल नामक दो भ्राता हुए। उनमें तेजपाल मंत्री ने गिरनार की तलहट्टी में स्वनामाङ्कित तेजलपुर नामक प्रवर गढ़, मठ, प्रपा, मन्दिर और बाग-बगीचों से सुन्दर बनवाया। वहाँ अपने पिता के नामाङ्कित 'आसराज विहार' नामक पार्श्वनाथ जिनालय कराया। अपनी माता कुमार-देवी के नाम से 'कुमर सरोवर' निर्माण करवाया। तेजलपुर के पूर्व दिशा में उग्रसेनगढ नामक दुर्ग में युगादिनाथ-प्रमुख जिन-मन्दिर सुशोभित है। उसके उग्रसेनगढ, खंगारगढ़ और जूनागढ़ तीन नाम प्रसिद्ध है। गढ़ के बाहर दक्षिण दिशा में चॅवरी-वेदी, लड्डुओं के ओरे, पशुवाटक आदि स्थान हैं। उत्तर दिशा में विशाल स्तंभ शाला शोभित दश दशार-मण्डप, गिरिद्वार में पंचम हरि, दामोदर आदि स्थान स्वर्ण रेखा नदी के पार में वर्त्तमान हैं।

कालमेघ के समीप तेजपाल मंत्री ने बहुत दिनों से नहीं आए हुए संघ को बुलाकर उज्जयन्त शिखर पर एकत्र किया। वस्तु-पाल मंत्री ने शत्रुञ्जयावतार मन्दिर, अष्टापद-समेत्त शिखर मण्डप, कर्पादियक्ष एवं मरुदेवी प्रासाद कराये। तेजपाल मंत्री ने तीन-कल्याणक चैत्य कराया। देपाल मंत्री ने इन्द्रमण्डप का उद्धार कराया।

ऐरावण गज-पद-मुद्रा अलंकृत गजेन्द्रपद कुण्ड है, वहाँ अंग प्रक्षालन कर आये हुए यात्री लोग दुखों को जलाञ्जलि देते हैं। छत्रशिला के नीचे सहस्राम्रवनोद्यान है जहाँ यादवकुल-प्रदीप, समुद्रविजय शिवादेवीनन्दन भगवान नेमिनाथ के दीक्षा केवल-ज्ञान और निर्वाण कल्याणक हुए हैं। गिरिशिखर पर चढ़ते ही अम्बिका देवी का मन्दिर दिखाई देता है। वहाँ से अवलोकन शिखर है, जहाँ पर स्थित होकर दशों दिशा से भगवान नेमिनाथ

स्वामी को अवलोकन किया जाता है। फिर पहले शिखर पर शांबकुमार और दूसरे पर प्रद्युम्न (के बिम्ब) है।

इस पर्वत पर स्थान-स्थान पर चैत्यों में रत्न-स्वर्णमय जिन-बिम्ब नित्य पूजा किए हुए दिखाई देते हैं। यहाँ की भूमि स्वर्ण-मंडिनी है और अनेक प्रकार के धातु रसों का भेदन करने वाली देदीप्यमान दिखाई पड़ती है। रात्रि में दीपक की भाँति प्रज्वलित औषधियाँ दिखाई देती है। नाना प्रकार के वृक्ष-वल्ली-पत्र-पुष्प-फलादि पद-पद पर उपलब्ध होते हैं। अनवरत खल-खलाहट शब्द करके झरते हुए झरणों का जल और मत्त कोयल व भ्रमरों के झंकार सुनाई देते हैं।

उज्जयन्त महातीर्थ कल्प शेष संक्षेप से यह श्री जिनप्रभुसूरि जी ने यथाश्रुत लिखा है।

श्री रैवतगिर का कल्प समाप्त हुआ। इसके ग्रंथाग्रं० (अनुष्टुप छंद के अक्षरों वाला) १६१ अक्षर २७ हैं।

■

६. श्री स्तंभन पार्श्वनाथ-कल्प

सुर असुर खेचर किन्नर ज्योतीश्वर आदि विविध मधुकर कलित, तीन भुवन श्री लक्ष्मी के निवासस्थान जिनेश्वर भगवान के चरण-कमलों में मैं नमस्कार करता हूँ।

सुर नर धरणेन्द्र द्वारा पूजित श्री पार्श्वनाथ जिनेश्वर का चरित्र जो पूर्व मुनिगणों ने निर्विकल्पतया अनल्प कल्प में कहा है, मैं उसे संकीर्ण शास्त्र निक्षिप्त-चित्त वृत्ति वाले अर्थात् संक्षेप

रुचि धार्मिक जनों के सन्तोपार्थ श्री पार्श्वनाथ का कल्प लेश-मात्र कहूँगा।

भव दुख रूपी भार से परिपूर्ण अंगों वाले भव्यों के भव-भ्रमण नष्ट करने के लिए मैं इस कल्प को संक्षेप से कहता हूँ, सुनिए।

विजया, जया, कमठ, पद्मावती, पार्श्वयक्ष, वैंकट्या, धरणेन्द्र और सोलह विद्या देवियाँ जिनके अधिष्ठायक हैं। प्रतिमोत्पत्ति-निदानकल्प में कलित होने पर भी यहाँ उसे विस्तार भय से संकलित नहीं किया क्योंकि पीछे इसे कोई नहीं पढ़ेगा।

जो व्यक्ति समुद्र को चुलु के समान कर ले व ताराओं के विमानों की गिनती कर ले वह भी पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा की महिमा को कहने में समर्थ नहीं हो सकता।

यह पुराणप्रतिमा अनेक स्थानों में संस्थापित होकर उपसर्ग शान्ति के हेतु खेचरों, देवों और उत्तम पुरुषों से पूजी गई है।

जो इन्द्रादि द्वारा कीर्त्तित और महिमा कृत पार्श्वनाथ-प्रतिमा है उसे मैं जन-मानस में निश्चल भाव करने के लिए कहूँगा।

भारतवर्ष रूपी सरोवर में भव्यजन-कमल को विकसित-बोधित करते हुए सुर-असुरों द्वारा वन्दित चरणों वाले श्री मुनिसुव्रत भगवान दिनकर की भाँति विचरते थे तब श्री पार्श्वनाथस्वामी की यह प्रतिमा चम्पा नामक श्रेष्ठ नगरी के रत्नाकरोपकंठ में ज्योतीश्वरों से वर्णित थी।

कार्त्तिक सेठ के भव में शक्र को इन्हीं के ध्यान से व्रत ग्रहणानन्तर सौ की संख्या में अभिग्रह सिद्ध हुए थे। अतः प्रतिमा के माहात्म्य से मुग्ध सौधर्मेन्द्र महान् दिव्य विभूति से वहीं स्थित हो पूजा-अर्चा करने लगा।

इस प्रकार कितना काल बीतने पर जब श्री रामचन्द्र जी ने वनवास किया तो इन्द्र के वचन से लोगों को राघव का प्रभाव

दिखाने के लिए दण्डकारण्य में देवयुगल ने आकाशगामी घोड़ों सहित रत्नजटित रथ और प्रतिमा रामभद्र को दी।

वहाँ रघुपुङ्गव श्री रामचन्द्र ने सात मास और नव दिन तक विदेहदुहिता—सीता के उपनीत्त कुसुमों से भक्तिपूर्वक पूजा की।

राम के प्रवल कर्मों को अलंघनीय और दुख से छूटने वाले ज्ञातकर उस पूज्य प्रतिमा को देवता उसी स्थान पर वापस ले गये। अव फिर शक्रेन्द्र प्रकृष्ट भक्तिपूर्वक दिव्य भोगों से पूजा करने लगा, इस प्रकार ग्यारह लाख वर्ष पूरे हो गए।

उस समय जब यदुवंश में वलदेव-कृष्ण और नेमिनाथ तरुणावस्था को प्राप्त हुए और केशव को राज्य मिला और जरासंध से युद्ध में अपनी सेना को उपसर्ग होने पर कृष्ण ने भगवान नेमिनाथ से उस उपसर्ग के शीघ्र विनाश होने का उपाय पूछा।

प्रभु ने आदेश दिया—"पुरुषोत्तम ! मेरे सिद्ध होने के तेंयासी हजार सात सौ पचास वर्ष वाद विविध अधिष्ठायकों द्वारा नतचरण श्री पार्श्व अर्हन्त होंगे, जिनकी पूजा—स्नात्र जल सींचने पर लोक में अशिव की शांति होगी।" "स्वामी ! वर्त्तमान में उन जिनेश्वर की प्रतिमा कहीं भी विद्यमान है ?" इस प्रकार चक्रधर श्रीकृष्ण के पूछने पर स्वामी ने कहा—"वह इन्द्रपूजित है"। तव नेमि जिन और जनार्दन के मनोगत भाव को ज्ञात कर मातलि सारथी सहित एक रथ में वह प्रतिमा शक्रेन्द्र ने दी।

मुरारि ने प्रमुदित्त हो प्रतिमा को न्हवण कराके वहुत से घनसार रस, चन्दन रस और उत्तम सुगन्धित पुष्पों से पूजा की। पीछे सेना पर स्वामी के न्हवण जल को सिंचित किया जिससे योगी के चित्त-विलय की भाँति सारे उपसर्गों का विलय हो गया। वहुत दुखदायी प्रतिवासुदेव के निधन प्राप्त होने पर यादव सेना में जयजयकार हो गया। उसी विजय के स्थान पर जिनेश्वर नेमि-

नाथ के आदेश से संखपुर नामक अभिनव नगर निर्माण कराके श्री पार्श्वप्रभु का बिम्ब स्थापित्त किया। इस प्रतिमा को लेकर कृष्ण के अपने नगर में आने पर राजाओं ने वासुदेवत्वाभिषेक उत्सव किया। कृष्ण नरेश्वर ने मणि-कंचन रत्नों से रचित प्रासाद में संस्थापित्त प्रतिमा की सात सौ वर्ष तक पूजा की।

द्वारिका के दाह और यादव जाति के प्रलय होने पर भी स्वामी के प्रभाव से देवालय में अग्नि नहीं लगी। समुद्र ने अपनी लोल लहरों के द्वारा नगरी के साथ रुचिर मनोहर मन्दिर सहित स्वामी (की प्रतिमा) को जल के अन्दर ले लिया।

नागकुमारियों के साथ क्रीड़ा के हेतु आये हुए तक्षक नागेन्द्र ने प्रभु की पापनाशक प्रतिमा को देखा और उसने प्रमुदित्त चित्त से बहुत प्रकार की नृत्य-कला से महामहोत्सवपूर्वक अस्सी हजार वर्ष पर्यन्त पूजा की। दिग्पालश्रेष्ठ वरुण ने समुद्र की सफाई करते हुए तक्षक द्वारा पूजी जाती हुई त्रिभुवनपति पार्श्वनाथ की प्रतिमा को देखा और सोचा—अरे ये तो वही स्वामी हैं जो देवेन्द्र द्वारा पहले पूजित थे, अब मुझे भी स्वामी के चरणों की सेवा करना योग्य है। ऐसा विचार कर वह जिनेश्वर की अनवरत पूजा, प्रार्थना, सेवा करने लगा। उस समय प्रभु वहाँ चार हजार वर्ष पर्यन्त वहीं स्थित रहे।

जब श्री वर्द्धमानस्वामी भरत क्षेत्र में जलद तिलक-पुष्करावर्त्त मेघ की भाँति अविरल धारा से भव्य शस्यों को सिंचन कर रहे थे तब अपनी कान्ति से देवलोक की कान्ति को कलुषित करने वाली कान्तिनगरी में धनेश्वर नामक सार्थवाह सुखपूर्वक निवास करता था। एक बार वह महाइभ्य (सेठ) यान में समुद्र-यात्रा के लिए निकला और सांयात्रिक आदि के साथ सिंहल द्वीप पहुँचा। और माला बेचकर वहाँ से शीघ्रतापूर्वक लौटते हुए सहसा जलराशि के अन्दर प्रवहण स्तंभित हो गया। जब वह दुखी होकर

चिन्ता करने लगा तो शासनदेवी पद्मावती ने प्रकट होकर कहा—वत्स ! डरो मत ! बात सुनो ! दिग्पाल वरुण विनिर्मित महिमा वाले, पृथ्वी में मोह का मान मर्दन करने वाले श्री पार्श्वनाथ भगवान यहाँ पानी के नीचे रहे हुए हैं। हे भद्र ! तुम उन्हें अपने स्थान पर ले जाओ।

धनेश्वर ने कहा—देवी ! समुद्र जल के मूल से जिनेश्वर को निकाल कर ग्रहण करने की मेरे में शक्ति कहाँ है ? तब शासन देवी ने कहा—मेरे पीछे-पीछे लगकर प्रविष्ट हो जाओ और कच्चे सूत के तार से बाँधकर प्रभु को निकालो और जहाज में चढाकर हे श्रावक ! अपने नगर ले जाओ।

देवी के निर्देशानुसार यह सब करके वह महासत्वशाली सेठ त्रैलोक्यपति प्रभु को ग्रहण कर हर्ष प्रकर्ष से पुलकितगात्र हो गया। और क्षणमात्र में स्वस्थान आये और पट-कुटी बनवा कर लोक सन्मुख स्वागतार्थ आवे तब तक के लिए वहाँ रहे। गन्धर्वों के गीत-वाजित्र और सधवा स्त्रियों के धवल मङ्गलपूर्वक दान देते हुए स्वामी को बहिर्दिशि प्रदेश-स्थल में प्रवेश कराया।

सेठ ने कान्तिनगरी में रजत की भाँति निर्मल, स्वच्छ प्रासाद कराया और उसमें प्रभु को विराजमान करके भक्तिपूर्वक प्रतिदिन पूजन करने लगा। धनेश्वर के काल-प्राप्त होनेपर प्रवर नागरिकों द्वारा प्रभु की पूजा होते हजार वर्ष बीत गए। तब देवाधिदेव की परिकर रहित प्रतिमा को आकाश मार्ग से रस-स्तंभन निमित्त कान्तिनगरी से कालत्रय कला कलित श्री पादलिप्तसूरि गणधर के उपदेश से योगीन्द्र नागार्जुन अपने स्थान पर लाया। योगिनी-गत कार्य सिद्ध होनेपर वह स्वामी को अटवी में छोड़ गया और रस स्तम्भित होने के कारण स्तम्भनक नामक तीर्थ हो गया।

उद्भिन्न वंशजाल के अन्दर स्थित, जो दुग्धस्नपित अंग वाले

प्रभु के आकण्ठ क्षिति निमग्न रहने से लोगों ने उनका नाम यक्ष प्रसिद्ध कर दिया। उस अवस्था में पाँच सौ वर्ष तक जिनेश्वर भगवान् की पूजा होगी। फिर धरणेन्द्र के सानिध्य से श्रुतसागर के पारगामी श्री अभयदेवसूरि जी संघ सहित दृस्थित रोग को दूर करके देदीप्यमान माहात्म्य वाला तीर्थ प्रकट करेंगे।

कान्तीपुरी से भगवान् पुनः समुद्र में जावेंगे। बहुत प्रकार से नगर में भारी महिमा से देदीप्यमान होंगे।

यदि कोई सहस्र मुख वाला होकर लाल जिह्वा धारण कर ले तो भी त्रिकाल में कौन प्रतिमा स्थानों को सावन करने में समर्थ है ?

पावापुरी, चम्पापुरी, अष्टापद, गिरनार, समेतशिखर, विमलाचल, काशी, नाशिक, मिथिला, राजगृह प्रमुख तीर्थों में यात्रा, पूजन, दान से जीवों को जो फल होता है वह यहाँ पार्श्वनाथ प्रभु की प्रतिमा के दर्शनमात्र से प्राप्त करता है।

पार्श्वनाथ भगवान को वन्दन करने की विचार-बुद्धि से मासक्षमण का फल और प्रतिमा को दृष्टिगोचर करने से छम्मासी तप का फल मिलता है। प्रभु के दर्शन से निःसन्तान बहुत से पुत्रों वाला और निर्धन धनकुबेर जैसा हो जाता है और दुर्भग भी सौभाग्यशाली होता है।

प्रभु प्रतिमा को नमन करने वाले पुरुषों को भवान्तर में मूर्खत्व, कुकलत्रत्व, कुजाति में जन्म, कुरूपत्व और दीनत्व नहीं होता।

अड़सठ तीर्थों की यात्रा करने के लिए मुग्ध लोग क्यों भ्रमण करते हैं ? उससे तो अनन्तगुण फल पार्श्वनाथ भगवान् देते है। जो प्रभु-प्रतिमा का एक कुसुम से भी परम भक्तिपूर्वक पूजा करते हैं उनके देवेन्द्रादि पद तो कर-कमलों में स्थित है। जो प्रभु के

उत्तम मुकुट, कुण्डल, केयूरादि करवाता है वह त्रिभुवनमुकुट होकर शीघ्र ही शिव-सुख प्राप्त करता है।

जिसने त्रिभुवन चूडामणि, लोगों के नयनों के लिए अंजन-शलाका जैसी इस प्रतिमा को नहीं देखा उसका मनुष्य जन्म ही निरर्थक है। श्री संघदास मुनि द्वारा प्रतिमा का लघु कल्प निर्मित है। मैंने तो वड़े कल्प से सम्वन्ध मात्र समुद्धृत किया है।

जो इस कल्प को पढता, सुनता व चिन्तन करता है वह कल्पवासियों का नाथ (इन्द्र) होकर सातवें भव में सिद्धि प्राप्त करता है। और जो पुस्तक लिख कर इस कल्प की गृह चैत्य में पूजा करता है वह चिरबोधि नरक और तिर्यञ्चगति में नियमा से नहीं जाता।

दैनिक पढ़ने से सिंह, समुद्र, अग्नि, हाथी, चोर, साँप, ग्रह, वैरी का निवारण होकर प्रेत, वैताल, शाकिनी आदिका भय नष्ट होता है।

कल्प वृक्ष की भाँति यह कल्प हृदय स्थान में धारण करने वाले भव्यों की पुण्य-शोभा विलसित और वांछित प्रदान करे।

जहाँ तक नरक्षेत्र में मेरु रूपी प्रदीप पृथ्वी तल पर समुद्र जल रूपी तेल से उद्योदित विद्यमान है यह कल्प वहाँ तक जयवन्त रहे।

यह पार्श्वनाथ का सक्षिप्त कल्प समाप्त हुआ।

■

श्री स्तंभनक-कल्प

दृढ व्याधि से शरीर अशक्त हो जाने पर अनशन ग्रहण करने के लिए (श्री अभयदेव सूरि जी महाराज ने) संघ को बुलाया, रात्रि में देवी ने सूत की नौ कोकड़ी सुलझाने के लिए कहा। हाथों से अशक्ति प्रकाशित करने पर (देवी ने) नवाङ्ग विवरण कथा से चमत्कृत कर स्तंभन पार्श्वनाथ वन्दन करने को आरोग्य-विधि उपदिष्ट की। संभाणा से चलकर धवलकपुर आने के बाद पादविहारी होकर स्तम्भनपुर के सेढी नदी के तट पर स्थित खोखरे पलाश वन में पहुँचे। गो-दुग्ध झरने से स्थान को पहिचान कर जयत्तिहुअण स्तोत्रार्द्ध से पार्श्वनाथ स्वामी को प्रत्यक्ष किया और स्तवन पूर्ण कर प्रभावशाली वृत्त द्वय को गुप्त कर दिया।

संघ द्वारा निर्मापित जिनालय में श्री पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा को स्थापित किया वे गतरोग हुए नवाङ्गो वृत्तिकारक श्री अभयदेव सूरि जी महाराज विजयवन्त हों।

जन्म से भी चार हजार वर्ष पूर्व देवालय में पूजित हुए और भगवान की वासव, वासुदेव और वरुण ने समुद्र में पूजा की। कान्तिनगरी के सेठ धनेश्वर ने पूजा की, और नागार्जुन ने भी अर्चन किया वे स्तंभनपुर के श्री पार्श्वनाथ जिनेश्वर आपकी रक्षा करें।

श्री स्तंभनक कल्प समाप्त हुआ ग्रं० १०० (पाठान्तर १११) हैं।

■

७. अहिच्छत्रानगरी-कल्प

तीन भुवन में भानु के नाम से प्रकट श्री पार्श्वनाथ जिनेश्वर को नमस्कार करके अहिच्छात्रा नगरी का कल्प किंचित् यथाश्रुत कहूँगा।

इसी जंबूद्वीप के भारतवर्ष में मध्य खण्ड स्थित कुरुजांगल जनपद में संखावती नामक ऋद्धि-समृद्धि नगरी थी। वहाँ भगवान पार्श्वनाथ स्वामी छद्मस्थ विहार में विचरते हुए कायोत्सर्ग स्थित रहे। पूर्व निबद्ध वैर के कारण कमठासुर ने अविच्छिन्न धारा-प्रवाह से वर्षता हुआ मेघ विकुर्वण किया, जिससे सारे भूमण्डल में जल-जलाकार होकर भगवन्त के आकण्ठ जल आ गया।

पञ्चाग्निसाधक कमठ तापस द्वारा जलाए काठ में दग्ध साँप को निकाले गए प्रभु के उपकार को स्मरण कर नागराज धरणेन्द्र ने अवधि-ज्ञान से देखा और अपनी अग्रमहिषियों के साथ आकर मणिरत्नमय सहस्रफणालंकृत छत्र प्रभु के ऊपर करके कुण्डलीकृत नागराज ने उन्हे ग्रहण कर उस उपसर्ग को निवारण किया। तभी से उस नगरी का नाम अहिच्छत्रा हो गया।

वहाँ प्राकार-कारकों ने जैसे-जैसे उरग रूपी धरणेन्द्र ने कुटिल गति से सर्पण किया उसी प्रकार से ईंट निवेश किया। आज भी वैसा ही प्राकाररत्न दृष्टिगोचर होता है। संघ ने श्री पार्श्वनाथ भगवान का चैत्य निर्माण कराया। चैत्य के पूर्व दिशा मे अति मधुर प्रसन्नोदक कमठ जलधर से भरे हुए सात जलपूर्ण कुण्ड है। उन कुण्डों के जल में विधिपूर्वक स्नान करने वाली मृतवत्सा स्त्रियाँ स्थिरवत्सा होती हैं। उन कुण्डों की मिट्टी से धातुर्वादी लोग धातु-सिद्धि होना बतलाते है। पाषाण शिला से मुद्रित मुख

वाली सिद्ध रसकूपिका भी यहाँ दृष्टिगोचर होती है। जहाँ म्लेच्छ राजा द्वारा अग्निदाह आदि अनेक उद्घाटनोपक्रम निष्फल हो गए।

उस नगर के भीतर और बाहर सवा लाख कुएँ और वापिकाएँ हैं। मधुरोदक की यात्रा के लिए आये हुए लोगों और पार्श्वनाथ चैत्य में स्नात्र करते हुए लोगों को आज भी कमठ प्रखर तूफान और काली मेघ घटा और गर्जन व विजली आदि दिखाता है। मूल चैत्य के निकट सिद्ध क्षेत्र में श्री पार्श्वनाथ स्वामी का धरणेन्द्र-पद्मावती सेवित चैत्य है। प्राकार के समीप श्री नेमिनाथ भगवान की प्रतिमा सहित सिद्ध-बुद्ध कलित आम्रलुम्बधारिणी सिंहवाहिनी अम्बिका देवी विद्यमान है। चन्द्र किरणों की भाँति निर्मल जल से परिपूर्ण उत्तरा नामक वापी है जहाँ स्नान करके और वहाँ की मिट्टी का लेपन करने से कुष्ठियों का कुष्ठ रोग शान्त हो जाता है। धन्वन्तरि कूप की विचित्र वर्ण वाली मिट्टी से गुरु आम्नाय से सोना बनता है। ब्रह्म कुण्ड के तट पर ऊगी हुई मण्डूक ब्राह्मी के पत्तों का चूर्ण एक वर्ण वाली गाय के दूध के साथ पीने से प्रज्ञा-मेधा सम्पन्न, निरोग और किन्नर की भाँति स्वर होता है। वहाँ उपवन के समस्त वृक्षों में औषधियाँ उपलब्ध होती है जो उन-उन कार्यों को सिद्ध करती हैं जैसे जयन्ती, नागदमणी, सहदेवी, अपराजिता, लक्ष्मणा, त्रिवर्णी, नकुली, सकुली, सर्पाक्षी, सुवर्ण-शिला, मोहनी, सामली, रविभक्ता, निर्विषी, मोरशिखा, शल्या, विशल्या प्रभृति महौषधियाँ यहाँ विद्यमान है। यहाँ हरिहर, हिरण्यगर्भ, चण्डिकाभवन, ब्रह्मकुण्ड आदि लौकिक तीर्थ हैं। तथा यह नगरी महातपस्वी सुगृहीतनामधेय कृष्णर्षि की जन्मभूमि है। तत्पद पंकज पराग कण निपात से पवित्रीकृत्त एक वस्त्र वाले पार्श्वनाथ भगवान को स्मरण करने से आधि व्याधि, सर्पविष, सिंह, हाथी, रण, चोर, जल, अग्नि, राज्य, दुष्ट ग्रह, मारि, भूत,

प्रेत, शाकिनी प्रमुख क्षुद्रोपद्रव विशेष कर भव्य जीवों को पराभव नही करते। सकल अतिशयों की निधान रूप यह नगरी है।

यह अहिच्छत्रा नगरी का कल्प पद्मावती धरणेन्द्र और कमठ के प्रिय श्री जिन प्रभुसूरि ने संक्षेप से वर्णन किया है।

॥ अहिच्छत्रा-कल्प समाप्त हुआ ग्रंथाग्रं० ३६ ॥

८. अर्बुदगिरि-कल्प

श्री आदिनाथ और नेमिनाथ अर्हन्तों को नमस्कार करके अर्बुद महागिरि का कल्प लेशमात्र कहता हूँ। पहले श्रीमाता देवी की उत्पत्ति यथाश्रुत कहूँगा, जिसके अधिष्ठान से यह पर्वत पृथ्वी में प्रख्यात हुआ है।

श्री रत्नमाल नगर में रत्नशेखर राजा हुआ, निःसन्तान होने से दुखी हो उसने शाकुनिक लोगों को बाहर भेजा। उन्होंने शिर पर काष्ठ-भार लिए कष्टपूर्वक चलने में दुर्गत स्त्री को देख कर राजा को बतलाया कि इसका पुत्र आपके पद पर राजा होगा। राजा के आदेश से उन लोगों ने उस सगर्भा को मारने के लिए गर्त्त में डाल दिया। वह कायचिन्ता के बहाने उससे बाहर निकली और उस भयार्त्ता ने पुत्र प्रसव कर झाड़ी में रख दिया। इस घटना से अज्ञात उन लोगों ने गर्त्त में लाकर उसे मार डाला।

पुण्ड से आकृष्ट होकर एक मृगी उस बालक को दोनों समय स्तन पान करा देती। अन्यदा महालक्ष्मी ने टङ्कशाला में मृगी के चारों पैरों वाली नयी मुद्रा-नाणा की वृद्धि कर दी। यह सुन कर शिशु रूप में उत्पन्न होने की वार्त्ता फैल गई। कोई नया राजा हुआ, सुन कर राजा ने सुभटों को भेजा, उन्होंने उसका वध करने के लिए आकर नगर के गोपुर में उसे देखा और बाल-हत्या से बचने के लिए गायों के झुण्ड के आने के मार्ग में रख दिया। उसके उसी प्रकार रहते भाग्यवश एक उक्षा—धान बटोर ने वाली स्त्री के रूप में शक्ति विशेष—आगे हो गई, उससे प्रेरित हो पशुओं के बीच से उस शिशु को उठा कर रख लिया। यह सुन कर मंत्री के समझाने से राजा ने उसे लेकर अपना औरस पुत्र मान लिया।

क्रमशः वह श्रीपुञ्ज नामक राजा हुआ और उसकी पुत्री श्रीमाता रूप सम्पन्न वानर जैसे मुख वाली हुई। वह जाति-स्मृति प्राप्त वैराग्यवान-निर्विषयी हुई। उसने अपने पिता से अपना पूर्व भव निवेदन किया कि मै पहले वानरी थी और अर्बुदगिरि की वृक्ष शाखा पर किसी ने मेरा शिरोश्छेद कर दिया। मेरा रुण्ड वृक्ष के नीचे कुण्ड में जा गिरा। उस अमित्त तीर्थ के प्रभाव से मै नर देह धारिणी हुई। मेरा मस्तक आज भी उसी तरह है अतः मैं वानरमुखी हुई हूँ। श्रीपुञ्ज ने उसे अपने पुरुषों के साथ भेज कर कुण्ड में उसका मुख डुबाया, जिससे वह नरमुखी हो गई और आबू पर तपश्चर्या करने लगी।

एक बार आकाशगामी योगी उसे देख कर रूपमुग्ध हो गया। उसने आकाश से उतर कर प्रेमालाप पूर्वक कहा—शुभे! तुम मुझे किस प्रकार वरण करोगी? उसने कहा—रात्रि का प्रथम प्रहर जब तक कुर्कुट बोले उससे पहिले किसी विद्या से यदि इस पर्वत-ह्रद पर मनोहर बारह सीढियाँ बना दो तो मैं तुम्हें वरण करूँगी!

योगी ने अपनी विद्या से दो प्रहर में वैसा कर दिया। श्रीमाता ने अपनी शक्ति से बनावटी कुर्कुट शब्द किया और उसके निषेध करने पर भी वह उसका छल जानता हुआ विवाह के लिए ठहर गया। योगी ने नदी के किनारे विवाह सामग्री सहित उसे बैठाया। श्रीमाता ने कहा—त्रिशूल छोड़ कर विवाह करने के लिए मेरे पास बैठो! वह वैसा ही करके बैठा तो श्रीमाता ने कुत्ते लगा कर उसकी आँखों को विकृत कर दिया और उसी की शूल से उसका हृदय वेध कर वध कर डाला। इस प्रकार आजन्म अखण्ड शील पालन करके श्रीमाता स्वर्ग को प्राप्त हुई। राजा श्री पुञ्ज ने उस शिखर पर उसका प्रासाद बनवाया।

छह महीनों के बाद अर्बुद नामक साँप पहाड़ के नीचे चलता है जिसके पहाड़ कम्पन होता है इसी से सभी प्रासाद बिना शिखर के है। लौकिक में भी कहते है कि—

पहले यह हिमाचल का पुत्र नन्दिवर्द्धनगिरि था, कालान्तर में अर्बुदनाग का अधिष्ठान होने से "अर्बुद" नाम हो गया। इस पर धनवानों के बारह गाँव बसते है। गोग्गलिक तापस और राष्ट्रीक लोग में हजारों है। न तो ऐसा वृक्ष है न वल्ली, न पुष्प, न कन्द और न फल है एवं न ऐसी खान है जो यहाँ न देखी जाती हो। यहाँ प्रदीप्तिमान् महौषधियाँ है जो रात्रि में ज्वाज्वल्यमान रहती हैं। सुगन्धित और रसाढ्य दोनों प्रकार के वन है।

स्वच्छद छलकती हुई स्वच्छ लहरों वाली मन्दाकिनी नदी है जिसके तट पर फूलों के वृक्ष है और पिपासुओं को तृप्त—आनन्दित करने वाली सुशोभित है। इस गिरिराज के हजारों उत्तुग शिखर प्रकाशित है जहाँ सूर्य का रथ-सारथी भी क्षण मात्र स्खलित हो जाता है। चण्डाली-वज्र-तैलेभ कन्दादि कन्दों की जातियाँ उन-उन कार्यों को सिद्ध करने वाली पद-पद पर देखी जाती है। यहाँ के आश्चर्यजनक कुण्ड, धातु-खाने तथा

अमृत जल वाले झरणों के कारण यह समृद्ध प्रदेश है। कोयल के उच्च स्वर से कूकने पर शीघ्र कोकूयित कुण्ड से खल-खल शब्द करता हुआ जल का प्रवाह प्रादुर्भूत होता है।

श्रीमाता, अचलेश्वर, वशिष्ठाश्रम आदि लौकिक तीर्थ और मन्दाकिनी आदि भी है। इस महागिरिराज के नेता परमार नरेश्वर हैं जिनकी राजधानी चन्द्रावती नगरी लक्ष्मी की निधान है। विमलबुद्धिकलित विमल दण्डनायक ने यहाँ ऋषभदेव भगवान की पित्तलमय प्रतिमावाला चैत्य बनवाया। उसने चम्पक वृक्ष के सान्निध्य में पुत्र सम्पदा एवं तीर्थोद्धार की वाञ्छा से भगवती अम्बा की आराधना करके श्रीमाता के मन्दिर के पास पुष्प-मालादि से रुचिर और गोमय गोमुख देखकर वहाँ शुल्क देकर जमीन ग्रहण की। गुर्जरेश्वर पर क्रुद्ध राणा श्री धांधूक को भक्ति से प्रसन्न कर चित्रकूट से लाकर उसके वचनों से विक्रम सं० १०८८ में प्रचुर द्रव्य व्यय द्वारा उसने "विमल वसति" नामक उत्तम प्रासाद बनवाया। यहाँ बहुत प्रकार से पूजित अम्बिका देवी यात्रागत संघ के गहन विघ्नों का नाश करती है। युगादिदेव के चैत्य के सामने यहाँ एक रात्रि में शिल्पी ने पाषाणमय घोड़ा घड़ कर तैयार किया।

विक्रम संवत् १२८८ में सचिवों में चन्द्र के समान तेजपाल ने लूणिगवलही नामक नेमिनाथमन्दिर का निर्माण कराया। श्री स्तंभतीर्थ में निष्पन्न कसौटी का नेत्रामृताञ्जन बिम्ब तेजपाल मंत्री ने वहाँ स्थापित किया। उसने श्री सोम दिग्पाल के निर्देश से अपने पूर्वजों की मूर्तियाँ हस्तिशाला में विराजमान की।

अहो! सूत्रधार शिरोमणि शोभन देव ने इस चैत्य शिल्प की रचना से अपना नाम सार्थक कर दिया। इस अर्बुद के अनुज मैनाक पर्वत की समुद्र ने वज्र से रक्षा की और इसने भवदण्ड से मंत्रीश्वरों की रक्षा की।

दैवात् म्लेच्छों द्वारा दोनों तीर्थों के भग्न कर देने पर भी इसका उद्धार शक संवत् १२४३ (वि० सं० १३७८) में करवाया। प्रथम तीर्थ का उद्धार महण सिंह के पुत्र लल्ल ने और दूसरे का चण्ड सिंह के पुत्र पीथड़ ने करवाया। चालुक्य कुल चन्द्रमा कुमारपाल भूपाल ने इसके ऊँचे शिखर पर श्री वीर चैत्य का निर्माण कराया।

उन-उन औषधियों से पूर्ण और उन-उन कौतुहलों से भरे हुए अनेक तीर्थों से पवित्रित इस अर्बुदगिरि के दर्शन धन्य जन ही करते है।

श्री जिन प्रभुसूरि ने श्रोत्रसुधाकल्प यह श्रीमद् अर्बुद कल्प वनाया है, चतुर जन इसका परिचय प्राप्त करें।

श्री अर्बुद कल्प समाप्त हुआ। ग्रंथा ग्रं० ५२ अक्षर १२ हैं।

०

९. मथुरापुरी-कल्प

जगत में शरण्यभूत सातवें और तेईसवें जिनेश्वर को नमस्कार करके भव्य जनों को मंगल कारी मथुरा-कल्प कहूँगा।

सुपार्श्वनाथ भगवान के तीर्थ में वर्त्तमान धर्मरुचि और धर्म घोष नामक दो मुनिवर्य सिंह के सदृश निस्संग थे।

वे मुनिराज छट्ठ, अट्ठम, दशम, द्वादशम, पक्षोपवास और मास, दो मास और चार मासक्षमण की तपश्चर्या करते हुए, भव्यजीवों को प्रतिवोध करते हुए किसी समय मथुरा नगरी में

विचरे। उस समय मथुरा नगरी बारह योजन लम्बी और नौ योजन विस्तीर्ण एवं पार्श्व स्थित यमुना नदी के जल से प्रक्षालित प्रकार विभूषित धवलगृह, देवकुल, वापी, कूप, पुष्करिणी, जिनभवन और हाटों से सुशोभित थी। वहाँ विविध चारों विद्याओं को पढ़ने वाले ब्राह्मणों का समूह था।

वहाँ वे मुनिराज अनेक फल फूलों से लदे हुए भूतरमण नामक उपवन में अवग्रह लेकर उपवास करके वर्षाकाल—चातुर्मास स्थित रहे। उनके स्वाध्याय, तपश्चरण और प्रशमादि गुणों से आवर्जित-आकृष्ट उपवन स्वामिनी कुबेरा देवी ने रात्रि में प्रकट होकर कहा—भगवन्! आपके गुणों से मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ, कुछ वर माँगिए! मुनिराजों ने उसे—हम निस्संग हैं, हमें कुछ नहीं चाहिए! कहते हुए—धर्म सुनाकर अविरति श्राविका बनायी।

अन्यदा कार्त्तिक शुक्ल अष्टमी की रात्रि में मुनिराजों ने कुबेरा देवी से कहा—तुम शय्यातर हो, हे श्राविके! तुम दृढ सम्यक्त्व वाली हो, अतः जिन वन्दन, पूजन में प्रवृत्त रहना। वर्तमान योग से चातुर्मास करके पारणे के लिए हम अन्य गाँवों में विचरण करेंगे। देवी ने शोकपूर्वक कहा—भगवन्! आप सर्वदा इसी उपवन में क्यों नहीं रहते! साधुओं ने कहा—

"श्रमणों, पक्षियों, भ्रमरों, गोकुल, चतुष्पदों, पासा सारी और मेघ का निवास अनियत्त होता है।"

उसने प्रार्थना की—यदि ऐसा है तो धर्म कार्य कहिए, जिसे मै सम्पादन करूँ, क्योंकि देवदर्शन अमोघ होता है। साधुओं ने कहा—यदि ऐसा ही आग्रह है तो हमें संघ के साथ मेरुपर्वत ले जाकर चैत्यों की वन्दना कराओ! देवी ने कहा—मैं आप दोनों को देव-वन्दन करा दूंगी! मथुरा संघ चलने से अन्तराल में कोई मिथ्यादृष्टि देव विघ्न करेंगे! साधुओं ने कहा—हमने आगम बल

से मेरु देखा है, यदि संघ को ले जाने की तुम्हारी शक्ति न हो तो केवल हम दोनों तो वहाँ जाने से रहे।

देवी ने उदास होकर कहा—यदि ऐसा है तो मैं यहीं प्रतिमाओं से शोभित मेरु पर्वत का आकार बना दूंगी। जहाँ आप संघ सहित देववन्दन करे। साधुओं ने स्वीकार किया। देवी ने कंचन घटित, रत्न मण्डित, अनेक सुर परिवृत, तोरण-ध्वज-मालालंकृत शिखर व छत्रत्रय शाली स्तूप रात्रि में निर्माण किया। वह स्तूप मेखला-त्रय मण्डित था, एक-एक मेखला में चारों दिशाओं में पच वर्ण रत्नमय बिम्ब थे। उस स्तूप पर मूल प्रतिमा श्री सुपार्श्वनाथ स्वामी की प्रतिष्ठापित थी।

प्रातः काल लोगों को मालूम हुआ तो उस स्तूप को देखकर वे परस्पर कलह करने लगे। कोई कहता ये वासुकि लक्षण युक्त स्वयम्भूदेव हैं, कोई उसे शेष शय्या स्थित नारायण एवं ब्रह्मा, धरणेन्द्र, सूर्य चन्द्रादि बतलाया, बौद्ध कहते ये स्तूप नहीं पर "बुद्धंडउ" है। तब मध्यस्थ पुरुषों ने कहा—कलह मत करो, ये जिस देव ने निर्मित किया है, वही संशय दूर करेंगे। अपने-अपने देवों को पट पर चित्र-आलेखित कर अपनी गोष्ठी सहित रहे! जिनका देव होगा उसी का एक पट रहेगा, दूसरे देवों के पट नष्ट हो जावेंगे। संघ ने भी सुपार्श्वनाथ भगवान का पट लिखा। सभी लोग अपने-अपने देवों के पट गोष्ठी सहित पूजा करके नवमी की रात्रि में सर्व दर्शनी लोग गाते हुए स्थित रहे। आधी रात के समय तृण-धूलि और पत्थर युक्त उद्दण्ड तूफान चलने लगा जिससे सभी पट टूट कर उड गए। प्रलय गर्जारव से लोग दशो-दिश पलायन कर गए। एक सुपार्श्वनाथ भगवान का पट स्थित रहा। लोक विस्मित हुए और "ये अरिहन्त देव हैं"—कहने लगे। उस पट को सारे नगर में घुमाया, पट-यात्रा प्रवर्त्तित हुई।

उसके बाद न्हवण प्रारम्भ हुआ। प्रथम न्हवण के लिए श्रावक लोग कलह करने लगे। प्रतिष्ठित लोगों ने यह व्यवस्था की—जिसके नाम का गोलक (चिट्ठी) कुमारी कन्या के हाथ में प्रथम आवेगा वह चाहे दरिद्र हो धनाढ्य प्रथम न्हवण करावेगा। दशमी की रात्रि में यह व्यवस्था हुई। ग्यारस के दिन दूध, दही, घृत, कुंकुम, चन्दनादि से हजार कलशों से श्रावकों ने न्हवण कराया। देवताओं ने प्रच्छन्न स्थित रहकर न्हवण कराया, आज भी वे उसी प्रकार यात्रार्थ आते हैं।

क्रमशः सभी के द्वारा न्हवण कराने पर पुष्प, धूप, वस्त्र, महाध्वज, आभरणादि चढाए गए। साधुओं को वस्त्र, घृत, गुड़ादि दिया। बारहवीं रात्रि में माला चढ़ाई गयी। इस प्रकार वे मुनिराज देववन्दन कर सकल संघ को आनन्दित कर पारणा करके अन्यत्र चातुर्मास के लिए तीर्थ प्रकट कर क्रमशः कर्मों का नाश कर सिद्धि प्राप्त हुए, वहाँ सिद्ध क्षेत्रतीर्थ हुआ।

मुनिराजों के वियोग से दुखित देवी ने नित्य देव-पूजा-रत अर्द्ध-पल्योपम का आयु पूर्ण कर च्यवकर मनुष्यत्व पाया और उत्तम पद प्राप्त किया। उसके स्थान पर जो-जो उत्पन्न होती है वह 'कुबेरा' नाम से प्रसिद्ध होती हैं। उसके द्वारा परिरक्षित स्तूप चिरकाल—पार्श्वनाथ स्वामी के उत्पन्न होने तक खुला रहा। इसके बीच मथुरा के राजा ने लोभ के वशीभूत होकर आदमी को बुला कर कहा कि इस स्तूप का स्वर्ण और रत्न निकाल कर मेरे भण्डार में रखो। लोग लोहे के कुदालों से स्तूप पर आघात करने लगे पर उनके घाव उस पर न लग कर स्वयं घातकों पर लगने लगे। तब प्रतीतिहीन राजा ने स्वयं कुहाड़े की चोट दी, कुहाड़ा ने उछलकर राजा के मस्तक को छिन्न कर डाला। तब कोपाय-मान देवी ने प्रकट होकर लोगों के कहा—अरे पापियों! यह क्या काम प्रारंभ किया है, राजा की तरह तुम लोगों को भी मरना

है ? भयभीत लोगों ने हाथ में धूप लेकर देवी से क्षमा याचना की। देवी ने कहा—जो जिनालय पूजेगा उसके उपद्रव दूर करूँगी। जो जिन प्रतिमा या सिद्धालय की पूजा करेगा उसी का घर स्थिर रहेगा अन्यथा गिर जायगा।

यहीं से मंगल चैत्यों की प्ररूपणा हुई, ऐसा छेद ग्रंथ वृहत्कल्प में मथुरा के भवनों का निदर्शन किया है।

यहाँ प्रतिवर्ष जिन पटह की नगरमें यात्रा-भ्रमण कराना व कुहाड़ छट्ठी मनाना एवं यहाँ जो भी राजा हो उसे जिनप्रतिमा प्रतिष्ठित कराके भोजन करना, अन्यथा वह जीवित नहीं रहेगा। देवी की इस आज्ञा को लोगों ने पालन करना प्रारंभ कर दिया।

एक बार पार्श्वनाथ स्वामी केवली अवस्था में विचरते हुए मथुरा नगरी पधारे। समवशरण में धर्मोपदेश देते हुए दूपम काल के भविष्य को उन्होंने प्रकाशित किया। भगवान के अन्यत्र पधार जाने पर देवी कुबेरा ने लोगों को पुकार कर कहा—"प्रभु ने दूषम काल निकट बतलाया है। लोग व राजा लोभ ग्रस्त होंगे, मैं भी प्रमादी हूँ और चिरायु नहीं अतः इस खुले स्तूप की सर्वकाल रक्षा नही करने सकूँगी ! संघादेश से मै इसे ईंटों से ढँक दूँगी, तुम लोग शैलमय पार्श्वनाथ स्वामी की वाहर से पूजा करना। मेरे स्थान में दूसरी जो भी देवी होगी, वह अभ्यन्तर की पूजा करेगी। संघ के मानने पर देवी ने वैसा ही कर दिया।

भगवान महावीर के निर्वाण को तेरह सौ से अधिक वर्ष बीतने पर बप्पभट्टिसूरि उत्पन्न हुए, उन्होंने इस तीर्थ का उद्धार किया, पार्श्वनाथ भगवान को पूजाया। शास्वत पूजा करने के लिए कानन, कूप और कोट करवाया। चौरासी ..... दिलाई।

संघ ने ईंटें खिसकती..हुई ज्ञात कर उखड़े जाते स्तूप को पत्थरों से मढ़ने के विचार से खोलना प्रारंभ किया तो देवी ने स्वप्न में स्तूप को खोलना मना किया। तब देवी के वचनों से

स्तूप को बिना खोले सुघटित पत्थर जड़ कर जीर्णोद्धार किया गया। आज भी देवों द्वारा यह महास्तूप रक्षित है, देउल में हजारों प्रतिमाएँ हैं, आवासनिक प्रदेश में मनोहर गन्धकुटी में चिल्लणिका अम्बा और अनेक क्षेत्रपालादि संयुक्त यह जिनभवन विराजमान है।

इस नगरी में भावी तीर्थंकर श्री कृष्ण वासुदेव का जन्म हुआ। यहाँ आर्य मंगू तथा हुंडिक यक्ष—जो चोर का जीव यक्ष हुआ था—का देव कुल है।

यहाँ पाँच स्थल है, यथा—१. अर्क स्थल, २. वीर स्थल, ३. पद्म स्थल, ४. कुश स्थल, ५. महा स्थान। एवं बारह वन इस प्रकार हैं—१. लोहजंघ वन, २. मधुवन, ३. विल्व वन, ४. ताल वन, ५. कुमुदवन, ६. वृन्दावन, ७. भण्डीर वन, ८. खदिर वन, ९. कामिक वन, १०. कोल वन, ११. बहुलावन, १२. महावन।

यहाँ पाँच लौकिक तीर्थ हैं, यथा—१. विश्रान्तिक तीर्थ, २. असिकुण्ड तीर्थ, ३. वैकुण्ठ तीर्थ, ४. कालिंजर तीर्थ, ५. चक्र तीर्थ।

शत्रुञ्जय में ऋषभदेव, गिरनार पर नेमिनाथ, भरौंच में मुनि सुव्रत, मोढेरा में महावीर और मथुरामें सुपार्श्व—पार्श्व को दो घड़ी के भीतर वन्दन कर सौराष्ट्र के ढुंढण में विहार कर के जो ग्वालियर में आहार करते थे उन आमराय सेवित चरण-कमल श्री वप्पभट्टि सूरि जी महाराज ने वि० सं० ८२६ में मथुरा में श्री महावीर भगवान का बिम्ब स्थापित किया।

यहाँ श्री वीर वर्द्धमान स्वामी के जीव विश्वभूति ने अपरिमित बल प्राप्ति का नियाणा किया था। यहाँ यमुना वंकयमुन राजा के द्वारा निहित दण्ड अणगार के केवल ज्ञान उत्पन्न होने पर महिमा करने के लिए इन्द्र आया था।

यहाँ जितशत्रु राजा के पुत्र कालवेशिक मुनि ने अर्श रोगार्त्त स्वदेह में पुद्गलगिरि पर निष्प्रभ उपसर्ग सहन किया था।

यहाँ शंख राजर्षि के तप प्रभाव को देख सोमदेव द्विज गजपुर नगर में दीक्षा लेकर स्वर्ग जाकर काशी में हरिकेश वल ऋषि देव पूज्य हुआ।

यहाँ उत्पन्न राजकन्या निवृत्ति राधविध द्वारा सुरेन्द्र दत्त को स्वयंवरा हुई।

यहाँ कुवेरदत्ता ने माता कुवेर सेना और भाई कुवेरदत्त को अवधि ज्ञान द्वारा अठारह नात्तों के सम्बन्ध वता कर प्रतिवोध दिया।

यहाँ श्रुतसागर पारगामी आर्य मंगु ने ऋद्धिगारव, रस गारव, शाता गारव से यतत्व प्राप्त कर साधु को अप्रमादी करने के लिए जिह्वा प्रसारित कर प्रतिवोध दिया।

यहाँ संबल कंवल नामके वछड़े सेठ जिनदास के संसर्ग से प्रतिवोध पाकर नागकुमार देव हुए और भगवान महावीर के नौकारूढ होने पर उपसर्ग निवारण किया।

यहाँ अन्निका पुत्र ने पुष्पचूल को प्रवर्जित कर संसार समुद्र से पार किया।

यहाँ गवाक्ष स्थित मिथ्यादृष्टि इन्द्रदत्त पुरोहित को—नीचे मार्ग में चलते हुए साधु के मस्तक पर पाँव करने पर—श्रावक ने गुरुभक्तिवश पंगु कर दिया था।

यहाँ भूतगृह स्थित निगोद स्वरूप व स्व आयु पूछ कर सन्तुष्ट चित्त शक्रेन्द्र ने आर्यरक्षित सूरि को वन्दन किया। उपाश्रय के द्वार को अन्य दिशा में कर डाला।

यहाँ वस्त्र पुष्यमित्र, घृत पुष्यमित्र और दुर्वलिक पुष्यमित्र लब्धि-सम्पन्न विचरे। यहाँ वारह वर्ष व्यापी दुःसह दुष्काल

व्यतीत होने पर सकल संघ को एकत्र कर स्कंदिलाचार्य ने आगमानुयोग-वाचना प्रवृत्त की।

यहाँ देव-निर्मित स्तूप के समक्ष पक्षक्षमणपूर्वक देवता को आराधना कर जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण ने दीमक भक्षित त्रुटित पाठ भग्न महानिशीथ सूत्र ग्रंथ को परिपूर्ण किया।

यहाँ साधुओं के तपश्चरण से सन्तुष्ट शासन देवी ने तदर्चनिक परिगृहीत तीर्थ को संघ के वचनानुसार जैनों को दिलाया। पीछे देवी ने लोगों की लोभवृत्ति ज्ञातकर स्वर्णमय स्तूप को प्रच्छन्न करके ईंटों का बना दिया। श्री वप्पभट्टिसूरि के वचनों से आम राजा ने उसे प्रस्तर शिल्प से मण्डित कराया।

यहाँ शंख राजा और कलावती ने पाँचवें जन्म देवसिंह-कनक-सुन्दरी नाम के श्रमणोपासकों ने राज्यलक्ष्मी का उपभोग किया।

इस प्रकार अनेक प्रकार के संविधान वाला इस नगरी का उत्पत्ति—इतिहास है। यहाँ नरवाहना कुबेरा, सिंहवाहिनी अम्बिका व श्वानवाहन क्षेत्रपाल तीर्थ की रक्षा करते हैं।

इस प्रकार श्री जिनप्रभ सूरि ने इस मथुरा-कल्प का कुछ वर्णन किया। इह लोक-परलोक के सुखार्थी भव्यजन इसे पढ़ें।

मथुरा तीर्थ की यात्रा से जो पुण्य-ऋद्धि फल प्राप्त होता है वही इस कल्प को तल्लीनतापूर्वक सुनने से होता है।

श्री मथुरा-कल्प समाप्त हुआ। इसकी श्लोक संख्या ११३ और २९ अक्षर हैं।

●

१०. अश्वावबोध तीर्थ-कल्प

मात्र परोपकार रसिक, श्याम कान्ति वाले श्री मुनिसुव्रत जिनेश्वर को नमस्कार करके मै श्री अश्वावबोध तीर्थ का कल्प संक्षेप से कहता हूँ।

श्री मुनिसुव्रत स्वामी केवल ज्ञान उत्पन्न होने के पश्चात् विचरते हुए एकबार पैठानपुर (पैठण) (प्रतिष्ठानपुर) से एक रात्रि में पाठ योजन उल्लंघन करके जितशत्रु राजा के अश्वको प्रतिवोध देने के लिए लाट देश मंडन नर्मदा नदी अलंकृत भरुअच्छ (भरोंच) नगर के कोरिंट वन में पहुँचे। जितशत्रु ने अपने प्रारभ किए हुए अश्वमेध यज्ञ में अपने सर्वलक्षणसम्पन्न अश्व को होमने की इच्छा की थी। अतः आर्त्तध्यान के द्वारा दुर्गति में न जाय इसीलिए भगवान उसे प्रतिबोध देने के लिए पधारे थे। उन्हे वन्दन करने के लिए लोग समवशरण में आये, राजा भी गजारूढ होकर आया और भगवान को वंदन किया। इसके बाद अश्व भी अपने साथ चलने के लिए नियुक्त पुरुषों के साथ स्वेच्छा से विचरता हुआ समवशरण में आया और स्वामी का अनुपम रूप देखकर निश्चल खड़ा हो गया। उसने धर्म-देशना सुनी, प्रभु ने उसे पूर्व भव इस प्रकार कहा—

पूर्व भव में मै इसी जम्बूद्वीप के पश्चिम विदेह क्षेत्र के पुष्कल विजय की चम्पा नगरी में सुरसिद्ध नामक राजा था। तुम मेरे परम मित्र मतिसार नामक मंत्री थे। मै नन्दन गुरु के चरणों में प्रर्वाजित होकर प्राणत कल्प–देवलोक में गया। वहाँ वीस सागरोपम की आयु पूर्ण की, वहाँ से च्यव कर तीर्थंकर हुआ हूँ। तुम

नरायु बाँधकर भारत वर्ष के पद्मिनीखंड नगर में सागरदत्त नामक सार्थवाह हुए। तुम विनीत परन्तु मिथ्यादृष्टि थे। एक बार तुमने शिवायतन बनवाया, उसमें पूजा के लिए बगीचा भी लगाया और एक तापस को उसकी सार संभाल के लिए नियुक्त कर दिया। गुरु के आदेश से तुम सभी क्रिया कलाप करते हुए काल निर्गमन करते थे। जिनधर्म नामक श्रावक के साथ तुम्हारी गाढ़ मित्रता हो गई। एक बार तुम उसके साथ साधुओं के पास गए। उन्होंने देशना के पश्चात् कहा—"जिसने अंगूठे के पैरवे जितनी भी जिनेश्वर भगवान की प्रतिमा बनवायी है उसने निश्चित ही नरक-तिर्यच गति के द्वार के अर्गला लगा दी है।"

तुम ऐसा सुनकर घर आये और सोने की जिनप्रतिमा बनवायी। उसकी प्रतिष्ठा करवा के तुमने त्रिकाल पूजा करना प्रारंभ कर दिया। एक बार माघ-मास में लिंगपूरण पर्वाराधन के के लिए तुम शिवायतन गये तब जटाधारी ने चिरसंचित घृत के घड़े लिंग-पूरणार्थ निकाले। उनमें लगी घृतेलिकाओं को तापस के द्वारा निर्दयता पूर्वक पाँवों से मसले जाते देख कर तुम शिर धुनते हुए कहने लगे—ये दर्शनी लोग भी इतने निर्दयी हैं तो हमारे जैसे गृहस्थ बिचारे क्या जीवदया पालेंगे? फिर तुमने अपने वस्त्राञ्चल से प्रमार्जन करना प्रारंभ किया। जटी ने तुम्हें फटकारते हुए कहा—'अरे धर्म संकर! कायर! तुम अरहन्त-पाखण्डियों द्वारा विडम्वित हो!' तब से तुम सब धर्मो से विमुख हो गए। निर्दयता पूर्वक धर्म रसिक लोगों को हँसते हुए मायारंभ से तुम तिर्यचायु बाँधकर भव भ्रमण करते हुए राजा के वाहन अश्व हुए। तुम्हें प्रतिवोध देने के लिए ही हमारा यहाँ आगमन हुआ है।

स्वामी के ऐसे वचनों को सुनकर उस घोड़े को जाति स्मरण हो गया। उसने सम्यक्त्व मूल श्रावक धर्म स्वीकार कर सचित्त

का त्याग कर दिया और प्राशुक जल व सूखा घास ग्रहण करने लगा। छह मास पर्यन्त इन नियमों का पालन करते हुए मरके सौधर्म कल्प में महर्द्धिक देव हुआ। उसने अवधि ज्ञान से अपना पूर्व भव ज्ञात कर भगवान के समवशरण स्थान रत्नमय चैत्य कराया। उसमें भगवान मुनिसुव्रत स्वामी की प्रतिमा और अपना भी अश्वरूप स्थापित कर वह देवलोक में लौट गया। तव से अश्वाववोध तीर्थ प्रसिद्ध हुआ। वह देव यात्री संघ के विघ्न दूर कर तीर्थ की प्रभावना करता हुआ मानव भव प्राप्त कर यथा-समय मोक्ष जावेगा।

कालान्तर में वह तीर्थ शमलिका विहार नाम से प्रसिद्ध हुआ। कैसे? यह वतलाते है। इसी जम्बू द्वीप के सिंहल द्वीप में रत्नासय देश के श्रीपुर नगर में चन्द्रगुप्त नाम का राजा था, उसके चन्द्रलेखा भार्या थी। रानी के सात पुत्रों के वाद नर-दत्ता देवी की आराधना से सुदर्शना नामक पुत्री हुई। उसने समस्त कला और विद्याओं का अध्ययन कर तरुणावस्था प्राप्त की। एक दिन वह राज-सभा में पिता के गोद में वैठी थी तव धनेश्वर नामक एक व्यापारी भरौच से आया। वैद्य से पास रही हुई कटुक गन्ध के प्रभाव से छींकते हुए उसने "णमो अरहंताणं" उच्चारण किया जिसे सुनकर राजकुमारी मूछित हो गई, वणिक पीटा गया। सचेत होकर जाति-स्मरण प्राप्त राजकुमारी अपने धर्म-वन्धु को देख कर प्रमुदित हुई। राजा द्वारा मूर्च्छा का कारण पूछने पर उसने कहा—

मैं पूर्वजन्म में भरुअच्छ में नर्मदा तट पर कोरिंट वन स्थित वट वृक्ष पर शमली-पक्षी थी। प्रावृष काल में सात रात्रि तक महा-वृष्टि हुई, आठवें दिन नगर में क्षुधातुर भ्रमण करते हुए मैं व्याध के गृहाङ्गण से मांस-पिण्ड ले उड़ी। पीछा करते हुए व्याध ने

मुझ वट-शाखा पर बैठी हुई को तीर से बींध डाला और मुंह से गिरे हुए मांस-पिंड व तीर को लेकर व्याध अपने स्थान चला गया। मुझे करुण चीत्कारपूर्वक बिलबिलाते-छटपटाते हुए देखकर एक आचार्य महाराज ने जलपात्र से पानी छींट कर नवकार मन्त्र सुनाया। मैंने श्रद्धा की और मरकर आपकी पुत्री हुई हूँ।

तब से वह राजकुमारी विषयला विरक्त हो गई और माता-पिता को पूछ कर उसी श्रावक के साथ सात सौ जहाजों को लेकर भरौंच के लिए रवाना हो गई। उनमें १०० जहाज वस्त्र, १०० जहाज द्रव्य निचय, अगर-चन्दन, धान्य, जल, ईंधन, नाना पक्वान्न, फल, प्रहरणादि के कुल छः सौ जहाज थे, पचास जहाजों में शस्त्र धर व पचास में भेंट प्राभृत थी। इस प्रकार सात सौ वाहन युक्त वह भरौंच के समुद्र तट पर पहुँची। राजा ने वाहन समूह को देख कर सिंहल नरेश की चढ़ाई की आशंका से नगर क्षोभ को दूर करने के लिए सेना को सुसज्जित किया और भेंट-प्राभृत देने के लिए गया तो उस श्रावक ने राजकुमारी सुदर्शना के आने की सूचना दी। राजा ने निश्चिन्त होकर राजकुमारी को भेंट देकर प्रणाम किया। प्रवेश महोत्सव हुआ। राजकुमारी सुदर्शना ने मन्दिर देखा, विधिपूर्वके वन्दन-पूजन करके तीर्थोपवास किया एवं राजा के दिये हुए प्रासाद में रहने लगी।

राजा ने आठ सौ गाँवों के आठ वेलाकुल, आठ सौ किल्ले और आठ सौ नगर दिए। एक दिन में जितनी भूमि में घोड़ा जाय उतनी पूर्व दिशा में और जितनी दूर हाथी जाय उतनी पश्चिम दिशा में भूमि दी। राजा के आग्रह से उसने सब स्वीकार किया।

एक दिन उसने उन्हीं आचार्य महाराज को अपना पूर्व भव पूछा—भगवन्! मै किस कर्म से शमली हुई और उस व्याध ने मुझे मारा? आचार्य महाराज ने कहा—भद्रे! वैताढ्य पर्वत की

उत्तर श्रेणी में सुरम्या नामकी नगरी में विद्याधरेन्द्र संख नामका राजा था जिसकी तुम विजया नामक पुत्री थी एक वार दक्षिण श्रेणी के महिस ग्राम में जाते हुए तुमने नदी तट पर कुक्कुट सर्प देखा और उसे रोष वश मार डाला। वहाँ नदी तट पर स्थित जिनायतन देखकर तुमने अत्यन्त भक्ति पूर्वक भगवान के दर्शन किये जिससे परम आनन्द हुआ। मन्दिर से वाहर निकलते तुमने मार्गश्रम से खिन्न एक साध्वी को देखा। उनकी चरण-वन्दना कर धर्म श्रवण किया। तुम भी उसकी विश्रामणादि द्वारा सुश्रुषा करके देर से घर आई। क्रमशः तुम आर्त्त ध्यान से मर के कोरिण्टक वन में शमली हुई। वह कुक्कुट सर्प मर के व्याध हुआ और पूर्व भव के वैर से उसने तुम्हे शमली के भव में वाण से मारा। पूर्व भव में जिन भक्ति और ग्लान साध्वी की सुश्रुषा के कारण तुम अन्त में बोध प्राप्त हुई और जिनप्रणीत दानादि धर्माचरण कर रही हो। "इस प्रकार गुरु-महाराज के वचनों को श्रवण कर सुदर्शना अपने समस्त द्रव्य को सात क्षेत्रों में व्यय करने लगी। चैत्योद्धार कराया, चौवीस देव कुलिकाएं, पौषध-शाला, दानशाला, अध्ययनशालाएँ कराई। अतः वह तीर्थ पूर्व भव के नाम से "शमलिका विहार" कहलाया। अन्त में उसने द्रव्य भाव से संलेखना पूर्वक अनशन किया और मिती वैशाख शुक्ल ५ को ईशान देव लोक प्राप्त हुई।

श्री मुनिसुव्रत भगवान के मोक्ष जाने के पश्चात् ग्यारह लाख चौरासी हजार चार सौ सत्तर वर्ष वीतने पर विक्रमादित्य संवत्सर प्रवृत्त हुआ। पुनः मुनिसुव्रत स्वामी के जीवितकाल (की तत्कालीन गणना) से ग्यारह लाख पंचाणवें हजार में अट्ठाईस वर्ष न्यून समय के वर्ष में विक्रमादित्य होगा। यह शमली विहार की उत्पत्ति हुई।

भरु अच्छ (भृगुकच्छ-भरोंच) में अनेक लौकिक तीर्थ भी है।

क्रमशः उदयन के पुत्र वाहड़देव ने शत्रुञ्जय-प्रासाद का उद्धार कराया। उसके अनुज अम्बड़ ने अपने पिता के पुण्यार्थ 'शमली विहार' का उद्धार कराया। मिथ्यादृष्टि सिन्धवा देवी ने प्रासाद शिखर पर नाचते हुए अम्बड़ को उपसर्ग किया जिसे आचार्य श्री हेमचन्द्र सूरि ने अपने विद्याबल से निवारण किया।

अश्वावबोध तीर्थ का यह कल्प संक्षेप से श्री जिनप्रभसूरि ने रचा है, भव्य जन इसे त्रिकाल पढ़ें।

॥ अश्वावबोध तीर्थ कल्प समाप्त हुआ। यह ८२ श्लोक और अक्षर २० का है॥

●

११. वैभारगिरि-कल्प

श्री जिनप्रभसूरि द्वारा वैभारगिरि का यह कल्प संक्षिप्त रुचि वालों की संतुष्टि के लिए स्तवन के रूप में बनाया जाता है।

वैभारगिरि के गुण-प्राग्भार वर्णन करने में बुद्धि से परिपूर्ण भारती भी समर्थ नहीं है वहाँ हम कौन चीज है ?

जड़-(बुद्धि) होते हुए भी हम तीर्थ की भक्ति रस-सिक्त गुणों से युक्त उस सुशोभित तीर्थराज की किञ्चित् स्तवना करते है।

यहाँ दारिद्र्यविद्राविका रसकूपिका, गरम और ठण्ढे पानी के कुण्ड किसे कौतूहलपूर्ण नहीं करते ? यहाँ त्रिकूट खण्डिकादि शिखर एवं करण ग्राम के अवशेष घर और वन प्रकाशित हैं।

विविध व्याधियों को नष्ट करने के गुणयुक्त औषधियाँ, मनोहर जल वाले ह्रद एवं सरस्वती आदि पुण्यसलिला नदियाँ यहाँ हैं।

यहाँ बहुधा मगधालोचनादि लौकिक तीर्थ हैं। यहाँ के चैत्यों में अर्हन्त भगवान की प्रतिमाएँ और खण्डित-भग्न मूर्त्तियाँ भी हैं।

जो मेरु पर्वत के चारों उद्यानों की पुष्प संख्या जानते है वे ही यहाँ के सर्व तीर्थों की जानकारी वता सकते है।

श्री शालिभद्र-धन्ना ऋषि ने यहाँ तप्त शिलाओं पर कायोत्सर्ग किया, उन्हे देखने से पुरुषों के पाप नष्ट हो जाते हैं।

यहाँ सिंह, शार्दूल, भालू भेडिये आदि तीर्थ के माहात्म्य से कभी भी उपद्रव नहीं करते।

यहाँ बौद्ध विहार भी प्रति प्रदेश में देखे जाते हैं। यहाँ उन महर्षियों ने आरोहण कर निर्वाण प्राप्त किया था।

यहाँ जो दुर्गम अन्धेरी गुफा है, सुना जाता है कि यहाँ पूर्व काल में रोहिणेय चोर आदि वीरों का निवास रूप था।

राजगृह के प्राचीन नामादि

इसकी उपत्यका में राजगृह नगर सुशोभित है, जिसके क्षिति-प्रतिष्ठादि नाम जव तव हुए हैं। क्षितिप्रतिष्ठ, चणकपुर, ऋषभपुर, कुशाग्रपुर नामों के पश्चात् क्रमशः राजगृह नाम हुआ।

यहाँ नयनों को शीतल करने वाला गुणशिल चैत्य था जहाँ भगवान महावीर स्वामी का समवशरण होता था।

जहाँ पर मेतार्य ने सोने का किल्ला वनवाया और पूर्व भव के मित्र देवता ने वहाँ मणियाँ लगवाई।

जगत् में चमत्कार उत्पन्न करने वाली लक्ष्मी का भोग करने वाले यहाँ शालिभद्रादि अनेक महा धनिक सेठ हुए है।

यहाँ छत्तीस हजार वणिकों के घर थे, जिनमें आधे बौद्ध और आधे जैन थे।

यहाँ के प्रासादों की श्रेणी अत्यन्त प्रेक्षणीय, कल्याणकारी थी जिनके आगे स्वर्ग के विमानों ने भी अभिमान छोड़ दिया था।

जहाँ जगत के मित्र सुमित्रवंशरूपी कमल को प्रकाशित करने में सूर्यवत् मुनिसुव्रत जिनेश्वर हुए, जिनके द्वारा अश्व को अवबोध हुआ और वह व्रती बना।

जहाँ श्रीमान् जरासन्ध, श्रेणिक, कोणिक, अभयकुमार, मेघकुमार, हल्ल विहल्ल नन्दिषेण हुए। जम्बू स्वामी, कयवन्ना, शय्यंभवसूरि आदि मुनि और नन्दादि पतिव्रता स्त्रियां हुईं।

यहाँ श्रीमहावीर प्रभु के ग्यारह गणधर पादपोपगमनपूर्वक मोक्ष प्राप्त हुए। भगवान के ग्यारह गणधरों में प्रभास नामक गणधर ने यहीं जन्म लेकर इसे पवित्र किया था।

जहाँ श्री वीर प्रभु ने चौदह चातुर्मास किए, ऐसे नालंदालंकृत स्थान वाली नगरी कैसे पावन नहीं है ? जहाँ के अनेक तीर्थ अशेष नयनाभिराम और भव्यों को आनन्ददायक है वह नालंदा हमें पावन करे।

रणाङ्गण में शत्रुओं को अपने नाद से भगा देने वाला क्षेत्रपाल मुख्य मेघनाद किन पुरुषों की इच्छा पूर्ण नहीं करता ?

कल्याणक स्तूप के पास जो गौतम स्वामी का मन्दिर है, दर्शन मात्र से नमस्कार करने वाले प्राणियों की प्रीति को पुष्ट करता है।

विक्रम संवत् १३६४ में देवताओं द्वारा सेवित वैभारगिरि तीर्थ का शिखर रूपी कल्पवृक्ष सेवा करने वालों को लक्ष्मी प्रदान करें। वैभारगिरि के स्वामी का गुणसमूह कहने में संलग्न श्री जिनप्रभ सूरि की यह सूक्ति भक्तियुक्त धीरबुद्धिवाले मनुष्य इसके कोमल और विशद पदों को पढ़ें।

श्री वैभारगिरि महातीर्थ का कल्प ग्रं० ३१ अक्षर २ में है।

●

१२ कौशाम्बीनगरी-कल्प

वत्स जनपद में कौशाम्बी नामक नगर थी, जहाँ चन्द्र और सूर्य श्री वर्द्धमान स्वामी को वन्दनार्थ अपने विमान सहित आये। उनके प्रकाश के कारण समय न जानने से मृगावती समवशरण में बैठी रही। चन्द्र-सूर्य के स्वस्थान जाने पर वह आर्या चन्दनबालादि साध्वियों के प्रतिक्रमण करने के पश्चात् उपाश्रय पहुंची। आर्या चन्दना से उपालम्भ पाकर चरणों में गिर के स्व अपराध को खमाते हुए केवलज्ञान प्राप्त किया।

जहाँ उज्जयिनी से पुरुषपरम्परा द्वारा लायी हुई ईंटों चण्डप्रद्योतन राजा द्वारा मृगावती के कहने से बनवाया हुआ दुर्ग आज भी खड़ा है।

जहाँ मृगावती की कुक्षी से उत्पन्न गन्धर्ववेदनिपुण शतानीक पुत्र उदयन वत्स देशाधिप हुआ।

वहाँ के मन्दिरों से प्रेक्षक जनों के नयनाभिराम अमृताञ्जन सदृश जिन प्रतिमाएँ है। वहाँ कालिन्दी-यमुना नदी की जल लहरियों से आलिंगित होते हुए वन है।

यहाँ पौष कृष्ण प्रतिपदा के दिन अभिग्रह धारण करने वाले भगवान महावीर का पाँच दिवस न्यून छः मासी तप का पारणा चन्दनबाला ने सूप के कोने में रहे हुए उड़द के बाकुलों से कराया। देवों ने साढ़े बारह कोटि वसुधारा-वर्षा की, जिससे आज भी वसुहार नाम से प्रसिद्ध गाँव नगरी के पास बसता है। पंच दिव्य प्रकट हुए। उस दिन से ज्येष्ठ शुक्ल १० को स्वामी के पारणा के दिन तीर्थ स्नान-दानादि आचार वहाँ आज भी लोकों में प्रवृत्त है।

यहाँ पद्मप्रभ स्वामी के च्यवन-जन्म-दीक्षा और केवलज्ञान-कल्याणक हुए हैं।

यहाँ स्निग्ध छाया वाले को सब वृक्ष अधिक परिमाण में देखे जाते हैं।

यहाँ पद्मप्रभ भगवान के मन्दिर में प्रभु को पारणा कराती हुई चन्दनबाला की मूर्त्ति दिखायी देती है।

आज भी वहाँ उस मन्दिर में प्रशान्तमूर्त्ति सिंह प्रतिदिन आकर भगवान की भक्ति करता है।

जिनेश्वर के जन्म से पवित्रित कोशाम्बी नगरी महातीर्थ श्री जिनप्रभ सूरि द्वारा स्तुत्य हमें शिव-मोक्ष दे।

कौशाम्बी नगरी का यह कल्प समाप्त हुआ, इसके श्लोक १८ और अक्षर २१ हैं।

•

१३. अयोध्यानगरी-कल्प

अयोध्या नगरी के अउज्झा, अवज्झा, कोसला, विनीता, साकेत, इक्ष्वाकुभूमि, रामपुरी, कोसल आदि सब एक ही पर्याय हैं। यह श्री ऋषभदेव, अजितनाथ, अभिनन्दन, सुमतिनाथ और अनन्तनाथ जिनेश्वर तथा महावीर स्वामी के नौवें गणधर अचल भ्राता की जन्मभूमि है और रघुवंशोद्भव दशरथ, राम, भरत आदि का राजस्थान है। विमलवाहन आदि सात कुलकर यहीं उत्पन्न हुए थे।

भगवान ऋषभदेव स्वामी का राज्याभिषेक युगलियों ने पत्र-सम्पुट में जल लेकर चरणों में छोड़ कर किया तो शक्रेन्द्र ने उन्हें विनीत पुरुष कहा, जिससे विनीता नगरी नाम रूढ हुआ।

यहाँ महासती सीता ने आत्म-शुद्धि करते हुए अपने शील के बल से अग्नि को जलपूर्ण किया। वह जल का पूर जब नगरी को डुबाने लगा तो उस सती ने ही अपने शील के माहात्म्य से उसकी रक्षा की।

यह अर्द्ध भरत-गोलार्द्ध पृथ्वी के मध्य में नवयोजन विस्तीर्ण और बारह योजन दीर्घ है। यहाँ आयतनस्थित रत्नमय चक्रेश्वरी प्रतिमा और गोमुख यक्ष विघ्नों को शीघ्र हरण करते है। यहाँ घग्घर दह सरयू नदी के साथ मिल कर स्वर्गद्वार नाम से प्रसिद्धि प्राप्त है।

यहाँ से उत्तर दिशा में बारह योजन पर अष्टापद पर्वत है जहाँ आदीश्वर भगवान सिद्धि को प्राप्त हुए। वहाँ भरतेश्वर ने सिंह-निषद्या नामक आयतन तीन कोश ऊँचा कराया। अपने-अपने वर्ण और संस्थान युक्त चौबीस जिन-तीर्थंकरों के बिम्ब स्थापित किए। वहाँ पूर्व द्वार में ऋषभ अजित दो, दक्षिण द्वार में संभव-नाथादि चार, पश्चिम द्वार में सुपार्श्वनाथादि आठ, उत्तर द्वार में धर्मनाथादि दस तीर्थङ्कर एवं अपने सौ भ्राताओं के स्तूप भी उसी ने बनवाये।

इस नगरी के वास्तव्य लोग अष्टापद की उपत्यका में क्रीड़ा करते थे।

जहाँ से नवाङ्गी वृत्तिकारक (श्री अभयदेवसूरि) की शाखा में समुद्भूत श्री देवेन्द्रसूरि दिव्य शक्ति से आकाश मार्ग द्वारा चार महाबिम्ब सेरीसयपुर में लाये।

जहाँ आज भी नाभिराजा का मन्दिर-महल है। वहाँ पार्श्व-नाथ वाटिका, सीताकुण्ड व सहस्रधारा है। प्राकार स्थित मत्त-

गयंद यक्ष है जिसके आगे से आज भी हाथी नहीं निकलते, यदि जाते हैं तो मर जाते हैं।

गोपदराई आदि अनेकों लौकिक तीर्थ वहाँ वर्त्तमान है।

इस अयोध्यानगरी के गढ की दीवालें सरयू नदी के जल से सिंचित है। जैनशास्त्र विहित सप्ततीर्थी यात्रा से पवित्रित जन जयवन्त है।

श्री देवेन्द्रसूरिजी महाराज अयोध्यापुरी से चार बिम्ब कैसे लाए ? यह बतलाते हैं। सेरीषक नगर में विचरने वाले, धरणेन्द्र-पद्मावती आराधित छत्तावल्लीय श्री देवेन्द्रसूरि ने उक्कुरुडि स्थान पर कायोत्सर्ग किया था। उनके कई बार ऐसा करने पर श्रावकों ने पूछा—भगवन् ! यहाँ कायोत्सर्ग करने में क्या विशेषता है ? सूरि महाराज ने कहा—यहाँ पाषाणफलक है, जिसकी पार्श्वनाथ प्रतिमा बनवाने पर सन्निहित प्रातिहार्य होगी। श्रावकों की प्रार्थना से सूरिजी ने अष्टम तप करके पद्मावती का आराधन किया। भगवती ने प्रत्यक्ष होकर कहा—सोपारक में अन्धा सुथार है, वह यदि यहाँ आकर अष्टम तपपूर्वक सूर्यास्त के समय फलक घड़ना प्रारम्भ करे और दूसरे दिन सूर्योदय से पूर्व पूर्ण करे तो वह प्रतिमा निष्पन्न हो जायगी ! श्रावकों ने उसे बुलाने के लिए सोपारक नगर पुरुष भेजे। वह सुथार आ गया और उसी प्रकार घड़ना प्रारम्भ किया। धरणेन्द्र को धारण की हुई पार्श्वनाथ प्रतिमा निष्पन्न हुई। सूत्रधार द्वारा घड़ते हुए प्रतिमा के हृदय पर मस्सा प्रादुर्भूत हुआ। उसने उसकी उपेक्षा करके बाकी प्रतिमा घटित की। फिर प्रतिमा को समारते हुए मस्सा देखा। उसने टंकी चलाई, रुधिर निकलने लगा। सूरि महाराज ने कहा—तुमने यह क्या किया ? इस मस्से के रहते यह प्रतिमा अतीव अद्भुतहेतुकि सप्रभाव होती। उन्होंने अँगूठे से दबा कर रुधिर बन्द कर दिया।

उस प्रतिमा के बनने पर अन्य भी चौवीस जिन-बिम्ब खान से लाकर स्थापित किए। फिर दिव्य शक्ति से अयोध्या से तीन महाबिम्ब रात्रि में आकाश मार्ग से लाये। चौथी प्रतिमा को लाते हुए रात्रि बीत गई और धारासेणक ग्राम के खेत में वह रह गई। चालुक्यचक्रवर्त्ती महाराजा कुमारपाल ने चतुर्थ बिम्ब की स्थापना की। आज भी सेरीसा में महाप्रभावक पार्श्वनाथ भगवान संघ द्वारा पूजे जाते हैं। वहाँ म्लेच्छ लोग भी उपद्रव नहीं कर सकते। शीघ्रतावश घड़ने के कारण वैसे सलावण्य अवयव नहीं देखे जाते। उस गाँव में वह बिम्ब आज भी मन्दिर में पूजा जाता है।

श्री अयोध्यापुरी का कल्प समाप्त हुआ, यह ४४ श्लोक व ९ अक्षर परिमित है।

●

१४. अपापा (पावा) पुरी संक्षिप्त-कल्प

जिसके समीप सिद्धार्थ वणिक के कहने से खरक वैद्य ने स्नान द्रोणी में बैठाकर दोनों कानों में शल्य खींचे जाने पर तीव्र पीड़ा से अन्तिम जिनेश्वर के चीत्कार शब्द से प्रस्फुटित गिरि दरी से निकलने वाला पूर आज भी दिखाई पड़ता है।

जृम्भिका से रात्रि में ही महसेन नामक वन में आकर चरम जिनेश्वर-महावीर स्वामी ने वैशाख शुक्ल ११ को तीर्थ प्रवर्त्तन किया और वहाँ पर गौतम स्वामी आदि ग्यारह गणधरों को

उनके छात्रों सहित दीक्षित किया था। उन्होंने त्रिपदी से भव-सागरनिस्तारिणी द्वादशाङ्गी ग्रथित की थी।

जहाँ हस्तिपाल राजा की शुल्कशाला में अधिष्ठित श्री वर्द्ध-मान प्रभु ने दो दिन का अनशन करके अन्तिम देशना-वृष्टि की। स्वाति नक्षत्र के दिन अमावस्या की रात्रि के अन्त में अतुलनीय सुखश्री का स्थान शिव-मोक्ष प्राप्त किया, वह नगरियों में श्रेष्ठ पावा सर्वजनों को पापरहित बनावे।

जहाँ आज भी नागकुमार साँप के रूप में प्रभाव दिखाते हैं। जहाँ अमावस्या की रात्रि में तैलरहित जल से भरे हुए दीपक जलते हैं। अनेक आश्चर्यों की भूमि चरम जिनेश्वर—महावीर स्वामी—के स्तूप से मनोहर स्वरूप वाली श्रेष्ठपुरी वह मध्यमा पावा यात्रियों की समृद्धि के लिए हो।

श्री अपापा (पावापुरी) कल्प संपूर्ण हुआ, इसके ग्रंथाग्र० १० अक्षर २१ है।

●

१५. कलिकुण्ड कुक्कुटेश्वर-कल्प

अंग जनपद में करकण्डु राजा के राज्यकाल में चम्पा नगरी से अनतिदूर कादम्बरी नामक अटवी थी। वहाँ कली नामक पर्वत था जिसकी अधोभूमि में कुण्ड नाम का एक सरोवर था। वहाँ यूथाधिपति महीधर नाम का एक हाथी (रहता) था। एक बार छद्मस्थ अवस्था में विचरते हुए भगवान श्री पार्श्वनाथ स्वामी

कलिकुण्ड के समीप देश मे कायोत्सर्ग पूर्वक रहे। प्रभु को देखकर उस यूथाधिपति हाथी को जातिस्मरण उत्पन्न हुआ। उसने सोचा—मैं विदेह क्षेत्र में हेमंधर नामक वामन था। युवक लोग और विट पुरुष मेरा उपहास करते थे। वैर के वशीभूत होकर नये हुए वृक्ष की शाखा पर फांसी खाकर मरने की तैयारी में मुझे सुप्रतिष्ठ सेठ ने देखा। उन्होंने मुझे कारण पूछा, मैंने यथास्थित कहा तो वे मुझे सद्गुरु के पास ले गए। सम्यक्त्व ग्रहण कराया, अन्त में अनशन करके मैंने निदान किया कि मैं भवान्तर में ऊँचा होऊँ! फिर मर के इस वन में हाथी हुआ। अब इन भगवन्त की पर्युपासना करूँ! ऐसा सोचकर वहीं सरोवर से सरस कमलों को लाकर उनसे जिनेश्वर भगवान को पूजा की। पूर्वगृहीत सम्यक्त्व परिपालित होने से अनशन करके वह व्यन्तर जाति में महर्द्धिक देव हुआ। चरों के मुँह से यह अत्यन्त विचित्र वात सुनकर करकण्डू राजा वहाँ आया। भगवान को न देखकर राजा अत्यन्त आत्मनिन्दा करने लगा कि—वह हाथी ही धन्य हो गया जिसने भगवान की पूजा की, मैं तो अधन्य हूँ। इस प्रकार चिन्तन करते उसके आगे धरणेन्द्र के प्रभाव से वहाँ नौ हाथ प्रमाण वाली प्रतिमा प्रादुर्भूत हुई। राजा ने प्रसन्नतापूर्वक जय जयकार करते हुए वन्दन-पूजन किया। और वहाँ चैत्य भी वनवाया। वहाँ पुष्पादि से त्रिकालदर्शन-पूजन-स्तुति करते हुए राजा ने कलिकुण्ड तीर्थ प्रकाशित किया। वहाँ वह हाथी व्यन्तर सान्निध्य करता है, परचे पूरता है। नव यंत्री आदि यन्त्र और कलिकुण्ड मन्त्र, षट् कर्म कार्य प्रकाशित किए। जैसे ग्रामवासी जन गाँव के नाम से पुकारे जाते हैं वैसे ही कलिकुण्ड निवासी जिनेश्वर भी कलिकुण्ड-पार्श्वनाथ कहलाते हैं। यह कलिकुण्ड की उत्पत्ति हुई।

पहले छद्मस्थावस्था में श्री पार्श्वनाथ स्वामी राजपुरी में कायोत्सर्ग ध्यान में रहे। वहाँ घुड़सवारी के लिए जाते हुए उस

नगर के स्वामी ईश्वर राजा के बन्दी बाणार्जुन ने भगवान को देखकर गुणकीर्त्तन किया। "ये अश्वसेन राजा के पुत्र जिनेश्वर देव हैं" यह ज्ञात कर राजा हाथी से उतर कर प्रभु के पास आकर मूर्छित हो गया। चेतना प्राप्त होने पर मंत्री के पूछने पर वह अपना पूर्व भाव कहने लगा—जब मैं चारुदत्त होकर पूर्व भव में वसंतपुर नगर में पुरोहितपुत्र दत्त था और कुष्ठादि रोगों से पीड़ित हो गंगानदी में पड़ते हुए चारण मुनि से बोध पाकर अहिंसादि पंचव्रत पालन करते इन्द्रिय-शोषण व कषायविजय करने लगा।

अन्यदा चैत्यगृह में आकर जिन-प्रतिमा को प्रणाम करते हुए पुष्कलि श्रावक ने देखा, उसने मुनि गुणसागर से पूछा—भगवन्! इसे मन्दिर में आने में दोष है या नहीं ? मुनिराज ने कहा—"दूर से देव को प्रणाम करने में क्या दोष है ?" आज भी यह कुर्कट होगा" यह सुनकर खेद करते हुए फिर मुझे गुरु महाराज ने सम्बोधित किया कि—तुम जातिस्मरण-अनशन से मर के राजपुरी में ईश्वर नामक राजा होओगे ! तब मैं सन्तुष्ट हुआ और वह सब अनुभव करके क्रमशः राजा हुआ। प्रभु को देख कर मुझे जातिस्मरण हो गया।

इस प्रकार मंत्री को कह कर भगवान को नमस्कार कर वहाँ संगीत करवाया।

प्रभु के अन्यत्र विहार कर जाने पर राजा ने वहाँ प्रासाद बनवाया, बिम्ब की प्रतिष्ठा करवाई। कुक्कुड़ श्रेष्ठ ईश्वर राजा का बनवाया हुआ कुक्कुडेश्वर नामक तीर्थ प्रसिद्ध हुआ। वह राजा क्रमशः कर्म खपा कर सिद्ध होगा ! यह कुक्कुडेश्वर की उत्पत्ति हुई।

कलिकुण्ड और कुक्कुडेश्वर, दो तीर्थों का श्री जिनप्रभसूरि द्वारा वर्णित कल्प भव्य जीवों का कल्याण करे।

कलिकुण्ड-कुक्कुटेश्वर कल्प समाप्त हुआ। इसकी ग्रन्थ संख्या ३५ और अक्षर एक है।

१६. हस्तिनापुर-कल्प

गजपुर (हस्तिनापुर) स्थित श्री शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ और मल्लिनाथ स्वामी को नमस्कार कर के हस्तिनापुर तीर्थ का कल्प संक्षेप से कहता हूँ।

श्री आदीश्वर भगवान तीर्थंकर के भरत और वाहुवली नाम के दो पुत्र थे। भरत के सहोदर अठाणवें कुमार थे। भगवान ने दीक्षा लेते समय भरत को अपने पद पर अभिषिक्त किया और वाहुवली को तक्षशिला दी, वाकी पुत्रों को भी उन देशों में राज्यादि दिए। अग कुमार के नाम से अंग देश हुआ, कुरु के नाम से कुरुक्षेत्र प्रसिद्ध हुआ। इसी प्रकार वंग, कलिङ्ग, सूरसेन, अवन्ती आदि हुए। कुरु राजा का पुत्र हस्ति नामक राजा हुआ उसने हस्तिनापुर वसाया। वहाँ भागीरथी महानदी पवित्र जल से पूर्ण प्रवाहित है।

वहाँ सोलहवें शान्तिनाथ, सत्तरहवें कुन्थुनाथ, अठारहवें अरनाथ तीर्थङ्कर हुए। इन्होंने क्रमशः पाँचवें, छठे और सातवें चक्रवर्त्ती हो कर छः खण्ड भरत की ऋद्धि भोगी। यहीं उनका दीक्षा-ग्रहण और यहीं उनको केवलज्ञान हुआ।

यहीं वर्षोपवासी भगवान ऋषभदेव को वाहुवली के पुत्र श्रेयांस कुमार ने त्रिभुवन गुरु प्रभु के दर्शनों से जातिस्मरण द्वारा दानविधि ज्ञात कर अक्षय तृतीया के दिन इक्षु रस से प्रथम पारण कराया। वहाँ पञ्च दिव्य प्रकट हुए।

भगवान मल्लिनाथ स्वामी इसी नगर में समौसरे।

यहाँ महर्षि विष्णुकुमार ने तपोवल से लक्ष योजन प्रमाण

शरीर विकुर्वित कर के तीन पाँव से त्रैलोक्याक्रान्त करके नमुचि को शासित किया।

इस नगर में सनत्कुमार, महापद्म, सुभूम और परशुराम आदि महापुरुष उत्पन्न हुए।

इसी नगर में पाँच पाण्डव चरम शरीरी उत्तम पुरुष हुए। दुर्योधनादि अनेक महावलवान राजा यहाँ उत्पन्न हुए।

यहाँ सात करोड़ स्वर्ण का अधिपति गङ्गदत्त सेठ हुआ। तथा सौधर्मेन्द्र का जीव 'कार्त्तिक सेठ हुआ जिसने राजाभियोग से परिव्राजक को परोसने से वैराग्यपूर्वक हजार व्यापारियों के साथ श्री मुनि सुव्रत भगवान के पास दीक्षा ली।

इस महानगरी में श्रीशान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ और मल्लिनाथ जिनेश्वर के मनोहर चैत्य हैं, एवं अम्बा देवी का भी देवकुल है।

इस प्रकार अनेक आश्चर्यों के निधान इस महातीर्थ में जो विधिपूर्वक यात्रा महोत्सव आदि से जिन-शासन की प्रभावना करते है वे कुछ भवों में ही कर्म क्लेश नष्ट कर सिद्धि प्राप्त करते हैं।

श्री हस्तिनापुर तीर्थ का यह संक्षिप्त कल्प भी सत्पुरुषों की सङ्कल्प-पूर्त्ति में कल्प-वृक्ष की भाँति बने।

श्री हस्तिनापुर का कल्प समाप्त हुआ इसकी ग्रन्थ संख्या चौवीस और ११ अक्षर है।

●

१७. सत्यपुर-साचौर-तीर्थकल्प

श्री ब्रह्मशान्ति यक्ष सेवित श्री वीर जिनेश्वर को नमस्कार करके श्री सत्यपुर तीर्थ का कल्प किञ्चित् यथाश्रुत कहूँगा। (वीर सं०) १३०० में श्रीकन्नौज नरपति द्वारा कारित देवदारुमय जिनभवन में श्री वीर जिनेश्वर सच्चपुर में जयवन्त वर्त्ते।

इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप में भारतवर्ष में मरुमण्डल में सत्यपुर (सच्चउर) नामक नगर है। वहाँ चैत्यगृह में नाहड़ राय कारित और गणधर-आचार्य श्री जज्जिग सूरि प्रतिष्ठित पित्तलमय श्री वीरप्रभ की प्रतिमा है। नाहड़राय ने उसे कब और कैसे बनाया, उसकी उत्पत्ति बतलाते हैं—

पूर्वकाल में नड्डूल-मण्डल मण्डन मण्डोवर नगर के स्वामी राजा को बलवान भाइयों ने मार कर उस नगर को अधिष्ठित कर लिया। उस राजा की गर्भवती महादेवी भगकर ब्रह्माणपुर पहुँची। वहाँ उसने सकल लक्षण युक्त पुत्र प्रसव किया। फिर नगर के बाहर एक वृक्ष पर झोली में उस बालक को रखकर तत्पार्श्ववर्त्ती स्थान में कुछ काम करने लगी। दैवयोग से वहाँ श्री जज्जिगसूरि जी महाराज पधारे। वृक्ष की छाया को अपरिवर्त्तित देखकर "यह पुण्यवन्त होगा"—ऐसा विचार कर चिरकाल तक वे उसे देखते रहे। उस राजपत्नी ने सूरि महाराज के निकट आकर पूछा—भगवन्! क्या यह लड़का कुलक्षयकारी, अपलक्षणो वाला दिखाई देता है? सूरिजी ने कहा—भद्रे! यह महापुरुष होगा! अत: इसे सर्व प्रयत्नों से पालन करना योग्य है। तब गुरु महाराज ने उसे अनुकम्पापूर्वक चैत्यगृह के कार्य पर नियुक्त कर दिया। उस लड़के का नाम 'नाहड़' रखा। गुरु

महाराज के मुख से उसने पंच परमेष्ठी नवकार मत्र सीखा। वह चपलतावश धनुष-तीर लेकर अक्षय पट्ट (चावल चढ़ाने का पाटा) पर आते हुए चूहों को अचूक लक्ष से मारने लगा। तब श्रावकों ने उसे मन्दिर से निकाल दिया। अब वह लोगों की गायों की रक्षा करने लगा।

एक दिन नगर के वाहर भ्रमण करते हुए उसे किसी योगी ने देखा और उसे बत्तीस लक्षण धारी ज्ञात कर स्वर्णपुरुष सिद्ध करने के लिए उसके पीछे-पीछे जाकर उसकी माँ की अनुज्ञा लेकर वहाँ निवास कर लिया। अवसर पाकर एक दिन उस योगी ने नाहड़ से कहा—"गायों की रखवाली करते हुए तुम्हें रक्त दुग्ध वाला कुलिस वृक्ष (थोहर ?) मिले, यहाँ चिन्ह करके मुझे कहना !" बालक ने कहा—ठीक है। दैवयोग से एक दिन उसने वैसा देख कर योगी को बतलाया। दोनों वहाँ गए, यथाविधि अग्नि जलाकर उसमें रक्तक्षीर प्रक्षिप्त कर योगी के प्रदक्षिणा देने पर नाहड़ ने भी अग्नि की प्रदक्षिणा दी। किसी प्रकार योगी की दुष्ट चित्त-वृत्ति ज्ञात कर राजपुत्र नाहड़ ने नवकार मन्त्र का स्मरण किया। उसके प्रभाव से योगी निष्प्रभ हो गया, नाहड़ ने उसे ही अग्नि में डाल दिया, वह स्वर्णपुरुष बन गया।

नाहड़ ने विचार किया—अहो ! मन्त्र का कैसा माहात्म्य है। इसके दाता गुरु महाराज का मै कैसे प्रत्युपकार करूँगा ? फिर उसने गुरुचरणों में आकर नमस्कार किया और सारा स्वरूप बताते हुए कहा—कुछ आज्ञा दीजिए !

गुरु महाराज के वचनों से नाहड़ ने चौबीस उत्तुङ्ग शिखर वाले चैत्य बनवाये। क्रमशः वह प्रवर राज्यश्री को प्राप्त हुआ। बड़ी भारी सेना के साथ जाकर उसने अपना पैतृक स्थान ग्रहण किया।

एक दिन उसने श्रीजज्जिगसूरि से प्रार्थना की—भगवन् ! कुछ ऐसा आदेश दीजिए जिस कार्य से आपकी और मेरी कीर्त्ति चिरकाल तक फैले। तव गुरु महाराज ने जहाँ चारों थणों से गाय दूध झरती थी, वह भूमि अभ्युदयकारी ज्ञात कर राजा को दिखाई।

राजा ने गुरु महाराज के आदेश से सत्यपुर (साचौर) में भगवान महावीर के ६०० वर्ष वीतने पर एक गगनचुम्वी शिखर वाला जिनालय वनवाया। आचार्य श्री जज्जिगसूरि ने वहाँ पित्तलमय श्री महावीर भगवान की प्रतिमा प्रतिष्ठित की। जव सूरि महाराज प्रतिष्ठा कराने के लिए चले तो अन्तराल में एक उत्तम लग्न के समय नाहड़ राजा के पूर्वपुरुष विझराय की अश्वारूढ़ प्रतिमा का प्रतिष्ठा की। दूसरे लग्नविशेष में पृथ्वी के मैण जैसी नरम होने पर शंख नामक शिष्य ने गुरु महाराज के आदेश से दण्डघात द्वारा कुँआ वनाया। आज भी वह शंख-कूप कहलाता है। वह कुँआ अन्य दिनों में सूखा होनेपर भी वैशाखी पूर्णिमा के दिन पानी से भर जाता है। तीसरे लग्न में भगवान महावीर स्वामी की प्रतिष्ठा की। उसी लग्न में "डुग्गासूअ" गाँव में और 'वयणप' गाँव में साधु श्रावक के हाथ से वासक्षेप भेजकर महावीर भगवान की दो प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित कराई। उस (सत्यपुरीय) वीर प्रभु की प्रतिमा की राजा नित्यप्रति पूजा करता है। इस प्रकार नाहड़ राजा ने वह विम्व कराया।

वहाँ ब्रह्मशान्तियक्ष की सन्निहित प्रातिहार्य से अहर्निश पर्युपासना होती है। वह यक्ष पहले धनदेव सेठ का वृषभ था। उसने वेगवती नदी से पाँच सौ गाडे निकाले। सेठ ने सन्तुष्ट हो कर वैल के चारा-पानी के लिए वर्द्धमान ग्राम निवासी लोगों को वेतन-धन समर्पण किया। उन ग्रामीणों ने धन लेकर भी उस वृषभ की कोई सार-संभाल नहीं की। वह अकाम निर्जरा से मर

के व्यन्तर जाति में शूलपाणि नामक यक्ष उत्पन्न हुआ। विभंग-ज्ञान से अपना पूर्व जन्म का व्यतिकर ज्ञात कर उस गाँव में मात्सर्यवश मारि उत्पन्न कर दो। गाँव वालों ने दुखी हो कर स्नान बलि-कर्म पूर्वक हाथ में धूप लेकर कहा—जिस देव-दानव का हमारें से कुछ भी अपराध हुआ हो वह प्रसन्न हो! तब उस यक्ष ने पूर्वभव-वृषभ का वृत्तान्त कहा। लोगों ने उसी वृषभ के अस्थि-पुँजपर देवल बनवाया और उसकी प्रतिमा करवाई। देवशर्मा को वहाँ देवार्चक—पुजारी स्थापित किया। इस प्रसंग से वर्द्धमान गाँव आस्तिक ग्राम प्रसिद्ध हुआ। शान्ति हुई।

श्री वर्द्धमान स्वामी छद्मस्थ विहार से विचरते हुए क्रमशः दुइज्जन्त तापसाश्रम से वर्षावास के लिए उस गाँव में पधारे। गाँव वालों से पूछ कर भगवान उसी देवकुल में रात्रि के समय कायोत्सर्ग स्थित रहे। उस मिथ्यादृष्टि देव ने भयङ्कर अट्टहास किया। हाथी-नाग-पिशाचादि रूप बना कर उपसर्ग किया। शिर, कान, नासिका, दाँत, आँख, नख और पीठ में भीषण वेदना उत्पन्न की। सर्व प्रकार से प्रभु को अक्षुण्ण ज्ञात कर देव उपशान्त हो हो गया और गीत-नृत्य-स्तुति आदि से पर्युपासना करने लगा। इसके बाद उस यक्ष शूलपाणि का नाम ब्रह्मशान्ति प्रसिद्ध हुआ। वही यक्ष साचौर के वीर-चैत्य में प्रतिष्ठाविशेष से निवास करता है।

पश्चिम गुजरात में वल्लभी नामकी समृद्धिशाल नगरी थी जिसमें शीलादित्य नाम का राजा था। उसने रत्नजटित कांगसी के लोभ में आकर रांका नामक सेठ का पराभव किया। कुपित सेठ उसे विग्रहणार्थ गज्जणपति हमीर को प्रचुर धन देकर उसकी विशाल सेना चढ़ा लाया। उस समय चन्द्रप्रभ स्वामी की प्रतिमा, अम्बा और क्षेत्रपाल युक्त अधिष्ठायक के बल से गगन-मार्ग द्वारा

देवपत्तन गयी। वीर प्रभु की रथारूढ प्रतिमा अदृश्य रूप से चल कर आश्विन-पूर्णिमा के दिन श्रीमालपुर (भीनमाल) में आयी। अन्य सातिशय देवप्रतिमाएँ भी यथोचित्त स्थान में चली गयीं। नगरदेवता ने श्री वर्द्धमानसूरि को संकेत दिया कि जहाँ भिक्षा में प्राप्त क्षीर रुधिर हो कर पुनः क्षीर हो जाय वहीं साधुओं को रह जाना है।

हमीर की उस सेना ने विक्रम संवत् ८४५ में वल्लभी भंग कर के वहाँ के राजा को मार डाला। हमीर अपने स्थान लौट गया।

इसके वाद एक बार अन्य गजनीपति म्लेच्छ राजा गुजरात का भंग कर के लौटते हुए विक्रम सं० १०८१ में साचौर पहुँचा। उसने वहाँ भ० महावीर का मनोहर जिनालय देखा। मारो-मारो वोलते हुए म्लेच्छ लोग प्रविष्ट हुए और हाथी जोत कर भगवान महावीर को खींचा, भगवान स्वस्थान से लेशमात्र भी न चले। फिर वैल जोत कर खीचने पर पूर्वभव राग से व्रह्मशान्ति ने प्रभु को चार अंगुल सरकाया। गजनीपति के स्वयं हाँकने पर भी भगवान निश्चल हो कर रहे, मलेच्छपति उदास हो गया। फिर घन-हथोड़ों से महावीर स्वामी (प्रतिमा) को ताड़न किया, जिसकी चोटें अन्त:पुर की स्त्रियों के लगने लगी। तव मात्सर्य-विह्वल तुर्कों ने तलवार से भगवान महावीर की अंगुली काट ली और उसे लेकर वे चल पड़े। तव घोड़ों की पूँछें जलने लगी और म्लेच्छ लोग मूर्छित होने लगे। फिर वे घोड़ों को छोड़ कर पैदल ही भगे और धसमसते हुए जमीन पर गिर पड़े। वे सर्वबल-क्षीण हो कर दीनतापूर्वक विलविलाते हुए रहमान को याद करने लगे। तव अदृश्य आकाशवाणी हुई कि वीर प्रभु की अंगुली लाने से तुम लोगों का जीवितव्य ही संशय में पड़ गया है।

गजनी वादशाह ने तव विस्मित चित्त से मस्तक धुनते हुए

सेनापति को आज्ञा दी कि यह अंगुली वापस ले जा कर वहीं लगा दो! वे लोग भीतिपूर्वक अंगुली वापस लाये और वह तुरंत स्वामी के हाथ पर जा लगी। यह आश्चर्य देख कर तुर्क लोग कभी स्वप्न में भी साचोर का मार्ग नहीं पकड़ेंगे। चतुर्विध संघ सन्तुष्ट हुआ, वीर प्रभु के मन्दिर में गीत, नृत्य, वाजित्र, पूजा दानादि से धर्म-प्रभावना होने लगी।

अन्यदा बहुत सा काल बीत जाने पर मालवपति गुजरात का भंग करने साचोर की सीमा पर पहुँचा। उस समय ब्रह्मशान्ति यक्षराज ने प्रचुर सैन्य विकुर्वण करके उसे भग्नबल अर्थात् पराजित कर दिया। उसके आवास-शिविर में वज्राग्नि उठी। मालवपति कोश और कोष्ठागार छोड़ कर भाग छूटा।

फिर एक वार सं० १३४८ में प्रबलका फिर सेना देश का भंग करती हुई नगर ग्रामों को नष्ट करती हुई चली आ रही थी तो जिनालय के द्वार बन्द करके चार योजन में ब्रह्मशान्ति यक्ष के माहात्म्य से अनाहत गम्भीर स्वर युक्त वाजित्र श्रवण कर श्री सारंगदेव महाराजा की सेना के आगमन की आशंका से मुगल सेना भाग छूटी और साचौर की सीमा पर भी पैर नहीं दिया।

विक्रम संवत् १३५६ में अलाउद्दीन सुलतान का छोटा भाई उलूखान ने मंत्री माधव से प्रेरित हो कर दिल्ली से गुजरात की ओर प्रस्थान किया। उस समय चित्रकूटाधिपति समरसिंह ने दण्ड दे कर मेवाड़ देश की रक्षा की। तब हमीर युवराज वागड़ देश के सुहड़ासा आदि नगरों को भंग करके आसावाल्ली (अहमदाबाद) पहुँचा। राजा कर्णदेव भग गया। सोमनाथ को घन-घात से तोड़ कर गाडों में भर के दिल्ली भेजा। वामनस्थली जा कर मण्डलीक राजा को दण्डित किया। सौराष्ट्र में अपनी आज्ञा प्रवर्त्तित कर आसावल्ली में रहा। उसने मठ-मन्दिर और देव-कुलों को जलाया।

क्रमशः सात सौ देश में आया। तब साचौर में उसी प्रकार अनाहत वाजित्रों को सुन कर म्लेच्छों का दल पलायन कर गया। इस प्रकार पृथ्वीमण्डल में साचौर के वीर प्रभु के अनेक अवदान पवाड़े (पायड़ा) सुने जाते है।

व्यन्तर देव केलिप्रिय होते ही है. अब अलंघनीय भवितव्य और दूषमकाल के विलसित प्रभाव के कारण मदिर में गोमांस-रुधिर के छींटने से देवता लोग दूर चले जाते हैं। अधिष्ठायक ब्रह्मशान्ति यक्ष के प्रमादवश असन्निहित अवस्था में राजा (सुलतान) अलाउद्दीन ने उस अनल्प माहात्म्य वाले भगवान महावीर की प्रतिमा को संवत् १३६७ विक्रमीय मे दिल्ली लाकर आशातना भाजन किया।

कालान्तर में फिर भी दूसरी प्रतिमाएँ वहाँ प्रगट प्रभावी और पूजनीय होंगी।

साचोर तीर्थ का यह कल्प अप्रमेय महिमा वाला और वांछित फल-सिद्धिकारक है। श्रीजिनप्रभसूरि कहते है भव्यजन नित्य पढ़ें।

श्री सत्यपुर-साचोर तीर्थ कल्प समाप्त हुआ, इसकी ग्रन्थसंख्या १६१ और ३ अक्षर है।

०

१८. अष्टापद महातीर्थ-कल्प

(श्री धर्म घोषसूरि कृत)

जो श्रेष्ठ धर्म, कीर्त्ति और विद्याओं के आनन्द के आश्रम भूत भगवान ऋषभदेव द्वारा पवित्रित है और देवेन्द्रों से वन्दित है उस अष्टापद गिरिराज की जय हो। (१)

जहाँ आपदाएँ नष्ट करने वाले अष्टापद आदि एक लाख दोषों को दूर करने वाले स्वर्ण की जैसी आभा वाले भगवान ऋषभदेव हैं, उस अष्टापद गिरिराज की जय हो। (२)

भगवान ऋषभदेव के बाहूबलि आदि ९९ पुत्र-प्रवर मुनिगण जहाँ अजरामर पाये, उस अष्टापद गिरिराज की जय हो। (३)

जहाँ प्रभु के वियोग से भीरु दस हजार महर्षि प्रभु के साथ ही अनशन करके मुक्त हुए उस अष्टापद गिरिराज की जय हो। (४)

जहाँ भगवान ऋषभदेव के साथ आठ पौत्र और ९९ पुत्र एक समय में मुक्त हुए, उस अष्टापद गिरिराज की जय हो। (५)

तीन चिताओं के स्थान में जहाँ मूर्त्त रत्नत्रय की भाँति इन्द्र ने तीन स्तूपों की स्थापना की, उस अष्टापद गिरिराज की जय हो। (६)

जहाँ भरत चक्रवर्ती ने सिद्धायतन के समान सिंहनिषद्या नामक चतुर्मुख चैत्य बनवाया, उस अष्टापद गिरिराज की जय हो। (७)

जहाँ एक योजन लम्बा और उससे आधा चौड़ा एवं तीन कोश ऊँचा चैत्य विराजमान है, उस अष्टापद गिरिराज की जय हो। (८)

जहाँ भरत ने भाइयों की प्रतिमाएँ, चौबीस तीर्थंकरों की प्रतिमाएँ एव अपनी भी प्रतिमा बनवायी, उस अष्टापद गिरिराज की जय हो। (९)

जहाँ भरत ने अपने-अपने आकार और वर्ण वाले वर्त्तमान (चौबीसी) के जिनेश्वरों के बिम्ब भरवाये, उस अष्टापद गिरिराज की जय हो। (१०)

जहाँ ९९ प्रतिमाओं से युक्त भाइयों के स्तूप एवं अर्हन्त भगवान के स्तूप बनवाए, उस अष्टापद गिरिराज की जय हो। (११)

भरत द्वारा जहाँ मोहरूपी सिंह का नाश करने के हेतु अष्टापद सिंह की भाँति आठ योजनों वाली पैड़ियों से सुशोभित हैं, उस अष्टापद गिरिराज की जय हो। (१२)

जहाँ भरत चक्रवर्ती आदि अनेकों कोटि महर्षियों ने सिद्धि-साधना की, वह अष्टापद गिरिराज की जय हो। (१३)

जहाँ सगर राजा के पुत्रों के आगे भरत महाराजा के वंशज महर्षियों के सर्वार्थसिद्ध एवं मोक्ष प्राप्ति करने वालों का सुबुद्धि ने वर्णन किया, उस अष्टापद गिरिराज की जय हो। (१४)

जहाँ समुद्र के समान विशाल आशय वाले सगर राजा के पुत्रों ने गिरिराज के चारों ओर रक्षा के लिए परिखा—सागरखाई बनाई, उस अष्टापद गिरिराज की जय हो। (१५)

जहाँ जैन लोग अपने पापों को प्रक्षालन करने के लिए ही मानो चारों ओर गंगा से आश्रित है और हमेशा चंचल लहरों से शोभायमान है उस अष्टापद गिरिराज की जय हो। (१६)

जहाँ जिनेश्वर भगवान को तिलक चढ़ाने से दमयन्ती ने अपने भालस्थल पर स्वाभाविक तिलक रूप अनुरूप फल प्राप्त किया, उस अष्टापद गिरिराज की जय हो। (१७)

जहाँ क्रोधपूर्वक उठ कर समुद्र में फैंकने को प्रस्तुत रावण को चरणों से दबा कर वालि मुनि ने रुला दिया, उस अष्टापद गिरिराज की जय हो। (१८)

लंकेन्द्र रावण द्वारा जिन-पूजोत्सव के समय अपनी भुजाओं की ताँत निकाल कर वीणा बजाने से धरणेन्द्र के द्वारा अमोध विजया शक्ति उसे मिला, उस अष्टापद गिरिराज की हो (१९)

जहाँ चारों दिशाओं में चार, आठ, दश और दो जिन प्रतिमाओं को गणधर (श्रीगौतम स्वामी) भगवान ने वन्दन किया, उस अष्टपद गिरिराज की जय हो। (२०)

अपनी शक्ति से जो इस गिरि को वन्दन करते हैं वे अचल उदय को प्राप्त करते हैं—ऐसा भगवान महावीर ने वर्णन किया, उस अष्टापद गिरिराज की जय हो। (२१)

प्रभु के कहे हुए पुण्डरीक अध्ययन को गौतम द्वारा पढ़ने से (बोध पाकर) तिर्यक जृम्भिकदेव दशपूर्वी वज्रस्वामी हुए, उस अष्टापद गिरिराज की जय हो। (२२)

जहाँ जिनेश्वरों का स्तवन कर लौटते श्रीगौतम स्वामी ने पन्द्रह सौ तापसों को दीक्षित किया. उस अष्टापद गिरिराज की जय हो। (२३)

इस प्रकार अष्टापद पर्वत के समान अष्टापदमय चिरस्थायी महातीर्थ वर्णन किया गया है, उस अष्टापद गिरिराज की जय हो। (२४)

यह अष्टापद महातीर्थ-कल्प समाप्त हुआ, यह श्रीधर्मघोष सूरि की रचना है। इसके ग्रन्थाग्रं० ३० और २२ अक्षर संख्या है।

१९. मिथिलातीर्थ-कल्प

देवताओंसे प्रणत श्री मल्लिनाथ और नमिनाथ जिनेश्वर के चरणकमलों में प्रणाम कर के मैं मिथिला महानगरी का कल्प लेशमात्र कहता हूँ।

इसी भारतवर्ष में पूर्व देश में विदेह नामक जनपद है तो वर्त्तमान काल में तिरहुत देश कहलाता है। वहाँ प्रत्येक घर में

मधुर मन्जुला फलों के भार से नत कदलीवन दृष्टिगोचर होते है। पथिक लोग भी दूध में सिद्ध हुए चिउड़ा और क्षीर का भोजन करते है। पद-पद पर मीठे पानी वाली वापी, कूप, तालाव और नदियाँ है। प्राकृत—ग्राम्य जन भी संस्कृत भाषा विशारद, अनेक शास्त्रों के प्रशस्त विद्वान् और अतिनिपुण लोग है। वहाँ ऋद्धि से समृद्ध मिथिला नामक नगरी थी जो वर्त्तमान में जगई नाम से प्रसिद्ध है। इसके निकट ही जनक महाराजा के भ्राता कनक का निवासस्थान कनकपुर है।

इस मिथिला नामक नगरी मे कुम्भ राजा और प्रभावती की कुक्षी से संभूत भगवान मल्लिनाथ स्त्रीतीर्थकर और विजयनृप-वप्रादेवी के नन्दन नमि जिनेश्वर का च्यवन, जन्म-दीक्षा और केवलज्ञान कल्याणक हुए है।

यहाँ श्री वीर प्रभु के अष्टम गणधर अकम्पित का जन्म हुआ है।

यहाँ जुगवाहु-मयणरेहा के पुत्र नमी नामक महाराजा वलय—चूड़ियों के शब्द से प्रत्येकबुद्ध हुए और सौधर्मेन्द्र परीक्षित वैराग्य निश्चय वाले हुए।

यहाँ ही लक्ष्मीगृह चैत्य में आर्य महागिरि के शिष्य कौण्डिन्य-गोत्रीय अश्वमित्र श्री वीर-निर्वाण के दो सौ बीस (२२०) वर्ष बीतने पर अणुप्रवाद पूर्व में रही हुई नैपुणिका वस्तु को पढते हुए श्रद्धाहीन हो गया। प्रवचन-स्थविरों द्वारा अनेकान्तिक युक्तियों से समझाकर मना करने पर भी वह उत्सूत्र प्ररूपणा कर चतुर्थ निह्नव हुआ।

श्री महावीर स्वामी के पद-पङ्कजो से पवित्रित जल वाली वाणगंगा और गंडकी नदियों का संगम इस नगरी को पावन करता है।

यहाँ चरम तीर्थङ्कर-श्री महावीर भगवान ने वर्षाकाल बिताया था।

यहाँ जनकसुता महासती सीता की जन्मभूमि का स्थान विशाल वट विटपी प्रसिद्ध है।

यहाँ श्री राम-सीताका विवाह-स्थान साकल्लकुण्ड नाम से लोक में रूढ है। और यहाँ पाताललिङ्ग आदि अनेक लौकिक तीर्थ भी विद्यमान हैं।

यहाँ मल्लिनाथ चैत्य में वैरुट्या देवी, कुबेर यक्ष एवं नमिनाथ चैत्य में गंधारी देवी और भृकुटि यक्ष आराधक जनों के विघ्न अपहरण करते हैं।

जिनमार्ग में स्थित जो लोग इस मिथिला कल्प को सुनते और पढ़ते हैं, उनके कण्ठ में मुक्ति श्रीवरमाला डालती है। ('जिणपह' शब्द से कल्प रचयिता श्री जिनप्रभ सूरि का नाम भी समझना चाहिए)।

श्री मिथिला तीर्थ का कल्प समाप्त हुआ। यह ग्रंथाग्रं० ३४ अक्षर १८ परिमित है।

■

२०. रत्नवाहपुर-कल्प

श्री रत्नवाहपुर स्थित श्री धर्मनाथ भगवान को नमस्कार करके उसी पुर-रत्न का कल्प किंचित् करता हूँ। इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप में भारतवर्ष के कोशल जनपद में नानाजातीय उच्च-

स्तरीय शाखा वाले बहुल दलकुसुम-फलाच्छादित, सूर्य-रश्मि अगम्य गहन वन मण्डित, निर्मल-शीतल वाले निर्झर, घर्घर नद से मनोहर रत्नवाह नामक नगर है। वहाँ इक्ष्वाकु कुल दीपक स्वर्ण वर्ण और वज्र लांछन युक्त ४५ धनुष प्रमाण देह वाले पन्द्रहवें तीर्थङ्कर विजयविमान से अवतीर्ण होकर भानु नरेन्द्र के घर सुव्रता देवी की कुक्षी से पुत्ररूप में अवतरित हुए और गुरुजनों द्वारा धर्मनाथ नाम रखा गया। उनके जन्म-दीक्षा और केवलज्ञान कल्याणक भी यहीं हुए और समेत शिखर पर निर्वाण हुआ। इसी नगर में लोगों के नेत्रों को शीतलता प्रदान करने वाला, नागकुमार देव द्वारा अधिष्ठित श्री धर्मनाथस्वामी का चैत्य समय आने पर बना।

उस नगर में एक कुम्भार अपने शिल्प में निष्णात था। उसका पुत्र तरुणावस्था प्राप्त करके भी क्रीडा की दुर्लिप्सा से घर से वहाँ के रामणीयक शालिनी चेत्य में आकर यथेच्छ द्यूतादि क्रीड़ा किया करता था। वहाँ एक केलिप्रिय नागकुमार देव भी मानव देह धारण कर कुम्भार के लड़के के साथ प्रतिदिन क्रीड़ा करने लगता। अपने कुलक्रमागत कुलाल कर्म का धन्धा न करने के कारण उसका पिता हमेशा उसे दुर्वचनों से फटकारता। जब वह पिता की बात नहीं मानता तो पिता उसे मार-पीट कर मिट्टी खोदने व लाने आदिका काम कराता। फिर भी वह मौका पाकर बीच-बीच में उसी चैत्य में जा कर नागकुमार के साथ खेलने लगता।

नागकुमार ने पूछा—पहिले की तरह निरन्तर खेलने नहीं आते? उसने कहा—मेरा पिता क्रुद्ध होता है अतः उदर-पूर्त्ति के लिए कुछ अपना काम भी करना पड़ता है! नागकुमार ने कहा—यदि ऐसी बात है तो खेल के पश्चात् मै पृथ्वी पर लोट

कर साँप हो जाऊँगा, तुम मेरी चार अंगुल पूँछ अपनी मिट्टी खोदने की कुदाली से काट कर ले लेना। वह स्वर्णमय हो जायगी उसी सोने से तुम्हारे कुटुम्व का निर्वाह होता रहेगा! सौहार्द के कारण प्रतिदिन इसी प्रकार प्रवृत्ति चलने लगी। प्रतिदिन सोना पाकर भी उसका पिता इस रहस्य से अनभिज्ञ रहा।

एक बार पिता ने उसे बाँध कर पूछा तो भय से उसने यथा-स्थित कह दिया तो विस्मयपूर्वक उसके पिता ने कहा—रे मूर्ख! चार अंगुल ही क्यों काटते हो? अधिक काटने से अधिक प्राप्ति होती है! पुत्र ने कहा—पिताजी! मित्र के वचनों का उल्लंघन कर अधिक काटने की मेरी इच्छा नहीं है। पर पिता तो लोभाभि-भूत था, वह लड़के की क्रीड़ा के समय चैत्य में छिपा खड़ा रहा। खेल के पश्चात् जब नागकुमार साँप बन कर भूमि पर लोटता हुआ बिल में प्रवेश करने लगा तो पिता ने कुदाली से उसका आधा शरीर काट डाला। नागकुमार ने क्रुद्ध होकर—रे पापी! तुमने रहस्य खोल दिया—कहते हुए गहरा फटकारा और पिता-पुत्र दोनों को काट खाया। इतना ही नहीं, नागकुमार ने तीव्र क्रोधावेश में समस्त कुंभारों के वंश का नाश कर दिया। उसके वाद आज तक कोई कुंभार का काम करने वाला वहाँ नहीं रहता। वहाँ की जनता मिट्टी के बर्त्तन अन्य स्थानों से लाती है।

वहाँ उसी प्रकार नागमूर्त्तियुक्त धर्मनाथस्वामी की प्रतिमा सम्यग्दृष्टि यात्रियों के द्वारा बड़े समारोहपूर्वक पूजी जाती है। आज भी वहाँ इतर धर्म वाले धर्मराज के नाम से उन्हें पुकारते हैं और वर्षा न होने पर हजारों घड़े दूध से भगवान का अभिषेक कराते है। उसी समय वहाँ प्रचुर मेघवृष्टि हो जाती हैं।

कन्दर्पा शासनदेवी और किन्नर शासनय[illegible] भगवान धर्मनाथ के भक्त-पूजकों के विघ्न दूर कर अर्थ क[illegible] कराते है।

श्रीरत्नवाहपुर या रत्नपुर का यह कल्प श्री जिनप्रभ सूरिजी ने यथाश्रुत निर्माण किया है।

॥ श्री धर्मनाथ की जन्मभूमि रत्नपुर तीर्थ का कल्प समाप्त हुआ। इसकी ग्रंथाग्रं० ३२ और अक्षर २३ है ॥

२१. पावापुरी-दीपावली-बृहत्कल्प

श्री महावीर भगवान को नमस्कार करके उन्हीं के मोक्षगमन से पवित्रित, दीवाली महोत्सव की उत्पत्ति से प्रतिबद्ध पावापुरी का कल्प कहूँगा।

गौड़ के पाडलिपुर में त्रिखण्ड भरत का स्वामी राजा सम्प्रति परमश्रावक प्रणत हो कर आर्य सुहस्ति गणधर को पूछता है कि भगवन्! लोक और लोकोत्तर का गौरवान्वित यह दीवाली पर्व कैसे हुआ? गुरु महाराज कहते है—राजन्! सुनो।

उस काल उस समय में श्रमण भगवान महावीरस्वामी प्राणतकल्प स्थित पुष्पोत्तर विमान में वीस सागरोपम आयु परिपूर्ण कर, वहाँ से च्यव कर तीन ज्ञान के सहित इसी अवसर्पिणी के तीन आरों के व्यतिक्रान्त होने पर चतुर्थ आरे के पचहत्तर वर्ष और साढे नौ मास अवशेष रहने पर मिति आषाढ शुक्ल ६ के दिन उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में माहणकुण्ड ग्राम नगर में ऋषभदत्त ब्राह्मण की भार्या देवानन्दा की कुक्षी में—सिंह, गज, वृषभादि चतुर्दश महास्वप्न संसूचित—अवतीर्ण हुए। वहाँ ८२ दिन के

अनन्तर शक्रेन्द्र के आदेश से हरिणेगमेषी ने आश्विन कृष्ण १३ को उसी उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में क्षत्रियकुण्ड ग्राम नगर में सिद्धार्थ राजा की त्रिशला देवी के गर्भ से विनिमय कर के गर्भ में रखा। सातवें महीने में माता का स्नेह ज्ञात कर प्रभु ने ऐसा अभिग्रह लिया कि "मै माता पिता के जीवित्त रहते श्रमण नहीं बनूंगा!" नौ मास और साढे सात दिन बीतने पर चैत्र शुक्ल त्रयोदशी की अर्द्ध रात्रि मे उसी उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में प्रभु का जन्म हुआ। माता पिता ने वर्द्धमान नामकरण किया। मेरु-कम्प, देव गर्व खर्वण (विनाश), इन्द्र व्याकरण प्रणयन अवदान प्रगट कर भोगों को भोग कर, माता-पिता के स्वर्ग जाने पर, तीस वर्ष गृहस्थावास में रह कर, सम्वत्सरी दान देकर, चन्द्रप्रभा शिविका में अकेले एक देवदूष्य से मार्गशीर्ष कृष्ण १० के दिन उसी उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में छट्ठ तपपूर्वक अपराह्न में ज्ञात खण्ड वन में निष्क्रान्त—दीक्षित हुए। दूसरे दिन बहल विप्र ने पायस-क्षीर से पारणा कराया। पञ्च-दिव्य प्रादुर्भूत हुए। फिर वारह वर्ष साढे छः मास तक मनुष्य, देव और तिर्यञ्चों द्वारा किये हुए उपसर्गों को सहन कर उग्र तपश्चर्या करके जंभिय गाँव में ऋजुवालुका तट पर गोदोहनासन में छट्ठ भक्त से उसी उत्तरा-फाल्गुनी नक्षत्र में वैशाख शुक्ल दशमी के तृतीय प्रहर में केवल-ज्ञान प्राप्त हुए। ग्यारस के दिन मध्यम पावा में महसेन वन में तीर्थ प्रवर्त्तन किया। इन्द्रभूति प्रमुख गणधरों को सपरिवार दीक्षित किया। दीक्षा-दिवस से भगवान के ४२ वर्षा-चातुर्मास हुए यथा—१ अस्थिग्राम में, ३ चम्पा—पृष्ठचम्पा में, १२ वैशाली—वाणियग्राम में, १४ नालन्दा-राजगृह में, ६ मिथिला में, २ भद्रिका में, १ अलंभिका में, १ पणिय भूमि में, १ श्रावस्ती में। फिर अन्तिम मध्यम-पावा में हस्तिपाल राजा के अभुक्तमान शुल्क-शाला में हुआ। वहाँ आयु शेष जानते हुए स्वामी ने सोलह प्रहर तक देशना की।

वहाँ राजा पुण्यपाल वन्दनार्थ आया और अपने देखे हुए आठ स्वप्नों का फल पूछने लगा। भगवान कहते हैं वे यों हैं—प्रथम हिलते हुए प्रासाद पर हाथी खड़े हैं, उनके गिरने से कोई उधर से नहीं जाता। जो जाते उनमें से कितने ही निकल भी जाते हैं और कितने उसके गिरने से नष्ट भी हो जाते है। इस स्वप्न का फल ऐसा है—चलते प्रासाद के स्थान पर दुखमय गृहस्थावास, संपदाएँ, स्नेह और निवास अस्थिर हैं। अहो! दूषमकाल से दुष्प्र-जीवी इत्यादि वचनों से धर्मार्थी श्रावक गजरूप हैं। इत्तर पर समय प्राधान्यरूप से वे देशभंगादि द्वारा प्रतिहत हो जायँ पर निकलना नहीं चाहते। जो लोग व्रत ग्रहण कर निकलते भी हैं, वे अविधि से निर्गमन करते हैं, उनका भी विनाश हो जायगा। गृहस्थ लोगों के संक्लेश में पड़ने पर वे भग्न परिणाम वाले होंगे! विरले ही सुसाधु हो कर आगमानुसार गृहस्थों के संक्लेश में आने पर भी अवगणना कर के कुलीन होने से संयम का निर्वाह करेंगे। यह प्रथम स्वप्न का अर्थ है।

दूसरा स्वप्न यह है—वानरों के मध्य में वहुत से यूथाधिपति थे वे अमेध्य से अपने आपको लीप रहे हैं, दूसरे भी ऐसा ही करते है, लोग उन्हें हँस रहे है। वानर कहते हैं यह अशुचि नहीं गोशीर्ष चन्दन है। ऐसे वानर विरले हैं जो अमेध्य का विलेपन नहीं करते। जो नही करते उन पर करने वाले खीजते है। इसका फल यह है—वानर स्थानीय गच्छगत साधु हैं। कितने ही अप्रमत्त और कितने ही चल परिणाम वाले हैं। यूथाधिपतियों के स्थान पर आचार्यादि गच्छाधिपति समझना चाहिए। अशुचि-विलेपन के स्थान पर उनके द्वारा आधा कर्मादि सावद्य सेवन, अन्य विलिपन के स्थान पर अन्य साधुओं का भी वैसा ही करना और उसके कारण लोगों का हँसना, उनकी अनुचित प्रवृत्ति से वचनों द्वारा

हीलना है। वे कहेंगे कि ये गर्हित नहीं किन्तु धर्म के अंग हैं। विरले ऐसे होंगे जो उनके अनुरोध करने पर भी सावद्य प्रवृत्ति नहीं करेंगे। वे उन पर क्रोध करेंगे और कहेंगे—ये अवगीत है, अकिञ्चित्कर हैं। यह दूसरे स्वप्न का अर्थ है।

तीसरा स्वप्न यह था—उत्तम छाया वाले क्षीर वृक्ष के नीचे बहुत से प्रशान्त रूप वाले सिंह-शावक बैठे हैं। लोग उनकी प्रशंसा करते हैं, अधिगमन करते हैं। और बबूल वृक्षों के नीचे श्वान बैठे हैं। इसका फल यों है—क्षीर तरु स्थानीय साधुओं के विचरने योग्य क्षेत्र हैं। श्रावक लोग साधुओं की भक्ति-बहुमान करने वाले, धर्मोपकरण देने वाले और सुसाधुओं की रक्षा करने वाले हैं, वे भी बहुत से सिंहपोतक नियतावासी पार्श्वस्थ, अवसन्न, संक्लेशकारी साधुरूपी श्वानों के द्वारा रुके हुए हैं। वे स्वयं को जन रंजनार्थ प्रशान्त दिखला कर तथा प्रकार के कुतूहली लोगों के द्वारा प्रशंसा पावेंगे, उनके पास जावेंगे और उनके वचनों का पालन करेंगे। वहाँ कदाचित् कोई धर्म श्रद्धालु व्यवहार के परिहार करने वालों से दुखी होंगे तो वे तद्भावित श्वानादि से प्रतिहसित होंगे! बार-बार शुद्ध धर्म कहने से उन्हें लोग कहेंगे—ये तो भौंकते है! जिन बबूल के समान कुलों में वे दुखी होंगें ऐसे लोगों से अवर्णवाद के द्वारा उनका परिहास होगा। दूषमकाल के प्रभाव से धर्मगच्छ सिंहपोतक के समान होंगे।

चौथा स्वप्न इस प्रकार था—कितने ही कौए वापी के तट पर तृषा से अभिभूत थे। वे मायासर को देख कर वहाँ जाने लगे। किसी ने उन्हें रोका—"यह जल नहीं हैं"। किन्तु उन्होंने विश्वास नहीं किया, वहाँ गए और नष्ट हो गए। इसका फल यह है—वापी स्थानीय सुसाधु संत हैं, जो अत्यन्त गम्भीर सुभावितार्थ और उत्सर्गापवादकुशल हैं। पागल न होने पर भी पागल बने हुए राजा की भाँति यह जानकर कि कालोचित धर्मनिरत और

अनिश्रित के समीप भी रहना चाहिए। यहाँ काक के समान अत्यन्त वक्र जड़ अनेककलंकोपहत धर्मार्थी जानना चाहिए। वे आज भी धर्म श्रद्धा से अभिभूत हैं। मायासर के स्थान पर पूर्वोक्त विपरीत धर्माचारी है। अत्यन्त कष्टानुष्ठान निरत भी अपरिणत होने से अनुवाद प्रवृत्तता से कर्मबन्ध के हेतु हैं। उन्हे देख कर मूढ धार्मिक जन वहाँ जायँगे। उन्हे कोई गीतार्थ कहे कि ये धर्म मार्ग नही है किन्तु धर्माभास है, तो भी विश्वास न करते जावेंगे वे संसार में पतन से नष्ट होंगे। जो उनके वचन से रुकेंगे वे ही अमूढ धर्मसाधक होगे।

पाँचवा स्वप्न यह है—विषय वन मे मृत सिंह अनेक गीदड़ों से घिरा हुआ है किन्तु कोई भी शृगालादि उसका विनाश नही कर रहे हैं। कालान्तर में उस मृत सिंह के कलेवर में कीड़े उत्पन्न हो गए और सिंह को खाने लगे, यह देख कर शृगालादि उपद्रव करने लगे। इसका फल–उपनय यों है कि—सिंह के स्थान पर परवादिमत दुर्द्धर्ष प्रवचन है। वन के स्थान पर प्रविरल सुपरीक्षक धर्मी जनो वाला भारतवर्ष है। शृगाल गणों के स्थान परतीर्थिकादि प्रवचन प्रत्यनीक है। वे ऐसा मानते है कि यह प्रवचन हमारे पूजा सत्कार दानादि का उच्छेद करने वाला है, अतः जैसे तैसे नष्ट हो जाय! वह विषम अमध्यस्थ जनों से परिपूर्ण है और वह प्रवचन मृत अतिशय व्यपगम से निष्प्रभाव होगा। तो भी प्रत्यनीक जन भय से उसे उपद्रुत नहीं करेंगे। वास्तव में यह परोत्पर सुस्थित और संगत है। काल-दोष से उसमें प्रवचन निर्द्धश करने वाले मतान्तरीय रूपी कीड़े उत्पन्न हो जाएँगे और वे परस्पर निन्दा-भण्डनादि से शासन का लाघव करायेगे। उसे देख वे प्रत्यनीक भी "ये परस्पर न मिले" इसलिये निश्चय निरतिशेष मात्र प्रवचन को निर्भयता से उपद्रव करेंगे।

छठ्ठा स्वप्न यों है—पद्माकर सरोवरादि बिना पद्म वाले और

गर्दभक-छीलर युक्त बन गए हैं। कमल विरल रूप में ऊकरड़ी पर उगे हुए हैं किन्तु वैसे रमणीय नहीं। यहाँ पद्माकरों के स्थान पर धर्मक्षेत्र और सुकुल जानने चाहिए। धर्म प्रतिपत्ति रूप तथा साधु-श्रावक संघ रूप कमलादि उसमें नहीं है। जो धर्म स्वीकार करेंगे वे भी कुशील संसर्गी और लोलुप परिणाम वाले हो जाएंगे। ऊकरड़े के स्थान पर प्रत्यन्त क्षेत्र अथवा नीच कुलादि जानना चाहिए, उनमें धर्मप्रवृत्ति होगी वे भी अर्थानुपत्ति दोष से लोगों के द्वारा तिरस्कृत होंगे! ईर्ष्यादि दोष दुष्ट होने से अपनी कार्य-सिद्धि नहीं कर सकेंगे।

सातवाँ स्वप्न यह है—कोई दुर्विदग्ध कृषक जले हुए और घुन लगते हुए ऊगने के अयोग्य बीजों को अच्छे बीज मानता हुआ ऊषरादि खेतों में विखेर कर बो रहा है। उन बीजों में आया हुआ कोई विरल शुद्ध बीज वह हटा देता है। इसका फल यों है—

कृषक स्थानीय दानधर्मरुचि जीव हैं, वे दुर्विदग्ध हैं, किन्तु अपने आप को ज्ञायक मानते हुए अप्रायोग्य संघ भक्तादि दान को प्रायोग्य मानते हुए उन वस्तुओं को भी अपात्रों को देते हैं। यहाँ चतुर्भगी है—एक शुद्ध अप्रायोग्य में किञ्चित् शुद्ध देने योग्य होता है, उसको दूर कर देते हैं, अथवा आये हुए सुपात्र को परिहार कर देंगे। इस प्रकार के दान, दायक और ग्राहक होंगे। अन्यथा भी व्याख्या है—अबीज के स्थान पर असाधु जानना चाहिए। दुर्विग्ध लोग उन्हें भी साधु-बुद्धि से ग्रहण करेंगे। अस्थानों में अविधि से स्थापित करेंगे। जैसे कोई दुर्विग्ध कृषक अबीजों को भी बीज और बीजों को अबीज मानता हुआ उस प्रकार से वहाँ बोता है जहाँ कीड़े आदि खा जाते हैं अथवा चतुष्पदादि नष्ट कर दें। अथवा अन्यथा उगे हुए भी नहीं काटे जाते। इस प्रकार अज्ञानी धर्म श्राद्ध वाले सुपात्रों को भी अविधि

अवहुमान अभक्ति आदि उस प्रकार करेंगे कि जिससे पुण्य का प्रसव अक्षम हो जायगा।

आठवाँ स्वप्न यह है—प्रासाद के शिखर पर क्षीरोद से भरे सूत्रादि से अलंकृत ग्रीवा वाले कलश हैं, दूसरे भूमि पर उतारे हुए कलश पड़े है। कालान्तर में वे शुभ कलश अपने स्थानों से चलित हो उन पुराने घड़ों के ऊपर गिरे जिससे वे फूट गए।

इसका फल यह है—कलश स्थानीय सुसाधु हैं, पहले उग्र विहार से विचरते थे। पूज्य हो कर भी कालादि दोष से संयम स्थान से चलित हो कर अवसन्नभूत शिथिलाचारी हो जावेंगे। दूसरे पार्श्वस्थादि भूमिस्थित-भूमिरज उद्वेलित पाँवों से सैकड़ों असंयम स्थान युक्त वोदे घड़ों के जैसे निषन्न परिणाम वाले होंगे। और वे सुसाधु अन्य विहार क्षेत्रों के अभाव से घूमते हुए वोदे घड़ों के समान पार्श्वस्थादि के ऊपर गिर कर पीड़ा करेंगे। और वे स्वक्षेत्र पर आक्रमण से पीड़ित होते हुए निर्दयता से उनके सुष्ठुतर संक्लेश करेंगे। तब वे परस्पर विवाद करते हुए दोनों ही संयम से भ्रष्ट हो जायँगे।

"कितने ही तप का गौरव करने वाले और दूसरे स्वधर्म क्रियाओं में शिथिल, ऐसे दोनों ही मात्सर्यवश अस्पृष्ट धर्म हो जायँगे।"

फिर कितने ही "पागल न होने पर भी पागल बने राजा" के आख्यान के अनुसार कालादि दोष होने पर भी अपना निर्वाह करेंगे। उस आख्यान को पूर्वाचार्य इस प्रकार बतलाते हैं—

पूर्वकाल मे पृथ्वीपुरी में पूर्ण नाम का राजा और उसके सुबुद्धि मंत्री था। एक बार लोगदेव नामक एक नैमित्तिक आया। सुबुद्धि मंत्री ने उसे भावी काल का स्वरूप पूछा। उसने कहा—महीने के बाद यहाँ मेघवृष्टि होगी, जो भी उसका जल पीयेंगे वे

सभी ग्रथिलत्वग्रस्त—पागल हो जायेंगे। कितना ही काल बीतने पर फिर सुवृष्टि होगी जिसका जल पी कर वे लोग पुनः स्वस्थ होंगे! मन्त्री ने तब राजा से यह बात कही। राजा ने ढिंढोरा पिटा कर लोगों को जल-संग्रह करने का आदेश दिया। लोगों ने जल-संग्रह भी किया। महीना होते ही मेघवृष्टि हुई। उन लोगों का सगृहीत जल समाप्त हो गया तो लोगों ने नया जल पीना प्रारम्भ कर दिया, जिससे सामन्तादि सभी लोग पागल हो कर स्वेच्छा से नाचते-गाते रहने लगे। केवल राजा और मन्त्री ने संगृहीत जल नहीं छोड़ा और वे स्वस्थ रहे। तब राजा और मंत्री को अपने जैसा न देखकर सामन्तादि ने परस्पर मन्त्रणा की कि—"राजा और मन्त्री पागल हैं जो हमारे जैसा आचरण नहीं करते! अतः इन्हें हटाकर अपने जैसे आचरण करने वाले दूसरे राजा और मंत्री को स्थापित करेंगे। मंत्री ने उनकी मन्त्रणा ज्ञात कर राजा से निवेदन किया। राजा ने कहा—इन लोगों से अपने को कैसे सुरक्षित रखना! क्योंकि लोकवृन्द ही राजा के तुल्य होता है! मंत्री ने कहा—राजन्! पागल न होने पर भी अपने को पागल बन कर रहना चाहिए, अन्यथा छुटकारा नहीं!

राजा और मंत्री कृत्रिम पागल होकर उन लोगों के बीच अपनी संपत्ति की रक्षा करते हुए रहने लगे, जिससे वे सामन्तादि सन्तुष्ट होकर कहने लगे—अहो! राजा और मंत्री भी हमारे जैसे हो गये। इस उपाय से उन्होंने अपनी रक्षा की। कालान्तर में सद्वृष्टि हुई और उस नवीन जल को पीकर सभी लोग प्रकृतिस्थ-स्वस्थ हो गए।

इस प्रकार दूषम काल में गीतार्थ लोग भी अपना भविष्य सुरक्षित रखने के लिए कुलिंगी लोगों के जैसे ही रहते हुए अपना निर्वाह करेंगे! इस प्रकार स्वामी के मुख से दूषम काल विलसित

भावी सूचना देने वाले आठ स्वप्नों का फल श्रवण करके पुण्यपाल राजा प्रवर्जित होकर मोक्ष गए।

इस दूषम समय के विलास को लौकिक में भी कलिकाल नाम से पुकारते हैं। जैसे—पूर्वकाल में द्वापरयुगोत्पन्न राजा युधिष्ठिर ने राजवाटिका जाते हुए किसी स्थान पर वछड़ी के नीचे एक गाय को स्तन-पान करते देखा। यह आश्चर्यजनक घटना देखकर राजा ने द्विजवरों से पूछा—यह कैसे? उन्होंने कहा—देव! यह आने वाले कलियुग का सूचक है! इस अद्भुत वात का फल यह है कि—कलियुग में माता-पिता अपनी कन्या को किसी ऋद्धि सम्पन्न घर में देकर द्रव्य ग्रहणादि द्वारा अपनी आजीविका चलावेंगे।

वहाँ से आगे प्रस्थान कर चलते हुए राजा ने किन्ही लोगों को पानी में भीगी हुई वालुका की रस्सी वटते हुए देखा और क्षणमात्र में वह रस्सी वायु के संयोग सें नष्ट हो गई। राजा के पूछने पर द्विज ने कहा—महाराज! इसका फल यह है कि जिस द्रव्य को कठिनाई से आजीविका करके वढाएँगे वह धन कलियुग में चोर-अग्नि-राजदण्डादि से विनष्ट होगा।

फिर आगे चलकर धर्मपुत्र ने देखा आवाह (खेली) से वह कर उलटा जल कुएँ में गिरता है। वहाँ भी ब्राह्मणों ने कहा—जिस द्रव्य को असि-मसि-कृषि और वाणिज्यादि द्वारा प्रजा उपार्जन करेगी वह सब राजकुल में चला जायगा। जहाँ दूसरे युगों में तो राजा लोग अपना द्रव्य देकर लोगों को सुखी करते हैं।

आगे जाते हुए फिर राजा ने राय चम्पा और शमीवृक्ष-खेजड़ी को एक ही प्रदेश में देखा। वहाँ लोगों को शमी वक्ष की वेदिका वाँधकर गंध-माल्यादि से अलंकृत कर गीत नृत्य महिमादि करते हुए देखा और दूसरे छत्राकार वृक्ष को सुगन्धित पुष्पों से समृद्ध

होते हुए भी कोई नहीं पूछता था। ब्राह्मणों ने उसका फल इस प्रकार कहा—गुणवान महात्मा और सज्जनों की पूजा नहीं होगी और ऋद्धि भी नहीं होगी। निर्गुण स्थान, पापी और दुष्ट लोगों को प्रायः कलियुग में पूजा सत्कार और ऋद्धि प्राप्त होगी।

आगे चल कर राजा ने एक सूक्ष्म छिद्रों वाली शिला को केशाग्र से बंधे हुए अन्तरिक्ष स्थित देखा। वहाँ भी पूछने पर श्रेष्ठ जनेऊधारी विप्र ने कहा—महाभाग! कलिकाल में शिला की भाँति विपुल पाप होगा और बालाग्र जितना धर्म होगा। पर उतने से धर्म के माहात्म्य से ही लोग कुछ समय निस्तार करेंगे, उसके टूटने पर सब डूब जायगा।

पूर्वाचार्यों ने भी लोकविख्यात कलियुग माहात्म्य को दूषम काल में इस प्रकार बतलाया है—

कूवावाहा जीवण-तरुफलवह-गावि वच्छ धावणया।
लोह विवज्ज(च्च)य कलिमल-सप्प गरुड़पूअपूआय ॥१॥

अर्थ—आवाहोपजीवी कूप, फलों के लिए वृक्ष-वध, वछिया द्वारा गौ का पालन, लोह-कटाह में कलिमल पाक, सर्पो-दुष्टों की पूजा और गरुड़-धर्मी जनों-की अपूजा होगी।

हत्थंगुलि दुग घट्टण-गय-गद्दभ-सगड़-वाल सिलधरणं।
एमाई आहारणा लोयंमि वि काल दोसेणं ॥२॥

अर्थ—दो अंगुलियाँ हाथ का घट्टन करेगी, हाथी के योग्य शकट गर्दभ लेंगे, बालों से शिलाधारण, आदि इस तरह की बातें लोक में कालदोष से होगी।

जयघर कलह कुलेयर मेरा अणु सुद्ध धम्म पुढवि ठिई।
वालुग वक्कारंभो एमाई आइ सद्धेण ॥ ३ ॥
कलिअवयारे किय निज्जिएसु चउसुंपि पंडवेसु तहा।
भाइ वहाइ कहाए जामि ग जोगंमि कलिणाओ ॥ ४ ॥

तत्तो जुहिट्ठिलेणं जियंमि ठइयंमि दाइए तंमि।
एमाई अट्ठुत्तर सएण सिद्धा नियठिइ त्ति ॥ ५ ॥

इन गाथाओं का अर्थ

कूप से आवाह आजीविका करेगा। इसका उपनय राजा कूप-स्थानीय है वह आवाहस्थानीय ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र सभी के भरण-पोषण करने योग्य है पर कलियुग-दोष से उन्ही से अर्थ ग्रहण करेगा (१)। तथा फल के लिए वृक्ष का वध और छेद होगा। फलतुल्य पुत्र तरुतुल्य पिता का वध-हानि-उद्वेग, धनप्राप्ति लेखनादि से उपार्जन करेंगे (२)। वछिया तुल्य कन्या के विक्रय से गोतुल्य जननी धावन तुल्य उपजीवन करेगी (३)। लोहमयी कड़ाई—जो सुगन्धित तैल-घृत पाक के उचित है उसमें कलिमल रूप पिशित आदि का पाक होगा। याने स्वजाति वर्ग को छोड़-कर अनालवद्ध पराये जनों में अर्थदान होगा, ये भाव है (४)। साँप जैसे धर्मवर्जित निर्दयों का दानादि सत्कार होगा, गरुड़ स्थान पूज्य धर्माचार्यों की अपूजा होगी (५)।

दो अंगुलियों से हाथ का घाटन और स्थापन होगा। हाथ के तुल्य पिता का अंगुली द्वय तुल्य वहुत से पुत्रों द्वारा जयघर झगड़ा करने-वशीभूत करने वाले घट्टण नामक लोग होंगे (६)। हाथी से वहन करने वाले शकट को गर्दभ के द्वारा ग्रहण किए देखा। उसका फल—गजस्थानीय उच्चकुलों में जो मर्यादा रूपी शकट वाहन के उचित थे उनमें कलह और पुनर्विवाह होंगे! इतर गर्दभ स्थानीय नीच कुलों में उत्तम नीति होगी (७)। वाल से वंधी हुई शिला आकाश में लटकती देखी, थोड़ा भी सूक्ष्मतर वाल स्थानीय शास्त्रानुसार शुद्ध धर्म है। शिला तुल्य पृथ्वी उसके निवासी लोग स्थित्ति निर्वाह करेंगे (८)। जैसे वालुका से वनाई रस्सी नहीं पकड़ी जा सकती उसी प्रकार वाणिज्य-कृषि, सेवा आदि आरंभ से भी विशिष्ट प्रासादानुरूप फल प्राप्त नहीं होगा (९)।

शेष दो गाथाओं का अर्थ कथानकगम्य है वह इस प्रकार है—

पाँच पांडवों ने दुर्योधन, दुःशासनादि सौ भाइयों और कर्ण, गांगेय, द्रोणाचार्य आदि संग्राम के अग्रणी लोगों को मार दिया। बहुत काल तक राज्य का परिपालन कर कलियुग-प्रवेश के समय महापथ में प्रस्थान किया। किसी वन-प्रान्त में पहुंचे, वहाँ रात्रि में युधिष्ठिर ने भीम आदि को प्रतिप्रहर प्रहरिक—पहरेदार रूप से नियुक्त किया। धर्मपुत्रादि के सो जाने पर पुरुष रूप करके कलि भीम के सम्मुख उपस्थित हुआ। उसने भीम से कहा—अरे! भाइयों, गुरुओं, पितामह आदि को मार कर अब तुम धर्मार्थ जा रहे हो? यह तुम्हारा कैसा धर्म है। तब भीम क्रुद्ध हो कर उसके साथ युद्ध करने लगा जैसे जैसे भीम युद्ध करता था वैसे वैसे कलि बढ़ता जाता था, कलि ने भीम को जीत लिया। इसी प्रकार दूसरे प्रहर में अर्जुन को, तीसरे में नकुल को और चौथे में सहदेव को उसने कहा। उन्होंने क्रोध किया और वे भी हार गए। कुछ रात्रि शेष रहे युधिष्ठिर उठे, कलि उनके साथ भी युद्ध करने को प्रस्तुत हुआ। तब शान्ति से ही राजा ने कलि को जीत लिया और छोटा सा वना कर सराव में बैठा दिया और प्रातः भीमादि को दिखला कर कहा—यह वही है जिसने तुम्हें जीत लिया था। इत्यादि कलिस्थिति के १०८ दृष्टान्त महाभारत में व्यास ऋषि ने दिखाये हैं। अस्तु,

तदनन्तर गौतम स्वामी ने जानते हुए भी पूछा—भगवान्! आपके निर्वाणानन्तर क्या-क्या होगा? प्रभु ने कहा—गौतम! मेरे निर्वाण के तीन वर्ष साढ़े आठ मास बीतने पर पाँचवा दुःषम आरा लगेगा। मेरे मोक्ष गमन के ६४ वर्ष हो जाने पर अन्तिम केवली जम्बूस्वामी मुक्ति जावेंगे। उन्हीं के साथ मनः पर्यव ज्ञान, परमावधि ज्ञान, पुलाक लब्धि, आहारक शरीर, क्षपकश्रेणी,

उपशमश्रेणी, परिहार विशुद्ध-सूक्ष्म संपराय और यथाख्यात चारित्र, केवलज्ञान और सिद्धि गमन ये बारह स्थान भारतवर्ष में विच्छेद हो जाएँगे।

अज्ज सुहम्मप्पमुहा होहिंति जुगप्पहाण आयरिया।
दुप्पसहो जा सूरी चउरहिआ दोण्णि अ सहस्सा ॥१॥

[आर्य सुधर्म आदि से लेकर दु:प्रसह सूरि पर्यन्त दो हजार चार युग प्रधानाचार्य होंगे।]

एक सौ सत्तर से कुछ अधिक वर्ष बीतने पर स्थूलिभद्र के स्वर्गस्थ होने पर अंतिम चार पूर्व, समचतुरस्र सस्थान, वज्र ऋषभ नाराच सघयण, और महाप्राण ध्यान विच्छेद हो जाएँगे। पाँच सौ वर्ष बीतने पर आर्यवज्र के साथ दशवाँ पूर्व और चतुष्क संघयण नष्ट हो जायगा।

मेरे मोक्षगमन के पश्चात् पालक, नंद, चंद्रगुप्त आदि राजाओं के हो जाने के पश्चात् चार सौ सत्तर वर्ष बाद विक्रमादित्य राजा होगा। इस वीच ६० वर्ष पालक का राज्य, १५५ वर्ष नन्दों का, १०८ वर्ष मौर्यवंशियों का, ३० वर्ष पुष्यमित्र का, ६० वर्ष वलमित्र-भानुमित्र का, ४० वर्ष नरवाहन का, १३ वर्ष गर्दभिल्ल का, ४ वर्ष शकों का फिर विक्रमादित्य का राज्य होगा। वह स्वर्णपुरुष सिद्ध किया हुआ और पृथ्वी को अनृण करके अपना संवत्सर चलायगा।

निर्वाण के चार सौ त्रेपन वर्ष बाद गुण शत कलित श्रुत प्रयुक्त, गर्दभिल्ल के छेदक कालकाचार्य होंगे।

दूषम काल के प्रभाव से बड़े नगर गाँव जैसे हो जाएँगें और गाँव स्मशान जैसे हो जावेंगे। राजा लोग यमदण्ड जैसे, कौटुम्बिक दासप्राय सरकारी कर्मचारी घूसखोर, भृत्य स्वामीद्रोही, सासूएँ कालरात्रितुल्य, बहुएँ सर्पिणीतुल्य, कुलाङ्गनाएँ निर्लज्ज कटाक्षों से देखने वाली वेश्याचरण शिक्षित होंगी। पुत्र और शिष्य स्वच्छंद-

चारी होंगे। मेघ असमय वर्षी और समय पर नहीं वर्षने वाले होंगे। दुर्जन लोग सुखी और ऋद्धि-सम्मान के पात्र होंगे। सज्जन अल्प ऋद्धि वाले, अपमानपात्र और दुखी होंगे। देश में परचक्र, डमर, दुर्भिक्ष, आदि दुख होंगे। अधिकांश पृथ्वी क्षुद्र सत्व हो जायगी। विप्र लोग धनलोभी और अस्वाध्यायी होंगे। श्रमण लोग कषाय कलुषित मन वाले मन्दधर्मी और गुरुकुल-वासत्यागी होंगे। सम्यग्दृष्टि सत्पुरुष अल्पबल और मिथ्यादृष्टि प्रचुर शक्तिशाली होंगे। देव दर्शन नहीं देंगे। विद्या-मंत्र उस प्रकार के प्रभावशाली नहीं रहेंगे। औषधियाँ, गोरस, कर्पूर, शर्करादि द्रव्यों के रस, वर्ण, गन्धादि की हानि होगी। मनुष्यों के बल, बुद्धि और आयुष्य का ह्रास हो जायगा। मासकल्पादि के योग्य क्षेत्र नहीं रहेंगे। प्रतिमारूप श्रावक धर्म का विच्छेद हो जायगा। आचार्य भी शिष्यों को सम्यक् श्रुत नहीं देंगे।

भरतादि दश क्षेत्रों में श्रमण कलहकारी, डमर कारी, असमाधि करने वाले और अनिवृत्तिकारक होंगे। मुनियों के दिन व्यवहार, मंत्र-तंत्रादि में बीतेंगे और इन्हीं की साधना में लग जाने से उस अनर्थलुब्धों का आगमार्थ नष्ट हो जायगा। जिस प्रकार राजा व्यापारियों से धन लेने के लिए युद्ध करेंगे वैसे ही साधु लोग भी श्रावकों से उपकरण, वस्त्र, पात्र, वसति आदि के लिए लड़ेंगे। अधिक क्या ? मुण्ड बहुत किन्तु साधु अल्प होंगे।

पूर्वाचार्य परम्परागत समाचारी को छोड़ कर स्वमति विकल्पित समाचारी को "यही सम्यक् चारित्र है!" ऐसा कहते हुए तथा विविध मुग्धजनों को मोह में डाल कर उत्सूत्रभाषी, अल्प स्तुति और परनिन्दापरायण कितने ही साधु होंगे! म्लेच्छ नृप बलवान और हिन्दू राजा अल्प बल वाले होंगे!

निर्वाण के यावत् १९१४ वर्ष वीतने पर विक्रम संवत् १४४४ में पाटलिपुत्र नगर में चैत्र शुक्ल ८ की अर्द्ध रात्रि-वृष्टिकरण-मकर-

लग्न में जिसके मतांतर में 'मगदण' नामक चाण्डाल कुल वाले के घर जसदेवी की कुक्षि से कल्कि राजा का जन्म होगा। कोई ऐसा भी कहते हैं :

"भगवान महावीर के १९२८ वर्ष पांच मास बीतने पर चाण्डाल कुल में कल्कि राजा होगा।" उसके तीन नाम होंगे—कइ, कल्कि और चतुर्मुख। उसके जन्म-समय में मथुरा में राम और मधुसूदन का भवन कही भी गुप्त रहा हुआ गिरेगा। दुर्भिक्ष, डमर, रोगों से जन पीड़ित होंगे! अठारहवें वर्ष में कार्त्तिक शुक्ल पक्ष में कल्कि का राज्याभिषेक होगा! लोगों के मुख से ज्ञात कर वह नन्द राजा के पाँच स्वर्ण स्तूप ग्रहण करेगा! चमड़े के सिक्के चलावेगा। दुष्टों का पालन और श्रेष्ठ पुरुषों का निग्रह करेगा। पृथ्वी को साधन कर छत्तीसवें वर्ष में त्रिखण्ड भरत का अधिपति होगा। खोद खोद कर सभी निधानों को ग्रहण करेगा।

उसके भण्डार में ९९ कोटा कोटि सुवर्ण, चौदह हजार हाथी, सत्यासी लाख घोड़े, पाँच करोड़ हिन्दु तुर्क और काफिरों की पदाति होगी। उसका एकछत्र राज्य होगा। द्रव्य के लिए राज-मार्ग पर खनन करते हुए पाषाणमय लवणदेवी नामक गाय प्रकट होकर गौचरी-चर्या में गए साधुओं को सींगों से मारेगी। उनके प्रातिपदाचार्य को कहने पर वे आदेश देंगे कि इस नगर की पृथ्वी पर जल का उपसर्ग होगा। तब कुछ साधु अन्यत्र विहार कर जावेंगे। कितने ही वसति प्रतिबन्ध से तद्ग्रहणार्थ वहीं ठहरेंगे। सतरह दिन की वृष्टि से सर्वार्थ निधान प्रगट होंगे। गंगा में सारा नगर डूब जायगा। राजा और संघ उत्तर दिशा में रहे हुए विस्तृत स्थल पर चढ़कर बचेगे। राजा वहाँ पर नया नगर बसावेगा। सभी धर्म वाले उससे दण्ड पावेगे। साधुओं के पास भिक्षा में से षष्ठांश माँगने पर कायोत्सर्ग से आहूत शासनदेवी निवारण करेगी। पचासवें वर्ष में सुभिक्ष होगा। एक द्रम्म मुद्रा में धान्य की द्रोणी

मिलेगी। इस प्रकार निष्कण्टक राज्य का उपभोग कर छयासीवें वर्ष में फिर सभी पाखंडियों को दण्डित्त कर सब लोगों को निर्धन करके साधुओं से भी भिक्षा में षष्ठांश माँगेगा। न देने पर उन्हें कारागार में डाल देगा। तब प्रातिपदाचार्य प्रमुख संघ शासनदेवीका ध्यान कर कायोत्सर्ग में रहेंगे। उसके बोध देने पर भी जब वह पाप निवृत्त नहीं होगा तब आसन काँपने पर शक्रेन्द्र ब्राह्मण का रूप धारण कर आवेगा। जब उसका भी वचन न मानेगा तो शक्रेन्द्र के चपेट से आहत होकर मर के नरक जावेगा। तब उसका धर्मदत्त नामक पुत्र राज्यारूढ़ किया जायगा। संघ को स्वस्थ रखने का आदेश देकर शक्र स्वस्थान चला जायगा। दत्त राजा बहत्तर वर्षायु पर्य्यन्त प्रतिदिन पृथ्वी को जिन चैत्य मण्डित करेगा और लोगों को भी सुखी करेगा। दत्त का पुत्र जित्तशत्रु और उसका पुत्र मेघघोष होगा। कल्कि के पश्चात् महानिशीथ सूत्र नहीं रहेगा। दो हजार वर्ष की स्थिति वाले भस्मराशि ग्रह की पीड़ा दूर होने पर देव भी दर्शन देंगे। विद्यामंत्र भी अल्प जाप से प्रभाव दिखाएँगे। अवधिज्ञान और जातिस्मरण भाव भी कहीं प्रगट होंगे। उसके पश्चात् उन्नीस हजार वर्ष पर्यन्त जैन धर्म वर्त्तेगा। दूषम काल के शेष में बारह वर्षीय दो हाथ शरीर वाले प्रवर्जित, दशवैकालिक आगमधर, साढ़े तीन श्लोक प्रमाण सूरिमंत्र जाप करने वाले और उत्कृष्ट छट्ठ (बेला = दो उपवास) तप करने वाले दुप्पसह नामक आचार्य अन्तिम युग प्रधान होंगे। वे आठ वर्ष संयम पालन कर बीस वर्ष की आयु में अष्टम तप से अनशन करके सौधर्म देवलोक में पल्योपम आयु वाले एकावतारी देव उत्पन्न होंगे।

दुप्पसह आचार्य, फल्गुश्री आर्या, नागिल श्रावक और सत्यश्री श्रावका—ये अन्तिम संघ पूर्वाह्न में भारतवर्ष में अस्तंगत होंगे। मध्याह्न में विमलवाहन राजा और सुमुख मंत्री भी

(शेष होंगे) अपराह्न में अग्नि नष्ट होगी, इस प्रकार धर्म-राजनीति पाक आदिका विच्छेद होगा। इस प्रकार पाँचवाँ दूषम आरा सम्पूर्ण होगा।

तत्पश्चात् छट्ठे दु.षम दुःषम आरे के प्रवर्त्तन होने से प्रलय वायु चलेगी, विषाक्त जलधर वर्षेगे। सूर्य बारह गुणा तपेगा, चन्द्रमा अत्यन्त शीत छोड़ेगा। गंगा-सिन्धु के दोनों किनारो में वैताढ्य मूल में बहत्तर बिलों में छःखण्ड भरतवासी मनुष्य और तिर्यंच निवास करेंगे। वैताढ्य के इधर के पूर्व पश्चिम गंगा तटों पर नौ नौ बिल इसी प्रकार वैताढ्य पर भी होंगें इस प्रकार छत्तीस हुए। इसी प्रकार सिन्धु तट पर भी छत्तीस होने से कुल मिलाकर बहत्तर बिल होंगे। रथमार्ग जितने चौड़े गंगा-सिन्धु के प्रवाह-जल में उत्पन्न मच्छादि को वे विलवासी रात में निकालेंगे। दिन मे वे ताप के भय से निकालने में असमर्थ होंगे। सूर्य-किरणों से पकने पर वे उन्हे रात्रि में खावेंगे। औषधि, वृक्ष, ग्राम, नगर, जलाशय, पर्वतादि वैताढ्य ऋषभकूट को छोड़कर कहीं भी निवेश स्थान नही देखेंगे। सोलह वर्ष की स्त्री और बीस वर्ष के पुरुष पौत्र-अपौत्र देखेंगे। एक हाथ प्रमाण काली कुरूप देह, उग्र-कषाय, नग्न प्राय. नरकगामी बिलवासी इक्कीस, हजार वर्ष पर्यन्त होंगे। इस प्रकार छट्ठे आरे-अवसर्पिणी के शेष होने पर उत्सर्पिणी का पहला आरा भी ऐसा ही होगा। उसके शेष होने पर दूसरे आरे के प्रारम्भ में सात-सात दिन पाँच प्रकार के मेघ क्रमशः भारतवर्ष में वर्षेगे। जैसे कि पहला पुष्करावर्त ताप दूर करेगा, दूसरा क्षीरोद धान्योत्पत्ति करेगा, तीसरा घृतोदक स्निग्धकारी होगा, चौथा अमृतोदक औषधि उत्पन्न करेगा, पाँचवाँ रसोदक भूमि को सरस करेगा। वे बिलवासी प्रतिसमय शरीर आयु बढाते हुए पृथ्वी का सुख देखकर बिलों से बाहर निकलेंगे, धान्य और फल का भोजन करते हुए मासाहार छोड़ देंगे।

फिर मध्य देश में सात कुलकर होंगे। उन में पहला विमल-वाहन, दूसरा सुदामा, तीसरा संगत, चौथा सुपार्श्व, पाँचवाँ दत्त, छट्ठा सुमुख, सातवाँ संमुची होगा। जातिस्मरण ज्ञान के द्वारा विमलवाहन नगरादि बसावेगा। अग्नि के उत्पन्न होने पर अन्न पाक, शिल्प आदि कला से समस्त लोकव्यवहार प्रवर्त्तन करेगा। फिर नवासी पक्ष अधिक उत्सर्पिणी काल के दो आरे बीतने पर पुण्ड्रवर्द्धन देश के शतद्वार पुर में संमुइ नरपति की भद्रा देवी के चतुर्दश महास्वप्न सूचित श्रेणिक राजा का जीव रत्नप्रभा के लोलकबुद्ध पाथड़े से चौरासी हजार वर्ष की आयु पूर्ण कर उद्वर्त्त करता हुआ कुक्षी में पुत्र रूप से उत्पन्न होगा। वर्ण, प्रमाण, लांछन, आयु, गर्भापहार के अतिरिक्त पांचों कल्याणक मास, तिथि, नक्षत्रादि मेरे जैसे ही होंगे। अन्तर यह है कि वे नाम से पद्मनाभ देवसेन और विमलवाहन होंगे।

फिर दूसरे तीर्थङ्कर सुपार्श्व के जीव सुरदेव, तीसरे उदायी के जीव सुपार्श्व, चतुर्थ पोटिल का जीव स्वयंप्रभ, पाँचवें दृढायु के जीव सर्वानुभूति, छट्ठे कार्तिक के जीव देवश्रुत, सातवें संख के जीव उदय, आठवें आनंद के जीव पेढाल, नवें सुनन्द के जीव पोटिल, दशवें शतक के जीव शतकीर्त्ति, ग्यारहवें देवकी के जीव मुनि सुव्रत, बारहवें कृष्ण के जीव अमम, तेरहवें सत्यकी के जीव निष्कष्याय, चौदहवें बलदेव के जीवनिष्पुलाक, पन्द्रहवें सुलसा के जीव निर्मम, सोलहवें रोहिणी के जीव चित्रगुप्त तीर्थङ्कर होंगे। फिर कुछ लोग कहते हैं कल्कि का दत्त नामक पुत्र विक्रम संवत् १५७३ में शत्रुञ्जय उद्धार कराके जिन भवन मण्डित वसुधा करके, तीर्थङ्कर नाम कर्म उपार्जन कर स्वर्ग जाकर चित्रगुप्त नामक जिनेश्वर होंगे, यहाँ बहुश्रुतों की सम्मति प्रमाण है। सतरहवाँ रेवती का जीव समाधि, अठारहवाँ शतालि के जीव संवर, उन्नीसवें द्वीपायन के जीव यशोधर, बीसवें

कर्ण के जीव विजय, इक्कीसवे नारद के जीव मन्त्र, वाइसवें अंवड़ के जीव देव, तेइसवें अमर के जीव अनंतवीर्य, चौवीसवें शातवुद्ध के जीव भद्रकर तीर्थङ्कर होंगे।

इन्ही के अन्तराल में पश्चातुपूर्वी के जैसे वर्त्तमान जिन की भाँति तव भी बारह भावी चक्रवर्त्ती होंगे। वे इस प्रकार—१. दीर्घदन्त, २. गूढ़दन्त, ३. शुद्धदन्त, ४. श्रीचन्द, ५. श्रीभूति, ६. श्रीसोम, ७. श्रीसोम, ७. पद्म, ८. नायक, ९ महापद्म, १०. विमल, ११. अमलवाहन, १२. अरिष्ट।

नौ भावी वासुदेव इस प्रकार होंगे—१. नन्दी, २ नन्दिमित्र, ३. सुन्दरबाहु, ४. महाबाहु, ५. अतिब्रल, ६. महावल, ७. वल, ८. द्विपृष्ठ, ९. त्रिपृष्ठ।

नौ भावी प्रतिवासुदेव ये होंगे—१. तिलक, २. लोहजंघ, ३. वज्रजंघ, ४. केशरी, ५. बली, ६ प्रभराज, ७. अपराजित, ८. भीम, ९. सुग्रीव।

नौ भावी बलदेव.—१. जयन्तर, २. अजित, ३. धर्म, ४. सुप्रभ, ५. सुदर्शन, ६. आनंद, ७. नंदन, ८. पद्म, ९. संकर्षण।

अवसर्पिणी के तीसरे आरे में ६१ शलाका-पुरुष होंगे, अंतिम तीर्थङ्कर और चक्रवर्त्ती दोनों चौथे आरे मे होंगे। तव फिर मत्तंग आदि दश कल्पवृक्ष उपजेंगे। अठारह कोटा-कोटि सागरोपम का निरन्तर युगलाधर्म होगा। उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल अनन्त हो गए और उससे अनन्त गुणे भारतवर्ष मे होंगे।

इस प्रकार अन्य भी भविष्य काल का स्वरूप कह कर भगवान ने गौतम स्वामी को देवशर्म विप्र को प्रतिबोध देने के लिए किसी गाँव में इसलिए भेजा कि जिससे इनका प्रेमबंध नष्ट हो जाय।

भगवान तीस वर्ष गृहस्थावास में रहे, पक्षाधिक साढ़े बारह वर्ष छद्मस्थ और तीस वर्ष तेरह पक्ष से कुछ न्यून केवलीपर्याय

में विचर कर बहत्तर वर्ष की सर्वायु पाल कर कात्तिकी अमावस्या की रात्रि के अन्तिम प्रहार में दूसरे चन्द्र संवत्सर, प्रीतिवर्द्धन मास, नंदिवर्द्धन पक्ष, देवानन्दा रात्रि, उपशम दिन, नागकरण, सर्वार्थसिद्ध मुहूर्त्त, स्वाति नक्षत्र में पर्यङ्कासन कृत स्वामी को शक्र ने विनति की—भगवन् ! दो हजार वर्ष स्थिति वाला भस्मराशि नामक तीसवाँ ग्रह अति नीचात्मा आपके जन्म नक्षत्र पर वर्त्तमान में आ रहा है, अतः मुहूर्त्त भर प्रतीक्षा करें जिससे उसकी दृष्टि टल जाय ! अन्यथा आपके तीर्थ में चिरकाल पीड़ा होगी ! भगवान ने कहा—हे इन्द्र ! हम पृथ्वी का छत्र ओर मेरु का दण्ड करके क्षण-मात्र में स्वयंभूरमण समुद्र को पार कर लोक को अलोक में फैंकने में समर्थ हैं पर आयु कर्म को बढ़ाने या घटाने में समर्थ नहीं। जो अवश्यंभावी भाव है, उनका व्यतिक्रम नहीं, तो फिर दो हजार वर्ष पर्यन्त अवश्यंभावी तीर्थ पीड़ा है। स्वामी ने पचपन अध्ययन कल्याणफल विपाक के और पचपन पापफल विपाक के कह कर छत्तीस अपृष्ट उत्तर कह कर प्रधान नामक अध्ययन कहते हुए शैलेसी करण द्वारा योग निरोध करके अनन्तपंचक-युक्त अकेले सिद्धि प्राप्त हुए। अनंतज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सम्यक्त्व, अनंत आनंद, अनन्त वीर्य—ये अनन्तपंचक हैं।

उस समय उद्धार न किये जा सकें ऐसे कुन्थुओं—सूक्ष्म जीवों की उत्पत्ति देख कर आज से संयम दुराराध्य होगा, ज्ञात कर बहुत से श्रमण और श्रमणियों ने अनशन कर दिया। अन्य भी काशी कोशल देश के नौ मल्ल और नौ लिच्छवी—अठारह गण राजाओं ने अमावस्या के पौषधोपवास पाड़ कर भवोद्योत के जाने पर द्रव्योद्योत करेंगे ऐसा विचार कर रत्नमय दीपकों से उद्योत किया। कालक्रम से अग्निदीपक होने लगे, इस प्रकार दीपावली पर्व हुआ। देवों और देवियों के आने जाने से वह रात्रि उद्योतमय कोलाहल पूर्ण हो गई। भगवान के शरीर का देवों ने सत्कार

किया। भस्मराशि की पीड़ा के प्रतिघात के लिए देव मनुष्य गौ आदि की निराजना—पूजा की, उससे वृषभादि की पूजा प्रचलित हुई।

फिर गौतम स्वामी उस द्विज को प्रतिबोध दे कर भगवान् को वन्दना करने के लिए लौटे तो देवों के संलाप में—भगवान को काल प्राप्त हुए सुना। उन्हे सुष्ठुतर अधृति हुई—अहो! मुझ भक्त पर भी स्वामी निस्नेही हो गए जो मुझे अन्त समय में भी समीप नहीं रखा। वीतरागों का कहाँ स्नेह होता है? इस श्रुत को ज्ञात कर प्रेमबन्धन को तोड़ कर वे तत्क्षण केवली हो गए। शक्रेन्द्र ने कार्त्तिक शुक्ल प्रतिपदा के प्रातःकाल केवलज्ञान की महिमा की। भगवान् गौतम स्वामी को सहस्रदल वाले कनक कमल पर विराजमान कर पुष्प पगर करके सामने अष्ट मङ्गल आलेखित किए और देशना सुनी। तब से आज भी प्रतिपदा का महोत्सव जनता में प्रवृत्त है। सूरिमन्त्र गौतम स्वामी प्रणीत है, अतः उसके आराधक आचार्यगण गौतम केवलोत्पत्ति होने से उसी दिन समवशरण में अक्षन्हवण-पूजन करते हैं। श्रावक लोग भी भगवंत के अस्तंगत होने पर श्रुतज्ञान ही सर्व विधि में प्रधान ज्ञात कर श्रुत ज्ञान की पूजा करते है। भगवान के ज्येष्ठ भ्राता नन्दिवर्द्धन राजा ने भगवान को मोक्ष प्राप्त हुए सुन कर अत्यन्त शोक करते हुए प्रतिपदा के दिन उपवास किया। कार्त्तिक शुक्ल २ के दिन बहिन सुदर्शना ने समझा-बुझा कर अपने घर बुलाकर उन्हें भोजन कराया, ताम्बूल वस्त्रादि दिए। तब से भाई बीज या "भैया दूज" का पर्व रूढ-प्रचलित हुआ। इस प्रकार दीपोत्सव की स्थिति हुई।

जो दीपोत्सव में चतुर्दशी-अमावस्या को कोडी सहित उपवास कर अष्टप्रकारी पूजा से श्रुतज्ञान की पूजा कर पचास हजार के परिवार युक्त गौतम स्वामी को स्वर्णकमल में स्थापित कर प्रति-

दिन पचास हजार चावल सब मिला कर बारह लाख चावल चौबीस पाटों पर चढ़ा कर उस पर अखण्ड दीपक जला कर गौतम स्वामी की आराधना करते हैं वे परमपद-सुख-लक्ष्मी प्राप्त करते हैं। दीवाली की अमावस्या को नन्दीश्वर तप प्रारम्भ करना चाहिए। उसदिन नन्दीश्वर पट पूजा पूर्वक उपवास करके वार्षिक सात वर्ष या यावत् अमावस्या को उपवास करके वीरकल्याणक अमावस्या का उद्यापन करना चाहिए। वहाँ नन्दीश्वर द्वीप के बावन जिनालय में शक्रेन्द्र-न्हवणादि पूजा करके नन्दीश्वर पट के आगे दर्पण संक्रान्त जिन-बिम्बों में न्हवणादि कर बावन प्रकार के पक्वान्न नारंग, जंबीर, कदली फलादि, नारियल, सुपारियाँ, पत्ते, इक्षुयष्टि (गन्ने), खर्जूर, द्राक्षा, वरसोलक, उतृप्ति, आकय, खुरमा आदि के थाल और दीपक आदि (चढ़ाकर) बावन कंचुली तम्बोलादि दान पूर्वक श्राविकाओं को देनी चाहिए। दीपोत्सव के बिना अन्य अमावस्या को भी नन्दीश्वर तप प्रारंभ किया जाता है।

पुनरपि सम्प्रति महाराजा ने आर्य सुहस्तिसूरि से पूछा—भगवन्! इस दिवाली पर्व पर विशेष प्रकार से घरों की सजावट-श्रृंगार, विशिष्ट अन्न वस्त्रादि का परिभोग, परस्पर जुहार करना—यह जनता में किस कारण से दिखाई पड़ रहा है? तब आर्य सुहस्तिसूरि ने इस प्रकार प्रत्युत्तर दिया:—

पूर्वकाल में एक वार उज्जयिनी पुरी के उद्यान में श्रीमुनिसुव्रत स्वामी के शिष्य श्री सुव्रताचार्य समौशरे। उन्हें वन्दना करने के लिए श्री धर्मराजा गया। नमुचि मंत्री भी वहाँ गया उसे आचार्य महाराज के साथ विवाद करते हुए एक क्षुल्लक मुनि ने पराजित कर दिया।

राजा के साथ वह घर चला गया और रात्रि में मुनि को मारने के लिए नंगी तलवार लेकर उद्यान में गया। देवता ने उसे

स्तम्भित कर दिया। प्रातःकाल विस्मित राजा ने क्षमा-याचना करवा के उसे छुड़ा दिया। वह लज्जित हो कर हस्तिनापुर चला गया। वहाँ पद्मोत्तर राजा राज्य करते थे, ज्वाला देवी उनकी पटरानी थी। उनके दो पुत्र विष्णुकुमार और महापद्म थे। ज्येष्ठ पुत्र की अनिच्छा होने से पिता ने महापद्म को युवराज पद दिया। नमुचि उसका मंत्री बना। मन्त्री ने युद्ध में सिंहरथ राजा को जीत लिया। महापद्म सन्तुष्ट हुए, वर देने लगे तो उसे अस्वीकृत कर दिया। एक वार ज्वालादेवी ने अर्हन्त भगवान की रथयात्रा करवायी। उसकी सपत्नी लक्ष्मीदेवी ने जो मिथ्यादृष्टि थी, ब्रह्मरथ यात्रा करवायी। प्रथम रथ निकालने के विषय में दोनों हो राणियों के विवाद हो गया। राजा ने दोनों ही रथों को वापस लौटा दिया। माता का अपमान देख कर महापद्म देशान्तर चला गया। क्रमशः मदनावली के साथ विवाह कर भारत के छः खण्ड साधकर गजपुर आया। पिता ने राज्य दे दिया और पद्मोत्तर राजा ने विष्णुकुमार के साथ सुव्रताचार्य के पास दीक्षा ले ली। पद्मोत्तर मुक्त हो गए, विष्णुकुमार को छः हजार वर्ष तप करते हुए अनेक लब्धियाँ उत्पन्न हुई। महापद्म चक्रवर्त्ती ने पृथ्वी को जिन-भवनों से मण्डित कर रथयात्राएँ कराके माता का मनोरथ पूर्ण किया।

चक्री प्रदत्त वर को अस्वीकृत करने वाले नमुचि ने यज्ञ करने के लिए राज्य मांगा। उस सत्यप्रदत्त राजा ने उसे राज्य दे दिया और स्वयं अन्तःपुर में रहने लगे। उस समय विचरण करते हुए सुव्रताचार्य हस्तिनापुर में वर्षावास स्थित थे। सभी पाखण्डी लोग अभिनव राजा को देखने आये किन्तु सुव्रताचार्य नहीं पधारे। तव क्रुद्ध हो नमुचि ने कहा—"मेरी भूमि पर तुम्हें सात दिन से अधिक नहीं रहना चाहिये, अन्यथा मैं मार दूंगा, क्योंकि तुम मुझे देखने नहीं आये!"

आचार्य महाराज ने संघ की सम्मति लेकर एक आकाशगामी विद्यासंपन्न मुनि को आदेश दिया कि—मेरु चूला पर रहे हुए विष्णुकुमार मुनि को बुला लाओ। उसने विज्ञप्ति की—भगवन्! मेरी जाने की शक्ति है किन्तु वापस लौटने की नहीं। गुरु महाराज ने कहा—"वेही तुम्हें ले आवेंगे! तब वह मुनि मेरु चूला पर गए। महर्षि को वन्दन कर सारा स्वरूप निवेदन किया। वे तत्क्षण उस साधु को लेकर आकाश में उड़े। गजपुर आकर राजकुल में पहुँचे। नमुचि को छोड़ कर सभी ने उन्हें वन्दना की। नमुचि ने पहचान लिया और बोला—"साधुओं को ठहरने नहीं दूंगा!"

विष्णुकुमार ने तीन पग प्रमाण भूमि माँगी, उसने दे दी और बोला—तीन पग से बाहर देखूंगा तो मार दूंगा! तब विष्णु ऋषि एक लाख योजन शरीर वाले बन गए। वे किरीट-कुण्डल-गदा-चक्र और धनुष धारी थे, उनके पाँव-प्रहार से पृथ्वी काँपने लगी। समुद्र क्षुब्ध हो गए। फुंकार से विद्याधर भग गए। नदियाँ उत्पथ प्रवृत्त हो गई। तारे घूमने लगे, कुलगिरि डोलने लगे। मुनि पूर्वापर समुद्र पर दोनों पाँव रख कर तीसरा पाँव नमुचि के शिर पर देने को खड़े थे, तब इन्द्र ने अवधिज्ञान से जान कर सुराङ्गनाओं को भेजा। वे कानों के पास रही हुई मधुर स्वर से शान्तिगर्भित उपदेश-गीत गाने लगी। और चक्रवर्त्ती आदि भी यह व्यतिकर ज्ञात कर उन्हें प्रसन्न करने के लिए पाँवों में गिर पड़े। तब महर्षि प्रकृतिस्थ हो शान्त हो गए। चक्रवर्त्ती और संघ ने क्षमा मांगी। चक्रवर्त्ती ने दयापूर्वक नमुचि को विष्णुकुमार से छुड़वाया।

उस समय वर्षाकाल के चौथे मास का पक्ष-सन्धि दिन था, उस उत्पात के शान्त होने पर लोक अपना पुनर्जन्म मानते हुए परस्पर 'जुहार' करने लगे। विशिष्टतर मण्डन, भोजन-छादन-ताम्बूल-

दि परिभोग में प्रवृत्त हुए तव से इस दिन प्रति वर्ष वे ही व्यवहार प्रवर्त्तते हैं। विष्णुकुमार तथा महापद्म चक्रवर्ती समय पर केवली होकर सिद्ध हुए।

इस प्रकार दश पूर्वधर आर्य सुहस्तिसूरि के मुख से सुन कर महाराजा सम्प्रति पर्व-दिवसों में विशेप प्रकार से जिन-पूजारत रहता था।

पूर्व काल में मध्यमा पापा का नाम अपापापुरी था। शक्रेन्द्र ने 'पावापुरी' यह नाम किया, क्योंकि यहाँ महावीर स्वामी का निर्वाण हुआ।

इसी पावापुरी में वैशाख सुदि ११ के दिन जृंभिक गाँव से बारह योजन आकर पूर्वाह्ण समय महासेन वन में भगवान ने ने पण्डितगणों से परिवृत और प्रमुदित गौतमादि गणधरों को दीक्षा दी। उन्हें गणानुज्ञा दी। उन्होंने तीन निपद्या में उत्पाद, विगम, ध्रौव्य लक्षण त्रिपदी स्वामी से पाकर तत्क्षण द्वादशाङ्गी रचना की। इसी नगरी में भगवान के कानों से सिद्धार्थ वणिक के उपक्रम से खरक वैद्य ने काष्ठ-शलाका निकाली। उसके निकालने पर अत्यन्त वेदनावश भगवान ने चीत्कार किया, उससे प्रत्यासन्न पर्वत में दरार पड़ गई। आज भी वहाँ वीच में सन्धि-मार्ग दिखायी पड़ता है। तथा इसी पुरी में कार्त्तिक अमावस्या की रात्रि में भगवान के निर्वाण के स्थान पर मिथ्यादृष्टि लोग श्री वीर-स्तूप स्थान पर स्थापित नागमण्डप में आज भी चातुर्वर्णिक लोग यात्रा महोत्सव करते हैं। उसी एक रात्रि में देवानुभाव से कुएँ से लाये हुए जल से पूर्ण सराव में तेल विना दीपक प्रज्वलित होता है।

इन पूर्वोक्त अर्थों की भगवान ने इसी नगर में व्याख्या की थी। यहीं भगवान सिद्धि सम्प्राप्त हुए थे, इत्यादि अत्यद्भुत भूत संविधान स्थान पावापुरी महातीर्थ है।

दीपोत्सव की उत्पत्ति कथन से रमणीय यह पावापुरीकल्प श्री देवगिरि नगर में स्थित श्रीजिनप्रभसूरि ने बनाया। विक्रम संवत् १३८७ के भाद्रपद कृष्ण पुष्यार्क युक्त द्वादशी को यह स्वस्तिकर कल्याणकारी कल्प समर्थित हुआ।

यह अपापा या दीपोत्सव कल्प समाप्त हुआ।

इसकी ग्रंथ-श्लोकसंख्या ४१६ और अक्षर ७ ऊपर है।

●

२२. कन्यानयनीय महावीर प्रतिमा-कल्प

मेरु पर्वत के सदृश धीर, अमित गुण समूह वाले श्री महावीर जिनेश्वर को नमस्कार करके कण्णाणय नगर स्थित उनकी प्रतिमा का कल्प कुछ कहूँगा।

चोल देशावतंश कन्नाणय नगर में विक्रमपुर वास्तव्य, प्रभु श्री जिनपति सूरिजी के चाचा साहु माणदेव द्वारा कारापित और सं० १२३३ आषाढ शुक्ल १० गुरुवार के दिन हमारे पूर्वाचार्य श्री जिनपत्ति सूरिजी द्वारा प्रतिष्ठित, मम्माण शैल समुद्गत, ज्योतिर्मय, सुघटित, तेईस पर्वाङ्गुल प्रमाण श्री महावीर-प्रतिमा थी जो नख सूक्ति लगने पर भी घण्ट की भाँति टंकार-शब्द करती थी। वह स्वप्नादेश से अनकवाला नामक पृथ्वी धातु विशेष संस्पर्श सन्निहित प्रातिहार्ययुक्त श्रावकसंघ से चिर पूजित थी। यावत् विक्रमादित्य सं० १२४८ में चौहान-कुलप्रदीप श्री पृथ्वीराज

नरेन्द्र का सुलतान सहावुद्दीन द्वारा निधन होने पर राज्यप्रधान परमश्रावक सेठ रामदेव ने श्रावकसंघ को लेख भेजा कि—तुर्कों का राज्य हो गया, अतः श्री महावीर स्वामी की प्रतिमा को प्रच्छन्न रखा देना। तब श्रावकों ने दाहिन कुल मंडन मण्डलीक कयंवास (कैमास) नामाङ्कित "कयंवास स्थल" में विपुल बालु के टीवों में रख दी, जो वहाँ रही।

विक्रम सं० १३११ में अत्यन्त दारुण दुर्भिक्ष में निर्वाह न होने होने से आजीविका के लिए 'जोजओ' नामक सुथार कन्नाणय से सुभिक्ष देश के प्रति सपरिवार चला। प्रथम प्रयाण थोड़ा करना, ऐसा सोचकर उसने कयंवास स्थल में रात्रिवास किया। आधीरात के समय देवता ने उसे स्वप्न दिया कि—तुम जहाँ सोये हुए हो उसके इतने हाथ नीचे भगवान महावीर की प्रतिमा है, तुम देशांतर मत जाओ, तुम्हारा यही निर्वाह हो जायगा। उसने संभ्रम पूर्वक जग कर अपने पुत्रादि से उस स्थान को खुदवाया और महावीर स्वामी की प्रतिमा देखी तो प्रसन्नतापूर्वक नगर में जाकर श्रावकसंघ को निवेदन किया। श्रावकों ने महोत्सवपूर्वक परमात्मा महावीर को चैत्यगृह में प्रवेश कराके स्थापित किया। त्रिकाल पूजा होने लगी। अनेक बार तुर्कों के उपद्रव से मुक्त रहे। उस सुथार के लिए श्रावकों ने वृत्ति-निर्वाह कर दिया। प्रतिमा का परिकर खोजने पर भी प्राप्त नहीं हुआ, वह कहीं स्थल-धोरों के बीच रहा हुआ है। उस पर प्रशस्ति-संवत्सरादि भी लिखे हुए होने की संभावना है।

एक दिन न्हवण कराने के पश्चात् भगवान के शरीर पर पसीना छूटते देखा। वार-वार पोंछने पर भी जब न रुका तो विदग्ध श्रावकों ने जाना कि—यहाँ कोई अवश्य उपद्रव होगा। दूसरे दिन प्रभात में जट्ठुअ राजपूतों की धाड़ आई, सारा नगर विध्वस्त हुआ। इस प्रकार प्रकट-प्रभावी स्वामी यावत् संवत्

१३८५ पर्यन्त वहाँ पूजे गए। उस वर्ष (सं० १३८५ में) अल्लविय वंशोत्पन्न आसी नगर (हांसी) के सिकन्दर ने घोर परिणाम पूर्वक श्रावक और साधुओं को बंदी बनाकर विडंवित किया। भगवान पार्श्वनाथ की प्राषाण-प्रतिमा का भंग हुआ। भगवान महावीर स्वामी की प्रतिमा को वह अखण्ड रूप से गाड़ी पर चढ़ा कर दिल्ली लाया और तुगलकाबाद स्थित सुलतान के भण्डार में यह सोच कर रखा कि सुलतान के आने पर जैसी आज्ञा देंगे, वैसा किया जायगा। कालक्रम से जब सुलतान मुहम्मद देवगिरिनगर (दौलताबाद) से दिल्ली-योगिनीपुर आया तब पन्द्रह मास पर्यन्त भगवान तुर्कों के यहाँ बंदी रहे।

अन्यदा बाह्य जनपद विहार में विचरते हुए खरतर गच्छालङ्कार श्रीजिनसिंहसूरिजी के पट्ट प्रतिष्ठित श्री जिनप्रभसूरिजी दिल्ली के शाखानगर में पधारे। क्रमशः शाही राजसभा में पंडित-गोष्ठी प्रस्तुत होने पर राजाधिराज के द्वारा—कौन विशिष्ट पण्डित है ? ऐसा पूछने पर ज्योतिषी धाराधर ने उन (श्रीजिनप्रभसूरि) की गुण-स्तुति आरम्भ की। महाराजा (सुलतान) ने उसे ही भेज कर बहुमानपूर्वक मिति पोष शुक्ल २ के सन्ध्या समय सूरि-महाराज को बुलाया। महाराजाधिराज से भेंट हुई। अत्यन्त निकट बैठाकर कुशल वार्त्तादि पृच्छा की और अभिनव काव्य द्वारा सुलतान ने सूरिजी से आशीर्वाद प्राप्त किया। आधी रात पर्यन्त एकान्त गोष्ठी कर रात्रि में वहीं पर सुलाये। प्रातःकाल फिर सूरि महाराज को बुलाया। महानरेन्द्र सुलतान ने सन्तुष्ट होकर एक हजार गायों का मूल्य, प्रधान उद्यान, सौ वस्त्र, सौ कम्बल और अगुरु चन्दन, कर्पूरादिगन्ध द्रव्य देने लगा। गुरु महाराज ने—साधुओं को ये नहीं कल्पता—ऐसा समझाकर महाराजा को सर्व वस्तु का प्रतिषेध किया। फिर महाराजाधिराज के अप्र-

तीति न हो, इसलिए कुछ कम्बल-वस्त्र-अगुरु आदि राजाभियोग से स्वीकार किये। वहाँ नाना देशों से आये हुए पण्डितों के साथ वाद-गोष्ठी करा के दो हाथी मँगवाये। एक पर गुरु महाराज को और दूसरे पर श्रीजिनदेवसूरि को बैठाकर आठ शाही मदनभेरी बजाते, शंखध्वनि, मद्दल, कंसाल, ढोल आदि वादित्र-शब्दों के साथ भट्टविरुदावली पढते हुए, चारों वर्ण एवं चतुर्विध संघ सहित सूरि-महाराज को पौषधशाला भेजा। श्रावकों ने प्रवेशमहोत्सव किया, महादान दिया।

बादशाह ने समस्त श्वेताम्बर संघ को उपद्रव से रक्षण करने की क्षमता वाला फरमान पत्र समर्पित किया और गुरु महाराज के प्रतिच्छंद में उसे चारों दिशाओं में प्रेषित किया। शासनोन्नति हुई। अन्यदा सूरिमहाराज ने श्री शत्रुञ्जय-गिरनार-फलवर्द्धि आदि तीर्थो की रक्षा के हेतु फरमाना मांगा। बादशाह ने तत्काल सार्व-भौम फरमान दिया और उन्हे सर्व तीर्थो में भेजा गया। राजा-धिराज ने प्रसन्नतापूर्वक गुरु महाराज के वचनों से अनेक वन्दियों को मुक्त किया। फिर सोमवार के दिन वर्षान्त के समय जाकर सुलतान से भेंट की। कीचड़ से भरे हुए गुरु-महाराज के पाँवों को महाराजाधिराज ने मल्लिक काफूर के पास उत्तम वस्त्र खण्ड से पौछाये। गुरु महाराज के आशीर्वाद देने और वर्णन काव्य की व्याख्या करने पर महानरेन्द्र सुलतान के चित्त में अत्यन्त चमत्कार उत्पन्न हुआ। अवसर ज्ञात कर समस्त स्वरूप कथन पूर्वक भग-वान महावीर स्वामी की प्रतिमा माँगी। एक छत्र पृथ्वीपति ने सुकुमार गोष्ठी करके वह प्रतिमा उन्हें प्रदान की। तुगलकाबाद शाही कोप से मँगाकर असूअग मल्लिकों के कन्धे दिलाकर सकल सभा के समक्ष अपने सामने मँगाकर दर्शन करके गुरु महाराज को समर्पित की। फिर महोत्सव-प्रभावना पूर्वक सुखासन में विराज-मान कर समस्त संघ ने मलिक ताजदीन सराय के चैत्य में प्रवेश

कराके स्थापित किया। गुरु महाराज ने वासक्षेप किया, प्रभु महापूजाओं से पूजे जाते हैं।

फिर सुलतान-महाराजाधिराज के आदेश से श्रीजिनदेवसूरि को अपने स्थान पर दिल्ली-मण्डल में स्थापित कर गुरु महाराज क्रमशः महाराष्ट्र मण्डल पधारे। राजाधिराज ने श्रावकसंघ सहित उन्हें वृषभ, ऊँट, घोड़े, हथिनी, सुखासनादि सामग्री दी। मार्ग के नगरों में प्रभावना करते हुए पद पद पर संघ के द्वारा सम्मान पाते हुए, अपूर्व तीर्थादि की वन्दना करते हुए, क्रमशः सूरिजी देवगिरि नगर पहुँचे। संघ ने प्रवेशमहोत्सव किया, संघपूजा हुई।

संघपति जगसीह, साहण, मल्लदेव प्रमुख संघ के साथ प्रतिष्ठानपुर में जीवंत स्वामी श्री मुनिसुव्रत-प्रतिमा की यात्रा की।

पीछे विजय करके दिल्ली जाने पर महाराजा से श्री जिनदेवसूरि मिले. बहुमान दिया और एक सराय दी जिसका नाम सुलतान सराय स्थापित किया। वहाँ चार सौ श्रावकों के कुल को निवास करने के लिए आदेश दिया। कलिकाल चक्रवर्त्ती-सुलतान ने वहाँ पौषधशाला व चैत्य बनवाया। उन्हीं भगवान महावीर स्वामी (प्रतिमा) को वहाँ स्थापित किया। वहाँ श्वेताम्बर भक्त, दिगम्बर भक्त श्रावक और परतीर्थिक लोग भी त्रिकाल पूजा करते हैं।

श्री महम्मदशाह द्वारा की हुई शासनोन्नति देखकर इस पंचमकाल को भी लोग चतुर्थ काल की कल्पना करते हैं। क्लेश नष्ट करने वाले श्री वीर जिनेश्वर की उपद्रव नाशक जनमननयनानन्दन प्रतिमा जहाँ तक चन्द्र-सूर्य हैं, जयवन्त हो।

कन्नाणयपुर के श्री महावीरप्रतिमा का यह कल्प आचार्य श्री जिनसिंहसूरि के शिष्य मुनीश्वर ने लिखा है।

श्री कन्यानयनीय महावीर प्रतिमा का यह कल्प संपूर्ण हुआ। इस की ग्रन्थ संख्या ७७ और १५ अक्षर हैं।

■

२३. प्रतिष्ठान पत्तन-कल्प

महाराष्ट्र रूपी लक्ष्मी के रत्नापीड़, रम्य हवेलियों और नेत्रों को शीतल करने वाले चैत्यों से युक्त गोदावरी से पवित्रित श्री-प्रतिष्ठान नामक पत्तन जयवंत रहे।

यहाँ अड़सठ लौकिक तीर्थ और बावन वीर है। वीर क्षेत्र होने के कारण यहाँ सूर्य के समान प्रौढप्रणाली राजाओं का भी प्रवेश नहीं होता।

रात्रि बीतने पर उषाकाल में यहाँ से साठ योजन चल कर अश्व को प्रतिबोध करने के लिए श्री मुनिसुव्रत जिनेश्वर भरोंच पधारे थे।

भगवान महावीर के निर्वाण से ९९३ वर्ष बीतने पर यहाँ श्री कालिकाचार्य ने सांवत्सरिक पर्व भाद्रपद शुक्ल ४ को किया।

यहाँ के आयतनों की पंक्ति को देखकर विचक्षण पुरुष देव-विमान में अग्रणी श्री विलोकविमान को देखने का कौतुहल त्याग देते है।

यहाँ शातवाहन आदि विचित्र चरित्र वाले नरेश्वर हुए हैं एवं यहाँ के अनेकों सदन बहुत प्रकार के देवताओं से अधिष्ठित हैं।

यहाँ राजा के अनुरोध से कपिल, आत्रेय, बृहस्पति और पांचाल ने अपने बनाये हुए चार लाख श्लोक परिमित ग्रन्थों को एक श्लोक में प्रस्तुत किया था। वह श्लोक यह है—

"जीर्णे भोजनमात्रेय: कपिल: प्राणिनां दया।
वृहस्पतिरविश्वास: पञ्चाल स्त्रीषु मार्दवम्॥"

जीर्ण होने पर भोजन करना आत्रेय का, कपिल का प्राणियों पर दया करना, विश्वास न करना बृहस्पति का एवं स्त्रियों से कोमल व्यवहार करना पांचाल का सिद्धान्त है।

यहाँ दृष्टि से अमृत वर्षाने वाली सम्यग्दृष्टि मयूरों के लिए पयोद घटा के सदृश श्री मुनिसुव्रत स्वामी की लेप्यमयी जीवित्त स्वामी प्रतिमा जयवंत है। उसको उस समय ग्यारह लाख अठावन हजार आठ सौ छप्पन वर्ष हो गये।

यहाँ मुनिसुव्रत-जिनालय की यात्रार्थ आकर विविध पूजा करते भव्य जन ऐहिक और पारलौकिक सुख संपत्ति प्राप्त करते है।

इस प्रासाद में अन्य जिनेश्वरों के साक्षात् कान्ति वाले लेप्यमय विम्व सुशोभित्त हैं जो मनुष्यों की प्रीति में वृद्धि करते हैं।

अम्बादेवी, क्षेत्रपाल, यक्षाधिपत्ति कर्पादि इस चैत्य में वसते हुए श्रीसंघ के उपसर्गो को नष्ट करते हैं।

यहाँ देवताओं के समूह से हर्षपूर्वक वंद्यमान प्राणि-समूह का उपकार करने के व्रतवाले चैत्य लक्ष्मी के भूषण श्री मुनिसुव्रत भगवान आपका सदा कल्याण करने वाले हों।

सत्पुरुषों की सम्पत्ति के लिए श्री जिनप्रभसूरि ने श्री प्रतिष्ठान तीर्थ का यह कल्प बनाया।

श्री प्रतिष्ठान पत्तन कल्प के ग्रंथाग्र १९ और अक्षर १५ परिमित है।

■

२४. नन्दीश्वरदीप-कल्प

इन्द्रादि द्वारा पूजित चरणों वाले श्री जिनेश्वरों की आराधना करके विश्वपावन श्री नन्दीश्वर द्वीप का कल्प कहता हूँ (१)। नन्दीश्वर स्वर्ग के समान आठवाँ द्वीप है, जो नन्दीश्वर नामक समुद्र से घिरा हुआ है (२)। यह गोलाई विष्कंभ से तेसठ कोटा-कोटि और चौरासी लाख योजन है (३)। ये विविध विन्यास युक्त उद्यानों वाली देव-भोगभूमि है और जिनेश्वर भगवान की पूजा के हेतु देवों के आवागमन से सुन्दर है (४)। इसके मध्यप्रदेश में क्रमशः पूर्वादि दिशाओं में अंजन वर्ण वाले चार अंजन गिरि है (५)। वे दश हजार योजन विस्तार भूमि और हजार योजन ऊँचे छोटे मेरुओं सहित है (६)। वहाँ पूर्व में देवरमण, दक्षिण में नित्योद्योत, पश्चिम में स्वयंप्रभ और उत्तर में रमणीय (नामक) है (७)। उन पर सौ योजन लम्बे और उससे आधे चौड़े व बहत्तर योजन ऊँचे अर्हत् चैत्य है (८)। चारों के पृथक् पृथक् द्वार सोलह योजन ऊँचे है उनका प्रवेश आठ योजन है (९)। वे देव, असुर, नाग आदि देवताओं के आश्रय से उन्हीं के नामों से प्रसिद्ध है (१०)। उनमें सोलह योजन लंबी उतनी ही चौड़ी और आठ योजन ऊँची मणिपीठिकाएँ है (११)। पीठिकाओं पर सर्वरत्नमय देवछंदक है जो पीठिकाओं अधिक लंबे और ऊँचे है (१२)। उनमें ऋषभ, वर्द्धमान, चन्द्रानन और वारिषेण नामक पद्मासन संस्थित स्व स्वपरिवार युक्त प्रत्येक की १०८ रत्नमय शास्वत अर्हन्त प्रतिमाएँ है (१३-१४)। दो-दो नागयक्ष भूतों की कुण्डलधारिणी प्रतिमाएँ पृथक् पृथक् हैं, प्रतिमाओं के पीछे एक एक छत्रधारिणी प्रतिमाएँ है (१५)। उनमें धूप घटी पुष्पमाला, घण्टा, अष्टमङ्गल, ध्वजा, छत्र, तोरण, चंगेरी, पटल आसन है (१६)। पूर्ण कलशादि सोलह अलङ्करण है, वहाँ की भूमियाँ सोने चाँदी की वालुकामय

है (१७)। आयतन के प्रमाण से रुचिर मुख्य मण्डप, प्रेक्षामण्डप, अक्षवाटक और मणि पीठिकाएँ हैं (१८)। रम्य स्तूप प्रतिमाएँ और सुन्दर चैत्य वृक्ष हैं, इन्द्रध्वज और दिव्य पुष्करिणियाँ यथा क्रम हैं (१९)। चतुर्द्वार स्तूपों में सब में सोलह सोलह प्रतिमाएँ हैं, इस प्रकार वे एक सौ आठ युक्त चौबीस सौ हो जाती हैं (२०)। प्रत्येक अञ्जनगिरि के चारों दिशाओं में लक्ष योजन जाने पर बिना मत्स्य वाले स्वच्छ जल युक्त हजार योजन ऊँची, लाख योजन विस्तीर्ण सोलह पुष्करिणी है जिनके नाम क्रमशः इस प्रकार है (२१-२२)। १. नन्दिषेणा, २. अमोघा, ३. गोस्तूपा, ४ सुदर्शना, ५. नन्दोत्तरा, ६. नन्दा, ७. सुनन्दा, ८. नन्दिवर्द्धना, ९ भद्रा, १०. विशाला, ११. कुमुदा, १२ पुण्डरीकिणी, १३. विजया, १४. वैजयन्ती, १५. जयन्ती, १६ अपराजिता। (२३-२४)

इनकी प्रत्येक की लम्बाई और चौड़ाई पाँच सौ-पाँच योजन है (२५)। लाख-लाख योजन लम्बे महा उद्यान है जिनके अशोक, सप्तपर्ण, चम्पक, आम्र आदि नाम हैं। (२६)

पुष्करिणीयों के मध्य में स्फटिक के पल्यमूर्त्ति वाले ललाम वेदी उद्यानादि चिह्न युक्त दधिमुख पर्वत है (२७)। वे चौसठ हजार योजन ऊँचे और एक हजार योजन ऊपर की अवगाहना वाले और नीचे से दश हजार योजन विस्तृत हैं (२८)। पुष्करिणियों में दो-दो रतिकर पर्वत हैं, वे सब मिलाकर सोलह पुष्करिणियों के बत्तीस रतिकर पर्वत हो जाते हैं (२९)। उन दधिमुख और रतिकर पर्वतों पर अञ्जनगिरि के समान ही शाश्वत अर्हत् चैत्य हैं (३०)।

द्वीप की चारों विदिशाओं में तथा रतिकर पर्वत जो दश हजार योजन विस्तारवाले और एक हजार योजन ऊँचे हैं। वे सब रत्नमय, दिव्य और झल्लरी के आकार वाले हैं (३१-३२)। दक्षिण के दो रतिकर पर्वतों पर शक्र और ईशानेन्द्र के एवं उत्तर दिशाओं में पृथक्-पृथक् भुवन आठ दिशाओं में आठ महादेवियों की राज-

धानियाँ है। वे लाख योजन लम्बी-चौड़ी और जिनायतनोंसे भूषित हैं। (३३-३४)

उनके नाम क्रमशः १. सुजाता, २. सौमनसा, ३. अर्चिमाली, ४. प्रभाकरा, ५. पद्मा, ६. शिवा, ७. शुचि, ८. अंजना, ९. चूता, १०. चूतावतंशिका, ११. गोस्तूपा, १२. सुदर्शना, १३. अमला, १४ अप्सरा, १५. रोहिणी, १६. रत्ना, १७. रत्नोच्चया, १८ सर्व-रत्नसंचया, १९. वसु, २० वसुमित्रिका, २१. वसुभागा, २२. वसु-न्धरा, २३. नन्दोत्तरा, २४. नन्दोतर कुरु, २५. देवकुरु, २६. कृष्णा, २७. कृष्णरात्रि, २८. रामा रामरक्षिता (३५-३६-३७-३८) हैं।

सर्व ऋद्धिवाले सपरिच्छद देवगण श्री तीर्थंकर-अर्हन्तों की पुण्यतिथियों में उन चैत्यों में अष्टाह्निका महोत्सव करते है (३९)।

पूर्व के अञ्जनगिरि पर चार द्वार वाले जिनालय में शास्वती प्रतिमाओं का शक्र अष्टाह्निकोत्सव करते हैं (४०)। उस पर्वत की चार दिशाओं में रहे हुए स्फटिक के चार दधिमुख पर्वतों पर महा-वापियों में स्थित चैत्यों में शक्र के चार दिग्पाल शास्वती अर्हत् प्रतिमाओं का यथाविधि अष्टाह्निकोत्सव करते हैं (४१-४२)। ईशानेन्द्र तो उत्तरदिशा के अञ्जनाद्रि पर महोत्सव करते हैं। और उनके लोकपाल उसी दिशा की वापियों में रहे हुए दधिमुख पर्वत पर अष्टाह्निकोत्सव करते हैं (४३)। दक्षिण दिशा के अञ्जन-पर्वत पर चमरेन्द्र और उसके चारों ओर दधिमुख पर्वत पर उनके चार दिग्पाल अष्टाह्निकोत्सव करते हैं (४४)।

पश्चिम दिशाके अञ्जन पर्वत पर बलीन्द्र और चारों ओर की वापी के दधिमुख पर्वतों पर उनके दिग्पाल महोत्सव करते हैं। (४५)

दीपावली के दिन से प्रारंभ करके वर्षपर्यन्त कुहू तिथि में नन्दीश्वर द्वीप की उपासना करते हुए भव्यजन दान योग्य-श्रेयस्कर

लक्ष्मी प्राप्त करते हैं (४६)। भक्ति से चैत्यों की वंदना करने वाले, उसका स्तुति-स्तोत्र पाठ करने वाले, नन्दीश्वर सम्बन्धी अनुपर्व का जो आराधन करते हैं वे शीघ्र संसार से तर जाते हैं (४७)।

प्रायः पूर्वाचार्यों के बनाये हुए इस नन्दीश्वर द्वीप कल्प को श्री जिनप्रभाचार्य ने श्लोकबद्ध किया है (४८)।

श्री नन्दीश्वर द्वीप का कल्प समाप्त हुआ। इसके ग्रन्था ग्रं० श्लो० ४९ अक्षर १० परिमित है।

■

२५. काम्पिल्यपुर तीर्थ-कल्प

गंगामूल स्थित श्री विमलनाथ भगवान के जिनालय की मनोहर श्री वाले, काम्पिल्यपुर का कल्प मै संक्षेप से कहता हूँ।

इसी जम्बूद्वीप के दक्षिण भारत खण्ड में पूर्व दिशा में पांचाल नामक जनपद है। वहाँ गंगा नामक महानदी की तरंगों से प्रक्षालित प्राकार भित्ति वाला कंपिलपुर नामक नगर है। वहां तेरहवें तीर्थंकर श्री विमलनाथ इक्ष्वाकु कुलदीपक महाराजा कृतवर्म के नन्दन और सोमादेवी की कुक्षी रूपी सीप में मुक्ताफल के सदृश उत्पन्न हुए। उनका लंछन वाराह था और असली कंचनवर्णी देह थी। उन्हीं भगवान का यहाँ च्यवन-जन्म-राज्याभिषेक-दीक्षा और केवलज्ञान लक्षणों से पाँच कल्याणक हुए हैं। इसीलिए उस प्रदेश में नगर का नाम पंचकल्याणक रूढ हो गया। वहाँ उन्हीं भगवान

का शूकर लांछन होने के कारण देवों ने महिमा की और वह स्थान शूकर क्षेत्र नाम से प्रसिद्धि प्राप्त हुआ।

इसी नगर में हरिषेण नामक दशवाँ चक्रवर्त्ती हुआ तथा बारहवाँ सार्वभौम ब्रह्मदत्त चक्रवर्त्ती भी यहीं उत्पन्न हुआ।

श्री वीर प्रभु के निर्वाण से दो सौ बीस वर्ष बीतने पर मिथिला नगरी के लक्ष्मीगृह चैत्य में आचार्य महागिरि के कौडिन्य नामक शिष्य के शिष्य अश्वमित्र ने अणुप्रवाद पूर्व के नेउणिय वस्तु के छिन्न छेदनक वक्तव्यता के आलापक पढते हुए शंकाशील होकर चतुर्थ निह्नव हुआ। वह समुच्छेदक दृष्टि प्ररूपणा करता हुआ कंपिलपुर आया। यहाँ खंड नामक श्रमणोपासक रहता था और वह शुल्कपाल था उसके भय से..............

यहाँ संजय नामक राजा था, वह शिकार के लिए केसर उद्यान गया। वहाँ मृग को मारने पर निकट स्थित गर्दभालि अणगार से बोध पाकर संविग्नतया प्रवर्जित होकर सद्गति प्राप्त हुआ।

इस नगर में पृष्ठ चम्पाधिप साल महासाल का भाणेज और पिढर-जसवती का पुत्र गागलिकुमार हुआ, जिसे मामा ने यहाँ से बुला कर पृष्ठ चम्पा में राज्याभिषिक्त किया और उन्होंने गौतमस्वामी के पास दीक्षा ग्रहण की। काल-क्रम से गागलिकुमार भी अपने माता-पिता के साथ गणधर श्री गौतम स्वामी के पास जिनदीक्षा लेकर सिद्ध हुआ।

इसी नगर में दिव्य मुकुट रत्न प्रतिबिम्बित मुखरूप से प्रसिद्ध दुमुह नामक राजा ने कौमुदी-महोत्सव में इन्द्रकेतु-ध्वजको अलंकृत विभूषित और महाजनों द्वारा ऋद्धि-सत्कार करते देखा और थोड़े दिन बाद उसे भूमि पर पड़े हुए, पैरों से रौंदे जाते नष्ट होते देख कर ऋद्धि का अनृद्धिस्वरूप विचार कर वह प्रत्येकबुद्ध हुआ।

इसी नगरी में द्रुपद राजा की पुत्री महासती द्रौपदी पाँच पाण्डवों को स्वयंवरा हुई।

इसी नगर के राजा धर्मरुचि के अंगुठो में रहे रत्नमय जिन-बिम्ब को नमस्कार करने के कारण पिशुन लोगों की प्रेरणा से कुपित काशो नरेश ने विग्रह किया। धर्म के प्रभाव से वैश्रमण ने सबलवाहन परचक्र को गगनमार्ग से काशी ले जाकर उद्धार किया, वह उसी का सम्मानभाजन हुआ।

इत्यादि अनेक संविधान रूपी रत्नों का निधान यह नगर महातीर्थ है। भव्य लोग यहाँ तीर्थयात्रा कर जैनशासन की प्रभावना करते हुए इहलोक-परलोक सुख और तीर्थङ्कर नाम कर्म उपार्जन करते हैं।

श्री जिनप्रभसूरि कहते हैं कि कम्पिलपुर प्रवर तीर्थ के इस कल्प को पढते हुए श्रावक जन दुष्ट कर्म-शत्रुओं को नष्ट करें।

श्री काम्पिल्यपुर-कल्प की श्लोक संख्या ३२ और ७ अक्षर है।

■

२६. अणहिलपुर स्थित अरिष्टनेमि-कल्प

अरिष्टनेमि भगवान को नमस्कार करके अणहिलपुरपत्तनावतंस ब्राह्मणगच्छनिश्रित श्री अरिष्टनेमि का कल्प कहता हूं।

पूर्वकाल में कन्नौज नगर में यक्ष नामक महर्द्धिसंपन्न व्यापारी था। वह एक बार व्यापार के निमित्त बहुत से बैलों का सार्थ, किराना

लेकर, कन्नौज के राजा की पुत्री महनिका को कंचुलि के संबन्ध मे दिए गए कन्नौज से प्रतिबद्ध गुजरात देश के प्रति प्रस्थान कर क्रमशः सरस्वती नदी तट पर लक्षाराम में आकर ठहरा। पहले अणहिलवाड़ पाटण की वह मण्डी थी। व्यापारी को वहाँ सार्थसहित रहते हुए वर्षाकाल आ गया, मेघ बरसने लगा। एक बार भाद्रपद महीने में वैलों का सारा सार्थ कही चला गया, किसी को पता नहीं। जव सर्वत्र खोजने पर भी न मिला तो सर्वनाश की भाँति अत्यन्त चिन्तातुर अवस्था में उसे रात्रि के समय स्वप्न मे अम्बादेवी ने कहा—बेटा, जागते हो या सोते हो? यक्ष सेठ ने कहा—माँ, मुझे नीद कहाँ? जिसका सर्वस्वभूत वैलों का सार्थ चला गया! देवी ने कहा—भद्र! इसी लक्खाराम में इमली वृक्ष के नीचे तीन प्रतिमाए हैं, तीन पुरुष खुदवा कर उन्हें ग्रहण करो! एक प्रतिमा श्री अरिष्टनेमि प्रभु की, दूसरी पार्श्वनाथ भगवान की और एक अम्बिका देवी की है। यक्ष ने कहा—भगवती! इमली के वृक्ष तो वहुत से हैं, अतः उस प्रदेश को कैसे जाना जाय? देवी ने कहा—धातुमय मण्डल और पुष्पों का ढेर जहाँ देखो उसी स्थान में तीन प्रतिमाओं को जान लेना! उन प्रतिमाओं को प्रकट करके पूजा करने से तुम्हारे बैल स्वयमेव आ जावेंगे! उसके प्रातःकाल उठकर पूजा, विधानपूर्वक वैसा करने से तीनों प्रतिमाएं प्रकट हुई। विधिपूर्वक पूजा करते ही क्षण मात्र में बैल आ गए। सेठ सन्तुष्ट हुआ, क्रमशः वहां प्रासाद बनवा कर प्रतिमाए स्थापित कीं।

अन्यदा वर्षाकाल बीतने पर **अग्गहार** गाँव से अठारह सौ पटशालिक गृहालंकृत ब्राह्मण गच्छ मण्डन श्री यशोभद्रसूरि खंभात नगर के विचरते हुए वहाँ आये। लोगों ने विनति की—भगवन्! तीर्थ का उल्लंघन कर के जाना नहीं कल्पता! तब उन सूरि महाराज ने वहाँ जिन-विम्वों को वन्दन किया। मार्गशीर्ष पूर्णिमा के दिन ध्वजारोपण महोत्सव किया। यह ध्वजारोपण महोत्सव विक्रम

संवत् ५०२ बीतने पर हुआ था। आज भी प्रतिवर्ष उसी दिन ध्वजा-रोपण किया जाता है।

विक्रम संवत् ८०२ में अणहिल गोपालक के परीक्षित प्रदेश लक्षाराम स्थान में चाउक्कड़ (चापोत्कट)-चावड़ा वंश मुक्ताफल राजा वनराज ने पाटण वसाया। वहाँ १ वनराज, २ जोगराज, ३ क्षेमराज, ४ भूअड, ५ वयरसींह, ६ रत्नादित्य, ७ सामन्तसिंह नामके चावड़ा वंशीय सात राजा हुए। फिर उसी नगर में चालुक्य वंशी १ मूलराज, २ चामुण्डराज, ३ वल्लभराज, ४ दुर्लभराज, ५ भीम-देव, ६ कर्ण, ७ जयसिंह देव, ८ कुमारपालदेव, ९ अजयदेव १० मूलराज, ११ भीमदेव नामक ग्यारह राजा हुए। फिर वाघेला १ लवण प्रसाद, २ वीरधवल, ३ वीमलदेव, ४ अर्जुनदेव, ५ सारंगदेव, ६ कर्णदेव राजा हुए। इसके बाद गुजरात में सुलतान अलाउद्दीन आदि का शासन प्रवृत्त हो गया।

वे अरिष्टनेमि भगवान कोहंडी-अम्बिका कृत प्रातिहार्य से आज भी उसी प्रकार पूजे जाते हैं।

पुरातत्त्वविदों के मुख से श्रवण कर श्री जिनप्रभसूरि ने यह अरिष्टनेमि-कल्प लिखा है, जो कल्याणकारी हो।

श्री अरिष्टनेमि-कल्प पूर्ण हुआ। यह ग्रन्थाग्रन्थ ३३ परिमित है।

■

२७. शंखपुर पार्श्वनाथ-कल्प

पूर्वकाल में नौवाँ प्रतिवासुदेव जरासंध राजगृह नगर से समस्त सेना के साथ नौवें वासुदेव कृष्ण से युद्ध करने के लिए पश्चिम दिशा की ओर चला। कृष्ण भी समस्त सैन्य सामग्री सहित द्वारिका से निकल कर उसके सन्मुख देश-सीमा पर आये। जहाँ भगवान अरिष्टनेमि ने पाञ्चजन्य-शंख बजाया,• वहाँ शंखेश्वर नगर बसा। शंख के निनाद से क्षुब्ध जरासन्ध ने जरा नामक कुल-देवी का आराधन कर कृष्ण की सेना में जरा की विकुर्वणा की, जिससे श्वास-कास रोग से अपनी सेना को पीड़ित देखकर व्याकुल होकर श्रीकृष्ण ने भगवान अरिष्टनेमि से कहा—भगवन्! मेरी सेना कैसे निरुपद्रव होगी? और मुझे कब जयश्री हस्तगत होगी? तब भगवान ने अवधिज्ञान का उपयोग देकर कहा—"पाताल में नागराज से पूज्यमान भावी तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ स्वामी की प्रतिमा है, उसे यदि तुम अपनी देव-पूजा के समय पूजो तो सेना निरुपद्रव होगी और तुम्हारी जीत भी होगी। यह सुन कर विष्णु ने सात महीना तीन दिन में और मतान्तर में तीन दिन निराहार रहकर पन्नगाधिराज की आराधना की, क्रमश. नागराज वासुकि प्रत्यक्ष हुआ। तब कृष्ण ने भक्ति-बहुमानपूर्वक पार्श्वनाथ-प्रतिमा की याचना की। नागराज ने उसे अर्पण की। फिर महो-त्सवपूर्वक लाकर अपनी देव-पूजा में स्थापित कर त्रिकाल पूजा प्रारम्भ की। उसके न्हवण जल को समस्त सेना पर छींटने से जरा-रोग-शोक-विघ्न निवृत्त होकर विष्णु की सेना में समर्थता आ गई। क्रमशः जरासन्ध की पराजय हुई। लोहासुर, गजासुर, बाणासुर आदि सभी जीत लिए गए।

धरणेन्द्र-पद्मावती के सान्निध्य से वह प्रतिमा सकल विघ्ना-पहारिणी, सकल ऋद्धि-जननी हुई। वह वहीं शंखपुर में स्थापित

की गई। कालान्तर में प्रच्छन्न होकर क्रमशः शंखकूप में प्रगट हुई। आज पर्यन्त चैत्यग्रह में सकल संघ द्वारा वह पूजी जाती है। अनेक प्रकार के परचे-चमत्कार पूरे जाते हैं। तुर्क राजा लोक भी वहाँ महिमा करते हैं।

कामित तीर्थ शंखेश्वर स्थित पार्श्वनाथ जिनेश्वर की प्रतिमा का यह कल्प मैंने गीत के अनुसार लिखा है। ये शंखेश्वराधीश्वर पार्श्वनाथदेव कल्याणकल्पद्रुम हैं। भव्यात्माओं के देह में और घर में सदा (आरोग्य एवं) लक्ष्मी करे।

श्री शंखपुर-कल्प के ग्रन्थाग्रं० २२ और २४ अक्षर ऊपर हैं।

■

२८. नाशिकपुर-कल्प

भव भय को दूर करने वाले श्री चन्द्रप्रभ जिनचंद्र को वन्दन करके मैं पापमलसमूह के नाशक नाशिकपुर का कल्प कहता हूँ।

नाशिकपुर तीर्थ की उत्पत्ति ब्राह्मणादि परतीर्थिक इस प्रकार वर्णन करते हैं—पूर्वकाल में एक वार नारद ऋषि ने भगवान कमलासन से पूछा कि पुण्यभूमि कहाँ है? कमलासन ने कहा—जहाँ मेरा यह पद्म गिरे, वही पवित्र भूमिस्थान है! एकदिन विरंचि ने वह पद्म छोड़ा जो महाराष्ट्र जनपद भूमि के अरुणा-वरुणा-गंगा महानदी विभूषित, नाना प्रकार की वनस्पति से मनोहर देव-भूमि पर जा कर गिरा। वहाँ पद्मासन ने पद्मपुर नामक नगर

वसाया। वहाँ कृतयुग में पितामह ने यज्ञ प्रारंभ किया, समस्त देव एकत्र हुए। असुरों को बुलाने पर भी वे देवताओं के भय से नही आये। उन्होंने कहा—यदि भगवान चन्द्रप्रभ स्वामी वहाँ पधारे तो हम विश्वस्त होकर आवेंगे! तब चित्त में चमत्कृत होकर जहाँ स्वामी विचरते थे, वहाँ जाकर चतुर्मुख ने करबद्ध होकर नमस्कारपूर्वक कहा—भगवन्! वहाँ पधारिये, जिससे मेरा कार्य सिद्ध हो! स्वामी ने कहा—मेरे प्रतिरूप-प्रतिमा से ही काम सिद्ध हो जायगा! तब ब्रह्मा चन्द्रकान्तमणिमय बिम्ब सौधर्मेन्द्र से प्राप्त कर वहाँ लाया। दानव लोग आये, यज्ञ महोत्सव प्रारंभ होकर सिद्ध हुआ। प्रजापति ने वहाँ चन्द्रप्रभ स्वामी का मन्दिर बनवाया और नगर-द्वार पर नगर की रक्षा के लिए सुर सुन्दर देव को स्थापित किया। इस प्रकार प्रथम युग—कृतयुग में पद्मपुर तीर्थ प्रसिद्ध हुआ।

त्रेतायुग में दशरथनदन राम, सीता और लक्ष्मण के साथ पितृ-आज्ञा से वनवास गये और गौतम-गंगा के तट पर पंचवटी आश्रम मे फलाहारपूर्वक चिरकाल रहे। इसी बीच रावण की बहिन सूर्पनखा वहाँ आयी। राम को देखकर अपने को ग्रहण करने की प्रार्थना करने पर राम ने प्रतिषेध किया। लक्ष्मण के पास उपस्थित हुई, उसने उसकी नाशिका काट ली, वहाँ नाशिकापुर हुआ। क्रमशः रावण ने सीता का अपहरण किया, राघव ने युद्ध में रावण को मारा और विभीषण को लंका का राज्य दिया। फिर अपने नगर के प्रति लौटते हुए राम ने चन्द्रप्रभस्वामी के मन्दिर का उद्धार कराया। यह राम का उद्धार नाशिकपुर में हुआ। कालान्तर मे पुण्यभूमि ज्ञात कर मिथिला से जनक राजा आये, उन्होंने वहाँ दस यज्ञ कराये। जनक-स्थान नाम से वह नगर प्रसिद्ध हुआ।

एक दिन शुक्र महाग्रह की पुत्री देवयानी को जनकस्थानपुर में खेलते हुए दण्डक राजा ने देखा। रूपवती होने के कारण बलात्कार से उसने उसका शीलभंग किया। शुक्र महाग्रह को उसका स्वरूप ज्ञात होने पर उसने रोषवश शाप दिया कि यह नगर दण्डक राजा सहित सात दिन के भीतर राख का ढेर हो जायगा। नारद ऋषि को यह ज्ञात होने पर उसने दण्डक राजा को कहा। दण्डक राजा सुन कर भय के मारे सब लोगों को लेकर चन्द्रप्रभ स्वामी के शरण में आया और शापमुक्त हुआ। उसके बाद नगर का नाम "जगथाण" प्रसिद्ध हुआ। इस प्रकार परतीर्थी लोग भी जिस तीर्थ का माहात्म्य बखानते हैं, तो जैन लोग क्यों नही वर्णन करेंगे।

इसके पश्चात् द्वापर युग में पाण्डु राजा की पत्नी कुन्ती देवी ने प्रथम पुत्र युधिष्ठिर होने पर चन्द्रप्रभ स्वामी के प्रासाद को जीर्ण देखकर उद्धार कराया, अपने हाथ से उसने वहाँ विल्व वृक्ष रोपा। तब वह कुन्ती-विहार नाम से विख्यात हुआ। फिर द्वैपायन ऋषि के द्वारा द्वारिका का दाह होने पर उपक्षीणप्राय यादव वंश में वज्रकुमार नामक यादव क्षत्रिय था जिसकी स्त्री गर्भवती थी। वह द्वारिका-दाह होते समय वहुभक्ति पूर्वक द्वैपायन ऋषि से छूट कर चन्द्रप्रभ स्वामी के शरण में आई। पूर्ण समय होने पर वहाँ उसने पुण्यशाली पुत्र प्रसव किया। उसका नाम दृढप्रहारी दिया गया। वह बाल्यकाल अतिक्रान्त कर तरुणावस्था में महारथी हो गया। वह अकेला ही लाख सुभटों के साथ युद्ध करने में समर्थ था। एक वार वहाँ चोरों ने गायों का हरण किया, उन सब को अकेला दृढप्रहारी जीत कर लौटा लाया, इससे उसको अत्यन्त पराक्रमी ज्ञात कर ब्राह्मण आदि नागरिकों ने उसे तलार—नगररक्षक पद दिया। उसने चोर डाकुओं का निग्रह किया और क्रमशः

उसी नगर का महाराजा हो गया। यादव वंश बीज का वहाँ उद्धार हुआ जिससे उसने वहुमानपूर्वक चन्द्रप्रभ स्वामी के मन्दिर का उद्धार कराया। इस प्रकार त्रेता युग का उद्धार हुआ, ऐसे तीनो युगों में वहाँ अनेक उद्धार हुए।

वर्त्तमान कलिकाल में श्री शान्तिसूरि ने उद्धार करवाया। पहले कल्याणकटक नगर में परमर्दी नामक राजा राज्य करता था। उस जिनेन्द्र भक्त ने वहाँ के प्रासाद में चन्द्रकान्त मणिमय बिम्ब सुनकर विचार किया कि मैं इस प्रतिमा को अपने घर लाकर गृह चैत्यालय में पूजा करूंगा। नाशिक के नागरिकों ने इसका कथंचित् व्यतिकर ज्ञातकर ताम्रसम्पुट में उस बिम्ब को निक्षिप्त कर के ऊपर लेप कर दिया, लेपमय प्रतिमा हो गई। राजा ने जिनालय में आने पर जव उस प्रतिमा को न देखा तो लोगों से पूछा। उनके यथास्थित कहने पर राजा ने सोचा—इस लेप को भेदन कर मूल प्रतिमा को निकालूंगा। फिर राजा ने उस मन्दिर का उद्धार कराने के लिए चौवीस गाँव अर्पण किये। उसके द्रव्य से देवाधिदेव पूजे जाते है।

इसके वाद कितना ही समय बीतने पर निकटवर्त्ती त्र्यम्बक-देवाधिष्ठित महादुर्ग ब्रह्मगिरि स्थित महल्लय क्षत्रिय जाति का वाइओ नामक डाकू था जिसने प्रासाद को गिरा दिया। यह सुन कर पल्लीवाल-वशावतंश ईश्वर के पुत्र माणिक्य के जो नाऊ की कुक्षि-सरोवर के राजहंस सदृश था—उस कुमारसिंह परम श्रावक ने पुनः भव्य प्रासाद करवाया। अपने न्यायोपर्जित द्रव्य को सफल कर उसने अपने को भवसागर से पार किया।

इस प्रकार अनेक उद्धार वाले नाशिक महातीर्थ की आज भी यात्रा-महोत्सव करने के लिए चतुर्दिशाओं से संघ आकर आराधना करता है। वे कलिकाल के दर्प को विनष्ट करने वाले भगवान के शासन की प्रभावना करते हैं।

पौराणिक परमतीर्थ नाशिकपुर का यह कल्प है इसे वांचने-पढ़ने वालों को वांछित्त ऋद्धि संप्राप्त होती है।

कुछ अन्य दर्शनियों के मुख से कुछ जैन पुरातत्त्वविदों के मुख से श्रवण कर श्री जिनप्रभसूरि ने नाशिकपुर का यह कल्प लिखा है।

श्री नाशिक्यपुर का कल्प समाप्त हुआ। इसकी श्लोक-सख्या ५९ और २७ अक्षर हैं।

■

२९. हरिकंखीनगर स्थित पार्श्वनाथ-कल्प

हरिकंखी नगरी के चैत्य में निविष्ट पार्श्वनाथ स्वामी को नमस्कार करके कलिकाल के दर्प को नष्ट करने वाला वहाँ का थोड़ा कल्प कहता हूं।

गुर्जर धरा में हरिकंखी नामका सुन्दर गाँव है। वहाँ उत्तुंग शिखर वाले जिनालय में प्रातिहार्यसन्निहित्त श्री पार्श्वनाय-प्रतिमा भव्यजनों द्वारा विविध पूजाओं से त्रिकाल पूजी जाती है। एकवार चालुक्यवंशप्रदीप श्री भीमदेव के राज्य में तुर्क मण्डल से सवल सैन्य सहित आये हुए अतनुबुक्का नामक सलार ने अणहिलवाड़ा पाटणगढ को भंग किया। उसने वहाँ से लौटते हुए हरिकंखी गाँव के चैत्य को देखा और प्रविष्ट होकर पार्श्वनाथ प्रतिमा को भग्न कर डाला। उसके पश्चात् गाँव में उपद्रव करके सलार स्वस्थान की ओर चला गया।

हरिकंखी गाँव फिर से वसा, गोष्ठिक श्रावक आये। भगवंत की भग्न प्रतिमा को देखकर परस्पर कहने लगे—अहो! महान् महत्त्वशाली भगवान का म्लेच्छों ने भँग कैसे कर दिया? फिर क्या भगवंत की वैसी कला नहीं रही?

उन लोगों के सोने पर अधिष्ठायक देव ने स्वप्न में आदेश दिया कि इस प्रतिमा के सभी टुकड़ों को एकत्र करके गर्भगृह में स्थापित कर कपाट वंध करके ताले लगा दो। छः मास तक इसी तरह प्रतिपालन करना, उसके पश्चात् द्वार खोलकर प्रतिमा को संपूर्ण अंगोपांग युक्त अखंड देखना! गोठी लोगों ने भोग-पूजा करके वैसा ही किया। पाँच मास बीतने पर छठे महीने के प्रारंभ में उत्सुकता के वशीभूत होकर गोष्टिक लोगों ने द्वार खोल दिए। उन्होंने देखा भगवंत के सम्पूर्ण अंगोपाँग युक्त होने पर भी स्थान स्थान पर मसे वने हुए है। उन लोगों ने तत्त्व-विचार न कर सुधार को वुलाया। उसने टंकी के द्वारा मसों को तोड़ना प्रारंभ किया तो मसों से रुधिर निकलने लगा। गोष्टिक लोगों ने भय-भीत होकर भोग-पूजादि प्रारंभ किया।

रात्रि में अधिष्ठायक देव ने आदेश किया—तुम लोगों ने यह शोभनीय कार्य नहीं किया कि छः मास पूर्ण हुए विना ही द्वार खोल डाला, फिर टँकिया भी चलाई! अव फिर जव तक अंतिम मास पूर्ण हो हमारा द्वार वन्द कर दो! उन्होंने उसी प्रकार किया। छः मास के अनन्तर विधिपूर्वक द्वार खोल कर देखा तो पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा को निरुपहत अखण्ड अङ्गोपाङ्ग-युक्त पाया। केवल नख सूक्ति और अंगुष्ठ पर तुच्छ दाग रह गया था। गोष्टिक लोग सन्तुष्ट होकर पूर्ववत् पूजा करने लगे। चारों दिशाओं से संघ आकर यात्रा-महोत्सव करता है। इस प्रकार चमत्कारी माहात्म्य के निधान श्री पार्श्वनाथ भगवान है।

यह हरिकंखी नगर स्थित अश्वसेननन्दन पार्श्वनाथ भगवान का कल्प संक्षेप से श्री जिनप्रभसूरि ने बनाया है।

हरिकंखी नगर स्थित श्री पार्श्वनाथ का कल्प संपूर्ण हुआ। इसकी ग्रन्थ संख्या २५ है।

■

३० कपर्द्दियक्ष-कल्प

श्री शत्रुञ्जय शिखर पर स्थित श्री ऋषभदेव जिनेश्वर को नमस्कार करके उन्हीं के सेवक कपर्द्दि यक्ष का कल्प कहता हूं।

वालवक जनपद में पालीताना नामक नगर है। वहाँ कवड्डि—कर्पार्द्द नामक ग्राममहत्तर—सरपंच प्रधान था। वह मद्य मांस, जीवहिंसा, परद्रव्यहरण, परस्त्रीगमनादि पाप कार्यो में आसक्त चित्त था और अपने अनुरूप चेष्टावाली अणही नामक भार्या के साथ विषय-सुख उपभोग करता हुआ काल निर्गमन करता था। एक दिन वह मंच पर बैठा था तब उसके घर साधु-युगल आये। उसने भी देखकर उन्हें प्रणाम करते हुए हाथ जोड़ कर कहा—भगवन्! आपका किस कारण से पधारना हुआ? हमारे घर में दूध, दही, घी, तक्र आदि प्रचुर हैं, जो चाहिए, आज्ञा कीजिए! साधुओं ने कहा—हम भिक्षा के लिए नहीं आये हैं, परन्तु हमारे गुरु महाराज सपरिवार शत्रुञ्जय यात्रार्थ पधारे हैं। अब वर्षा-काल आ गया और साधु-विहार अकल्प्य है, अतः तुम्हारे पास

उपाश्रय माँगने के लिए आये हैं, जहाँ पर सूरि महाराज सपरि-वार रह सकें।

उसने कहा—मैंने उपाश्रय दिया, सूरि महाराज पधारें और सुखपूर्वक रहे। पर केवल हम पाप निरतों को धर्मोपदेश न दें! साधुओं ने कहा—ऐसा ही होगा! गुरु महाराज पधारे, वर्षाकाल चातुर्मास रहे। वे स्वाध्याय करते और छट्ठ-अट्ठमादि तप द्वारा अपने शरीर का शोषण करते। क्रमशः वर्षाकाल वीतने पर वह उन्हे विदा करने लगा और उनके सत्यप्रतिज्ञ गुण से प्रसन्न होकर अपनी नगर-सीमा तक पहुँचाने के लिए चला। सीमा पर पहुचने पर सूरिजी ने कहा—मेहर! तुमने उपाश्रय देकर हमारा वड़ा उपकार किया। अव हम आज कुछ धर्मोपदेश देंगे, जिससे प्रत्युपकार हो सके! मेहर ने कहा—मेरे से नियम का निर्वाह तो नही होगा! कुछ मन्त्राक्षर उपदेश करें!

सूरि महाराज ने अनुकम्पा से उसे पंच परमेष्ठि नमस्कार महामन्त्र सिखाया और उसका जल-अग्नि-स्तंभनादि प्रभाव भी वत-लाया। फिर गुरु महाराज ने कहा—प्रतिदिन तुम शत्रुञ्जय की दिशा में प्रणाम करना! मेहर उनका कथन स्वीकार करके अपने घर आ गया। सूरि महाराज अन्यत्र विचरने लगे। वह मेहर क्रमशः उस पञ्च परमेष्ठी मंत्र का जाप करते हुए—नियम-निर्वाह करते हुए काल निर्गमन करने लगा। अन्यदा उसकी पत्नी ने उसे कलह करके घर से निकाल दिया। वह शत्रुञ्जय गिरिराज के शिखर पर चढने लगा। जब वह मद्य से भरा पात्र हाथ में लिए वटवृक्ष की छाया में मद्यपान करने के लिए वैठा तो गीध के मुँह में रहे हुए साँप के जहर की बूँदें मद्यपात्र में आकर गिरी। उसने यह देखकर विरक्त चित्त से मद्य त्याग दिया और संसार से विरक्त होकर अनशन ग्रहण कर लिया। आदीश्वर भगवान के चरण कमल एवं नवकार मंत्र को स्मरण करते हुए वह शुभ ध्यान से

कालधर्म प्राप्त हुआ। तीर्थ के माहात्म्य और नवकार मन्त्र के प्रभाव से वह कवड्डि-(कपर्द्दि) यक्ष उत्पन्न हुआ। और अवधि ज्ञान से अपना पूर्व भव देखकर आदीश्वर भगवान की पूजा करने लगा। यह व्यतिकर सुनकर उसकी गृहिणी वहाँ आई और आत्म-निन्दा करते हुए अनशनपूर्वक जिनेश्वर का स्मरण कर काल-धर्म को प्राप्त हुई और उसी यक्ष का वाहन हाथी उत्पन्न हुई। कपर्द्दि यक्ष के चारों हाथों में पाश, अंकुश, द्रव्य को थैली और बीजोरा रहता है।

अवधिज्ञान से वह अपना पूर्वभाव ज्ञात कर महाराज के चरणों में आया और हाथ जोड़कर कहा—भगवन्! आपके प्रसाद से मैने यह ऋद्धि प्राप्त की है, अब मुझे कुछ कर्त्तव्य का आदेश करें! गुरु महाराज ने कहा—तुम इसी तीर्थ पर नित्य स्थित रहो और युगादिनाथ जिनेश्वर की त्रिकाल पूजा करना! यात्रा के लिए आये हुए भव्य जीवों का मनोवांछित पूर्ण करना और सकल संघ के विघ्नों को दूर करना।

यक्षाधिप गुरु-वचनों को स्वीकार कर उनकी चरण-वन्दना करके विमलगिरि-शिखर पर गया और गुरु महाराज द्वारा उप-दिष्ट कार्य करने लगा।

ये अम्बादेवी और यक्षराज कपर्द्दि के कल्पयुग्म श्री जिनप्रभ सूरि ने वृद्ध-वचनानुसार लिखे हैं।

कपर्द्दि यक्ष-कल्प पूर्ण हुआ इसकी ग्रन्थ संख्या ४२ है।

■

३१. शुद्धदन्तीस्थित पार्श्वनाथ-कल्प

पूर्वकाल में अयोध्यानगरी में दशरथनन्दन श्रीपद्म नामक आठवे बलदेव जो परम सम्यग्दृष्टि थे, उन्होंने अनेकशः दृष्ट प्रत्यय, अनेक विघ्नापहारिणी अनागत तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ की रत्नमय प्रतिमा निज देवतावसर—गृह चैत्यालय में चिरकाल पूजा की।

कालक्रम से पूर्वदेश में "पद्माकर अपद्मा" अर्थात् दुर्भिक्ष होना इत्यादि ज्ञात कर दूषमकाल में धर्म प्रवृत्ति तुच्छतर होने वाली जानकर अधिष्ठायक देव गगन मार्ग से सात सौ देश के शुद्धदन्ती-नगर में लाकर उसे भूमिगृह में रखा। काल की विषमता जान कर उन्होंने रत्नमयत्व बदल कर उस प्रतिमा को पाषाणमय बना दिया।

बहुत सा काल अतिक्रमण होने पर सोधतिवाल गच्छ में विमलसूरि नामक आचार्य हुए। उन्हें रात्रि में स्वप्नादेश हुआ कि यहाँ अमुक प्रदेश में भूमिगृह में भगवान पार्श्वनाथ स्वामी की प्रतिमा विद्यमान है उसे बाहर निकाल कर पूजाओ! तब उन्होंने श्रावकसंघ को आदेश दिया। उन्होंने भूमिगृह से उस प्रतिमा को बाहर निकाला और चैत्यालय बनवा कर वहाँ स्थापित किया। त्रिकाल पूजा होने लगी। काल के प्रभाव से नगरी उजड़ जाने पर एकबार अधिष्ठायकों के प्रमाद से प्रसंगवश आये हुए तुर्कों ने भगवान पार्श्वनाथ की प्रतिमा को देखा। वे अनार्य चर्या वाले होने से प्रतिमा के मस्तक को उतार कर जमीन पर गिरा गए। उस समय वहाँ आये हुए बकरियाँ चराने वाले एक अजापालक ने प्रभु के मस्तक को भूमि पर पड़ा हुआ देखा और बहुत विचार कर के मस्तक को स्वामी के शरीर पर चढ़ा दिया। वह सल-

संधि रहित संलग्न हो गया—अच्छी तरह जुड़ गया। उस देवतानुभाव से आज भी भगवान उसी प्रकार पूजे जाते विद्यमान है।

शुद्धदन्ती नगरी स्थित श्री पार्श्वनाथ देव का यह कल्प श्री जिनप्रभ सूरि ने जैसा सुना वैसा वर्णन किया।

■

३२. अवन्तीदेशस्थ अभिनंदनदेव-कल्प

अवन्ती देश के प्रसिद्ध सिद्ध चमत्कारपूर्ण श्री अभिनन्दन देव का कल्प मैं संक्षेप से कहता हूँ। इक्ष्वाकु वंश के मुक्तामणि श्री संवर राजा के पुत्र, सिद्धार्था रानी की कुक्षी-सरोवर के राजहंस, कपिलांछन और स्वर्ण जैसे वर्ण वाले, अपने जन्म से कोशल पुर—अयोध्या को पवित्र करने वाले, साढ़े तीन सौ धनुष काय प्रमाण वाले, चतुर्थ तीर्थंकर श्रीमान् अभिनन्दनदेव प्रभु का चैत्य मालव देशान्तर्गत मंगलपुर के निकट महाअटवी के बीच मेदपल्ली में था। वहाँ विचित्र पाप कर्म निर्माण में कर्मठ मेव जाति के लोग निवास करते हैं। एक वार विशाल म्लेच्छ सेना ने आकर जिनालय को भग्नकर डाला और कलिकाल दुर्ललित कलनीयता और अधिष्ठायकों के प्रमाद से उस चैत्य के अलङ्कारभूत, नमस्कार करने वाले जनों के उपद्रव दूर करने वाले भगवान अभिनंदन जिनेश्वर की प्रतिमा के नौ खण्ड कर डाले, कुछ लोग सात खंड भी कहते हैं। मेव लोगों ने खेद खिन्न चित्त से उन सब पाषाण खण्डों को एकत्र कर के एक प्रदेश में रख दिए।

इस प्रकार बहुत सा समय व्यतीत हो जाने पर, उज्वल गुण ग्राम से अभिराम, शैव लोगों को तिरस्कृत करने वाला धारोड़ गाँव से वइजा नामक एक व्यापार-कुशल वणिक नित्य वहाँ आकर वस्तु क्रय-विक्रय रूप व्यापार किया करता था। वह परम जैन था। और वह प्रतिदिन घर आकर देवपूजा करता, विना देव पूजा किये वह कभी भोजन नहीं करता था। अतः पल्ली में आए हुए सेठ को एक वार अनेक दारुण कर्म करने वाले उन लोगों ने कहा—आप प्रतिदिन आने जाने का कष्ट न कर इसी वणिकोचित भोज्य से पूर्ण कल्पवल्ली रूप पल्ली में भोजन क्यों नहीं करते? वणिक ने कहा—ठाकुरो! जब तक मैं त्रिभुवन-पूज्य अर्हन्त देवाधिदेव के दर्शन पूजन न करूँ तब तक भोजन नहीं कर सकता! किरातों ने कहा—यदि ऐसा ही देव के प्रति तुम्हारा निश्चय है तो हम तुम्हारा अभीष्ट देवदर्शन करावेंगे! वणिक ने स्वीकार किया। उन किरातों ने उन सात या नौ खण्डों को यथावस्थित जोड़ कर अभिनन्दन भगवान की प्रतिमा दिखाई। वह निर्मल मम्माण—पाषाण की सुघटित प्रतिमा देख कर उस सरल चित्त वणिक ने अत्यन्त प्रमुदित मन से पापनाशक नमस्कार किया और पुष्पादि से पूजा कर चैत्यवन्दन किया। फिर उस गुरुतर अभिग्रह वाले ने वहीं भोजन किया। इस प्रकार वह वणिक प्रतिदिन वहीं निष्ठापूर्वक पूजा करने लगा।

एक दिन अविवेक के अतिरेक वाले मेव लोगों ने धन-प्राप्ति के हेतु उस प्रतिमा के खण्डों को उठा कर के कही छिपा कर रख दिया। पूजा के समय प्रतिमा को न देख कर वइजा ने भोजन नहीं किया और खिन्न चित्त से तीन चौविहार उपवास किये। उन मेवों ने पूछा—तुम भोजन क्यों नहीं करते? उसने यथातथ कहा। तब किरात लोगों ने कहा—यदि हमें गुड़ दो तो हम तुम्हें देव-दर्शन करा दें। वणिक ने कहा—मैं अवश्य गुड़ बाँटूंगा!

तब उन्होंने उन सात या नौ टुकड़ों को पूर्ववत् यथावस्थित जोड़ कर प्रतिमा प्रकट कर दी। वइजा ने प्रतिमा जुड़ी हुई देखी और कलुषितहृदय निषाद लोगों का संस्पर्श ही विषादपूर्ण समझ कर उस सुश्रावक ने सात्विक रीति से अभिग्रह किया कि जब तक मैं इस प्रतिमा को अखण्ड न देखूं तब तक अन्न जल नहीं लूंगा !

सेठ को प्रतिदिन उपवास करते देख उस बिम्ब-अभिनंदन स्वामी—के अधिष्ठायक देव ने वइजा को स्वप्न में कहा—इस प्रतिमा के नवों खण्डों की सन्धि को चन्दन लेप से पूर्ण करो तो यह अखण्डता प्राप्त करेगी ! प्रातःकाल में उस बुद्धिमान ने प्रमोद-पूर्वक वैसा ही किया। भगवान की देह अखण्ड हो गई, चन्दन के लेपमात्र से सारी सन्धियाँ मिल गई। उसने तत्काल विशुद्ध श्रद्धा-पूर्वक भगवान की पूजा करके भोजन किया। और उस वणिक ने अत्यन्त हर्षपूर्वक मेव लोगों को गुड़ादि दिया।

उसके बाद उस वणिक ने रत्न-प्राप्ति की भाँति अत्यन्त प्रस-न्नतापूर्वक सूने खेड़े में पीपल वृक्ष के नीचे वेदी बंधाकर उस प्रतिमा को मण्डित किया। तब से श्रावकसंघ और चारों वर्ण के लोग चारों दिशाओं से आकर यात्रोत्सवादि आयोजन करने लगे। वहाँ अभयकीर्त्ति, भानुकीर्त्ति, आबा, राजकुल, मठपति आचार्य चैत्यचिन्ता—सार-संभाल करते हैं।

प्राग्वाट वंशावतंश थेहा का पुत्र हालाशाह निःसन्तान था। उसने पुत्र के लिए मानता की—यदि मेरे पुत्र हो गया तो मैं यहाँ मन्दिर बनवाऊँगा ! क्रमशः अधिष्ठायक देव के सान्निध्य से उसके कामदेव नामक पुत्र हुआ। हालाशाह ने वहाँ ऊँचे शिखर वाला चैत्य बनवाया। क्रमशः भावड़ शाह की पुत्री कामदेव को पर-णाई। पिता ने डाहा गाँव से मलयसिंह आदि को बुला कर देवा-र्चक स्थापित किया। महणिया नामक मेव ने भगवान के - [illegible]

से अपनी अंगुली काट डाली—कि मैं इन भगवान का अंगुली काटा सेवक हूँ ! भगवान के विलेपन चन्दन लगने से उसके फिर नई अंगुली हो गई।

भगवान को अतिशयवान् सुन कर मालवपति श्री जयसिंह ने अत्यन्त भक्तिपूर्ण अन्तःकरण से स्वयं भगवान अभिनंदनस्वामी की पूजा की। देवपूजा के निमित्त मठपति को चौबीस हल की कृषि-भूमि प्रदान की। अवन्तीपति ने देवार्चक को भी बारह हल की भूमि दी। आज भी अभिनंदनभगवान का प्रभाव दिग्मण्डल में व्याप्त है और उसी प्रकार पूजे जाते हैं।

अभिनन्दनदेव का यह कल्प जैसा सुना, संक्षेप से श्रीजिन-प्रभ सूरि ने रचा है।

इसकी ग्रन्थ संख्या ५३ और १८ अक्षर ऊपर है !

●

३३. प्रतिष्ठानपुर-कल्प

श्री मुनि सुव्रत जिन को नमस्कार कर पृथ्वी में प्रतिष्ठा प्राप्त प्रतिष्ठानपुर का कल्प यथाश्रुत कहता हूँ। इसी भारत वर्ष में दक्षिण खण्ड महाराष्ट्र देशावतंश श्रीमत्प्रतिष्ठान नामक पत्तन है। वह अपनी समृद्धि से इन्द्रपुरी को लज्जित करने वाला नगर भी कालान्तर में एक छोटा-सा ग्राम प्रायः रह गया। एक बार वहाँ दो विदेशी ब्राह्मण अपनी विधवा बहिन के साथ आकर किसी

कुंभार की शाला में रहे। वे कणवृत्ति करके कण लाकर अपनी बहिन को देते और उससे की हुई रसोई से आहार कर अपना समय निकालते थे। एक दिन वह ब्राह्मणों की बहिन पानी लाने के लिए गोदावरी नदी गई। उसके अद्वितीय रूप को देख कर कामातुर अन्तर्ह्रद निवासी शेष नामक नागराज ने ह्रद से निकल कर मनुष्य देह धारण कर उसके साथ संभोग-केलि की। उसके सप्त-धातुरहित्त होने पर भी भवितव्यत्तावश दिव्य शक्ति से शुक्र पुद्गल संचार द्वारा गर्भाधान हो गया। नागराज अपना नाम प्रकाशित कर—संकट के समय मुझे स्मरण करना—ऐसा कह कर पाताल लोक चला गया। वह भी अपने घर लौट आई पर उसने अपने भ्राताओं को लज्जावश अपना वृत्तान्त नहीं बतलाया। कालक्रम से उस पेट वाली .के गर्भलिंग देख कर दोनों भ्राताओं ने जाना कि यह गर्भवती हो गई मालूम देती है। बड़े भाई के मन में ऐसी शंका हो गई कि यह अवश्य ही छोटे भाई से उपभुक्त हुई है। बड़े भाई के शंकाशील भावों से छोटे के चित्त में भी विकल्प हुआ कि यह अवश्य बड़े के साथ शीलभ्रष्ट हुई है। इस प्रकार परस्पर कलुषित आशय से वे दोनों उसे छोड़ कर अलग-अलग देशान्तर चले गए।

इधर वह बढते हुए गर्भ वाली बहिन भी पराये घरों में काम करके अपनी उदरपूर्त्ति करने लगी। क्रमशः पूरे दिन होने से उसने सर्व लक्षणों से य्क्त पुत्र को जन्म दिया। और वह क्रमश शरीर एवं गुणों में बढते हुए समवयस्क बालकों के साथ खेला करता। वह उन्हें बाल-क्रीड़ा में हाथी-घोड़ा-रथ आदि कृत्रिम नाम देकर वाहन बनाता और स्वयं राजा बन जाता। वाहनों का नाम देने के कारण लोगों से उसने "सातवाहन" नाम पाया। अपनी जननी द्वारा पालन होते हुए वह सुख से रहने लगा।

इधर उज्जैन में अवन्तीपत्ति श्री विक्रमादित्य की सभा में

किसी नैमित्तिक ने "सातवाहन प्रतिष्ठानपुर में होने वाला राजा है" वतलाया। अव उसी नगर में एक वृद्ध ब्राह्मण ने अपना आयुशेष ज्ञात कर अपने चारों पुत्रों को वुला कर कहा कि—वत्स! मेरे परलोक जाने पर, मेरी शय्या के सिरहाने के दक्षिण पाये से लेकर चारों ही पायों के नीचे चार निधि-कलश वर्त्तमान हैं, उन्हें ज्येष्ठ-क्रमानुसार विभाग करके ले लेना जिससे तुम लोगों का निर्वाह संपन्न होगा। पुत्रों ने पिता का यह आदेश स्वीकार कर लिया और मृत्यु होने पर पिता का ऊर्ध्वदैहिक करके तेरहवें दिन भूमि खनन कर अपने-अपने निधिकलश चारों ने ले लिये। उन्होंने ज्योंही उद्घाटित कर देखा तो पहले कलश में सोना, दूसरे में काली मिट्टी, तीसरे के वुश-भूसी और चौथे के कलश में हड्डियाँ देखी। तव वे तीनों भाई वड़े के साथ विवाद करते हुए कहने लगे कि हमें भी सोने की पांती वाँट कर दो! उसके वितरण न करने पर वे अवन्तीपति के न्यायालय में उपस्थित हुए। वहाँ भी उनके विवाद का निपटारा नही हुआ तो वे चारों भाई महाराष्ट्र जनपद मे गए।

कुमार सातवाहन कुलालशाला में मिट्टी के हाथी, धोड़े, रथ, सैनिक आदि नये-नये खिलौने वना कर दुर्ललित वालक्रीड़ा करता हुआ काल-निर्गमन करता था। वे चारों ब्राह्मणपुत्र भी प्रतिष्ठानपत्तन आकर उसी कुलाल चक्रशाला में ठहरे। उन्हें देख कर इंगिताकारकुशल सातवाहनकुमार ने कहा—अहो ब्राह्मणो! आप चिन्तातुर दिखायी देते हो। उन्होंने कहा—सुभग! हमारे मन के अन्दर चिन्ता है, पर आपने कैसे जाना? कुमार ने कहा—इंगित से क्या नहीं जाना जा सकता है? उन्होंने कहा—ठीक है, परन्तु आपके सामने चिन्ता का कारण निवेदन करने से क्या होगा? आप तो बालक है! कुमार ने कहा—वालक भले हूँ, पर मुझसे भी आपका साध्य सिद्ध होगा, अतः चिन्ता का कारण निवेदन करें।

उसके वचन-वैचित्र्य से हृत-हृदय ब्राह्मणों ने अपना निधि-निर्णयार्थ मालवेश परिषद में गमनादि का सारा वृतान्त निवेदन किया। कुमार ने स्मित अधरों से कहा—ब्राह्मणो ! मै आपके झगड़े का निर्णय करूंगा ! सावधान होकर सुनो ! जिसे स्वर्ण वाला कलश दिया वह उसी से निवृत्त हो गया, जिसके कलश में काली मिट्टी निकली वह क्षेत्र-केदारादि ले, जिसके तुष-भूसी निकला वह कोठों में रहा हुआ सभी धान्य स्वीकार करे और जिसके हड्डियाँ निकली वह घोड़े, गाय, भैंस, बैल, दास दासी का स्वामी हो ! यही तुम्हारे पिता का आशय है !

उज्जैन नगर में उनके वाद-निर्णय की बात फैली, राजा ने भी उन्हें वुलाकर कहा—क्या आपका वाद-निर्णय हो गया ? उन्होंने कहा—हाँ स्वामिन् !। राजा द्वारा—"किसने निर्णय किया ?" पूछने पर उन्होंने सातवाहन का सारा स्वरूप सत्य-सत्य बता दिया।

राजा ने यह सुन कर सोचा उस बालक का वुद्धि-वैभव भी अद्भुत है। उसे दैवज्ञ का कथन स्मरण हुआ कि प्रतिष्ठानपुर में उसका राज्य होगा अतः राजा उसे शत्रु मान कर क्षुब्ध मन से उसको मारने का उपाय चिरकाल सोचता रहा। शस्त्रादि प्रयोगों से मारने में अपयश और क्षात्रधर्म की क्षति सोच कर मालवपति ने चतुरंगिणी सेना सजाई और प्रतिष्ठानपत्तन को जाकर घेर लिया। यह देख कर त्रस्त ग्राम्यजन सोचने लगे—क्रुद्ध मालवपति का यह आटोप कोप किस पर हुआ है ? यहाँ न तो कोई राजा है, न कोई ठाकुर और न कोई वीर या वैसा दुर्ग ही है। उन लोगों के इस प्रकार की चिन्ता करते समय मालवेश के दूत ने आकर सातवाहन से कहा— अरे कुमार ! तुम्हारे पर राजा क्रुद्ध है और कल तुम्हें मारेगा अतः तुम्हें युद्धादि उपाय सोचना उचित है ! दूत की वात सुन कर भी वह निर्भयतापूर्वक खेलने में लगा रहा।

इसी वीच परमार्थ ज्ञात कर उसके दोनों मामा दुर्विकल्प त्याग कर पुनः प्रतिष्ठान आ गए थे। उन्होंने परचक्र देख कर वहिन से कहा—वहिन ! जिसने तुम्हे यह पुत्र दिया है उसे ही स्मरण करो, ताकि वही इसका सहायक होगा !

भ्राताओं के कथन से वह भी नागराज के वचनों को स्मरण कर शिर पर घड़ा लेकर गोदावरी में नागह्लद पर गई। नहा कर नागराज की आराधना की। नागराज ने तत्काल प्रत्यक्ष होकर कहा—ब्राह्मणी ! तुमने हमें किस लिए याद किया ? उसके प्रणाम करके सारी वात वताने पर शेषराज ने मेरे प्रताप से तुम्हारे पुत्र का कौन पराभव कर सकता है ?—कहते हुए उसका घड़ा लेकर ह्लद के अन्दर गया और पीयूष कुण्ड से अमृत का घड़ा भर कर उसे ला दिया। उसने कहा—इस अमृत से सातवाहन के वनाये हुए मिट्टी के घोड़े, रथ, हाथ व सैनिक अभिंसिंचित करो जिससे वे सजीव होकर शत्रु सेना को भग्न कर डालेंगे ! यह पीयूष-घट ही तुम्हारे पुत्र को प्रतिष्ठानपत्तन के राज्याभिषिक्त करेगा ! अवसर पर मुझे याद करना ! इसके वाद नागराज अपने स्थान चला गया। वह भी अमृतघट को लेकर अपने घर आई और उस मिट्टी की समृद्ध सेना को सींचा। प्रात.काल दैवशक्ति से वह सेना सचेतन होकर शत्रु सेना के सामने जाकर उसके साथ युद्ध करने लगी।

सातवाहन की सेना ने मालवपति का वल भग्न कर दिया। राजा विक्रमादित्य भी भग कर अवन्ती चला गया। इसके पश्चात् सातवाहन राज्याभिपिक्त हुआ। प्रतिष्टानपुर ने अपनी पूर्व विभूति पुन. प्राप्त की। वहाँ हाट, हवेली, मन्दिर, राजमार्ग, खाई, प्राकार आदि से सुशोभित सुन्दर पत्तन हो गया। सातवाहन ने भी क्रमशः दक्षिणापथ को तापी तट पर्यन्त अनृण करके उत्तरापथ को साध

कर अपना संवत्सर प्रवर्तित किया। वह जैन हुआ, उसने जन-नयनशीतलकारी जिन-चैत्य बनवाये। पचास वीरों ने भी प्रत्येक ने अपने अपने नामाङ्कित जिनालय नगर में कराये।

प्रतिष्ठानपत्तन कल्प समाप्त हुआ, इसकी श्लोक संख्या ४७ है।

•

३४. प्रतिष्ठानपुराधिपति सातवाहन नृप चरित्र

अब प्रसङ्गवश अन्य दर्शनियों के सिद्धांतों में लोकप्रसिद्ध सातवाहन का शेष चरित्र भी कुछ कहते हैं। श्री सातवाहन जब पृथ्वी का पालन कर रहे थे उस समय प्रतिष्ठाननगर में पचास वीर और बाहर भी पचास वीर निवास करते थे। इधर इसी नगर में एक ब्राह्मण का शूद्रक नामक अभिमानी पुत्र था, वह भी दर्प पूर्वक युद्ध-श्रम करता रहता था जो पिता द्वारा अपने कुल के लिये अनुचित बतलाकर निषेध करने पर भी नहीं मानता था।

एक दिन पिता के साथ जाते हुए बारह वर्षीय शूद्रक ने देखा राजा सातवाहन नगर में रहने वाले बापला, खूंदला आदि पचास वीरों के साथ व्यायाम करते हुए बावन हाथ प्रमाण वाली शिला को उठा रहे थे। किसी वीर ने चार अंगुल, किसी ने छः अंगुल और किसी ने आठ अंगुल भूमि से शिला को ऊँची उठाया। राजा ने जानु तक ऊँचा उठा लिया। यह देखकर बल जागृत होने से

शूद्रक बोला—अहो ! क्या आप लोगों में से कोई इस शिला को मस्तक तक नहीं उठा सकता ? उन लोगों ने ईर्ष्यापूर्वक कहा—यदि अपने को समर्थ मानते हो तो तुम्हीं उठाओ ! यह सुनकर शूद्रक ने उस शिला को आकाश में उछाला जो दूर तक ऊँची चली गई। शूद्रक ने कहा—आप लोगों में जो समर्थ हो वह इस गिरती हुई शिला को रोक ले ! सातवाहनादि वीरों ने भयभ्रान्त नेत्रों से उसी से अनुनयपूर्वक कहा—अहो महाबली ! हमारे प्राणों की रक्षा करो ! रक्षा करो ! शूद्रक ने उस गिरती हुई शिला को मुष्टिप्रहार किया जिससे उसके तीन टुकड़े हो गए। उनमें एक टुकड़ा तीन योजन पर जाकर गिरा, दूसरा टुकड़ा नागह्लद में और तीसरा टुकड़ा प्रतोली द्वार के चौरस्ते पर जाकर गिरा जो आज भी वैसे ही लोगों द्वारा देखा जाता है।

शूद्रक के बल से चमत्कृत होकर राजा ने उसे अत्यन्त सम्मान-पूर्वक नगर का आरक्षक नियुक्त कर दिया। अन्य शस्त्रास्त्रों का प्रतिषेध कर उस दण्ड धारण करने वाले का दण्ड ही आयुध बना। वह शूद्रक भी बाहर रहने वाले वीरों को अनर्थ निवारण करने के उद्देश्य से नगर में प्रविष्ट नहीं होने देता था।

एक बार अपने महल के छत पर सोया हुआ राजा सातवाहन शरीर-चिन्ता के लिए उठा। उसने नगर के बाह्य भाग में करुण रुदन सुना तो पराये दुख से दुखी हृदय से वह तलवार लेकर घर से निकल पड़ा। रास्ते में शूद्रक ने देखा और विनयपूर्वक नमस्कार कर अर्द्धमहानिशा में निकल पड़ने का कारण पूछा। राजा बोले—यह नगर के समीप करुण क्रन्दन की ध्वनि सुनाई दे रही है इसका कारण जानने के लिए मै जा रहा हूँ ! राजा के ऐसा कहने पर शूद्रक ने निवेदन किया—देव ! आप प्रतीक्षा करते हुए भवन को अलंकृत करने पधारिये, मैं ही उसकी खोज कर आऊँगा ! ऐसा कह कर राजा को लौटा दिया और स्वयं गगन-ध्वनि के अनुसार

नगर के बाहर जाने लगा। आगे कान लगाकर चलते हुए उसने सुना कि कोई गोदावरी के स्रोत में रो रहा है। शूद्रक परिकरवद्ध होकर तिरता हुआ ज्योंही नदी के बीच में पहुँचा, त्योंही प्रवाह में बहते हुए और रोते हुए एक पुरुष को देखकर वह बोला—अरे! तुम कौन हो? किस लिए रो रहे हो? यह सुनकर वह और भी जोर-जोर से रुदन करने लगा। अत्यन्त आग्रह से पूछने पर वह स्पष्ट बोला—हे साहसिकशिरोमणि! मुझे यहाँ से निकाल कर राजा के समीप ले चलो, जिससे मैं वहाँ अपना वृत्तान्त कहूँ!

उसके ऐसा कहने पर शूद्रक ने उसे उठाने का प्रयत्न किया किन्तु वह उठ न सका। शूद्रक ने सोचा—कहीं नीचे से किसी राक्षस ने न पकड़ रखा हो! इस आशंका से उसने तलवार चलाई तव मात्र शिर को वह ऊंचा उठा पाया। हाथ में आया हुआ शिर छोटा सा था और उसमें से रुधिर झर रहा था। उसे देख कर शूद्रक विषादपूर्ण होकर सोचने लगा—अहो! प्रहार न करने वाले पर भी प्रहार करने वाले मुझको धिक्कार है, मैं शरणागत का घातक हूँ। इस प्रकार आत्मनिन्दा करता हुआ वह वज्राहत के समान क्षण भर के लिए मूर्छित हो गया। तत्पश्चात् चेतना आने पर वह चिरकाल चिन्ता करने लगा कि मै अपनी इस दुश्चेष्टा को को राजा से कैसे निवेदन करूंगा। इस प्रकार लज्जित मन से वहीं काष्ठ की चिता बना कर उसमें अग्नि प्रज्वलित कर ज्यों ही मस्तक को लेकर प्रवेश करने लगा, त्यों ही मस्तक ने कहा—हे महापुरुष! ये साहस आप क्यों कर रहे हैं। मैं तो राहु के समान शिरमात्र ही हूँ! अतः वृथा खेद मत करो! और कृपा कर मुझे राजा के पास ले चलो! उसकी यह वात सुन चमत्कृत चित्त से—यह प्राणी है—ऐसा मानता हुआ प्रसन्नता से शूद्रक उस शिर को रेशमी कपड़े में लपेट कर प्रातःकाल सातवाहन राजा के पास

पहुँचा। नमस्कार किया। राजा ने पूछा—शूद्रक ! यह क्या है ? वह बोला—देव ! यह वही है जिसकी रुदन-ध्वनि श्रीमान् ने रात्रि में सुनी थी। फिर उसने उसका सारा वृतान्त निवेदन कर दिया।

राजा ने उस मस्तक से पूछा—अहो ! तुम कौन हो ? किस लिए यहाँ आना हुआ ? मस्तक ने कहा—महाराज ! आपकी कीर्ति दोनों कानों से सुन कर करुण रुदन के छल से अपने को जतला कर मै आपके पास आया हूँ। आपके दर्शन किए, आज मेरे उभय नेत्र कृतार्थ हुए। राजा ने पूछा—तुम कौनसी कला ठीक ढग से जानते हो ? उसने कहा—देव ! मै संगीत कला जानता हूँ ! फिर राजा की आज्ञा से पहले नहीं गाया हुआ गीत गाने लगा ! उसकी गायन-कला से सारी राजसभा मोहित्त हो गई। वास्तव में वह मायासुर नाम का असुर था और वैसी माया वना कर राजा की रानी, जो अत्यन्त रूपवती थी उसका हरण करने के लिए आया हुआ था। पर यह किसी को पता नहीं लगा। लोगों ने तो शिरमात्र देखने से उसका नाम प्राकृत—लोक भाषा में सीपुला रख दिया। तब से प्रतिदिन उस तुम्बुरु के द्वारा मधुरतर गाते रहने पर उसका सारा स्वरूप महादेवी ने सुना और दासी के द्वारा राजा को निवेदन कर उस शिर को अपने पास मंगवाया। रानी प्रतिदिन उससे संगीत सुनने लगी।

कुछ दिन बाद मायासुर ने अवसर पाकर रानी का अपहरण कर लिया और अपने घण्टावलम्बी नामक विमान में उसे चढा लिया। रानी करुण क्रन्दन करने लगी—हाय, मेरा किसी ने अप-हरण कर लिया, पृथ्वी पर क्या कोई ऐसा वीर है जो मुझे छुड़ा ले ! खुहला वीर ने रानी की यह पुकार सुन कर दौड़ते हुए आकाश में उछल कर उस विमान का घंटा अपने हाथ से दृढ़ता

पूर्वक पकड़ लिया। उसके साहस से विमान स्तब्ध हो गया और आगे नहीं चला। मायासुर ने सोचा—यह विमान आगे क्यों नहीं चल रहा है। फिर ज्यों ही हाथ में घंट को पकड़े उस वीर को देखा, तो उसका हाथ काट डाला। वीर पृथ्वी पर गिर पड़ा और विमान को असुर आगे ले चला।

देवी के अपहरण-वृत्तान्त को राजा ने सुना और ४९ वीरों को आदेश दिया कि यह देवी का किसने अपहरण किया है, खोज करिए! वे लोग पहिले से ही शूद्रक से असूया रखते थे अतः मौका पाकर बोले—महाराज! शूद्रक ही जाने, वही उस शिर को लाया था जिसने देवी का अपहरण कर लिया। राजा ने शूद्रक पर कुपित होकर उसे शूली पर चढाने की आज्ञा दी।

तत्कालीन देशरीति के अनुसार शूद्रक पर रक्त चन्दन का लेप किया गया और उसे शकट में सुलाकर गाढा बाँध कर शूली पर चढ़ाने के लिए ज्यों ही राजपुरुष चले त्यों ही ४९ वीर एकत्र होकर शूद्रक से कहने लगे—हे महावीर! आप रण्डा के समान किस लिए मर रहे हो? "अशुभस्य कालहरणम्" न्याय से राजा से कुछ दिन की अवधि माँगो और देवी का अपहरण करने वाले की सर्वत्र खोज करो! निष्कारण ही क्यों अपने वीरत्व की कीर्त्ति को नष्ट कर रहे हो! उसने कहा—तब राजा के पास जाकर यह बात निवेदन करिए! उन्होंने वैसा ही किया। राजा ने शूद्रक को वापस बुलाया। उसने भी अपने मुख से निवेदन किया—महाराज अवधि दीजिए, जिससे मैं प्रत्येक दिशा में देवी का अपहरण करने वाले की खोज करूँ। राजा ने उसे दस दिन की अवधि दी। शूद्रक के घर उसके दो सहचारी कुत्ते थे। राजा ने कहा—तुम दोनों कुत्तों को जमानत स्वरूप हमारे पास रख दो और स्वयं देवी के अनुसंधानार्थ पृथ्वी पर भ्रमण करो! वह वीर भी आदेश प्रमाण है! कह कर रवाना हो गया।

राजा ने सांकल से बँधे हुए उन दोनों कुत्तों को अपनी शय्या के पायों से बाँध दिया। शूद्रक को चारों ओर पर्यटन करते हुए भी कहीं उसे देवी की वार्ता तक नहीं मिली तो उसने सोचा—"मेरा यह अपयश प्रगट हुआ है, मैं स्वामी-द्रोही गिना जाऊँगा और लोग कहेगे कि देवी का इसी ने अपहरण करवा दिया! जब कहीं भी उसका पता नही लग रहा है तो मुझे अब मरण का ही शरण हो।" इस विचार से उसने काष्ठ को चिता बनाई और उसमें अग्नि प्रज्वलित कर ज्यों ही प्रवेश करने लगा त्यों ही देवाधिष्ठित कुत्तों ने जाना कि हमारा स्वामी निधन को प्राप्त हो रहा है। वे दोनों दैव-शक्ति से सांकलें तोड़कर अविलम्ब वहाँ जा पहुँचे जहाँ शूद्रक ने चिता बनाई थी। उन्होंने दाँतों से केशों को पकड़ कर शूद्रक को चिता से बाहर निकाल लिया। उसने भी अकस्मात् उन कुत्तों को देखकर विस्मित मन से कहा—अरे पापियो! अशुभ के समान आपने यह क्या किया? राजा के मन का विश्वास नष्ट हो जायगा और जानेगा कि जामिनों को भी वह अपने साथ ले गया। दोनों कुत्ते बोले—धैर्य रखिये और हमारी दिखायी हुई दिशा में चलिये! जल्दी मत करिये! ऐसा कह कर वे आगे हो गए। वह भी उनके साथ चला और क्रमशः कोल्लागपुर पहुँचे। वहाँ के महालक्ष्मी देवी के मन्दिर में प्रवेश किया, शूद्रक ने देवी की पूजा कर कुशासन अर बैठे हुए तीन उपवास किए। भगवती महालक्ष्मी प्रत्यक्ष होकर बोली—वत्स! क्या खोज रहे हो। शूद्रक ने कहा—भगवती! सातवाहन राजा की महिषी का पता बतलाइये, वह कहाँ है। किसने अपहरण किया है। श्री देवी ने कहा—सब यक्ष-राक्षस-भूत आदि देव गणों को एकत्र कर यह बात मैं तुम्हें बतलाऊँगी। किन्तु उन सब के लिए तुम्हे बलि-उपहार आदि एकत्र कर रखना चाहिए। जब तक वे बलि-पूजा ग्रहण कर प्रसन्न न बनें तब तक तुम विघ्नों की रक्षा करते रहना।

शूद्रक ने उन देवताओं का तर्पण करने के लिए कुण्ड बना कर हवन करना प्रारंभ किया। सब देवता गण आये और अभिमुख हो अपना-अपना भाग ग्रहण किया। ज्यों ही होम का धुँआ फैला, जहाँ मायासुर था उसने भी लक्ष्मी के आदेश से शूद्रक द्वारा किये गए होम का स्वरूप जाना और अपने भाई कोल्लासुर को होम में विघ्न करने के लिए भेजा। कोल्लासुर अपनी सेना सहित आकाश में आ गया, सभी देवताओं ने आश्चर्यपूर्वक उसे देखा। वे दोनों कुत्ते दिव्य शक्ति से उन दैत्यों के साथ युद्ध करने लगे दैत्यों ने उन्हे मार दिया तब शूद्रक स्वयं युद्ध करने लगा। उसके पास दण्ड के अतिरिक्त दूसरा शस्त्र न होने पर भी मात्र दण्ड से ही उसने बहुत से असुरों को मार डाला। दैत्यों ने उसकी दक्षिण भुजा काट डाली तो वह वाम भुजा से ही दण्ड-युद्ध करने लगा। वाम भुजा के कट जाने से दक्षिण पाँव में दण्ड धारण कर वह युद्ध करने लगा। दैत्यों द्वारा उसे भी काट दिए जाने पर बाँयें पाँव से दण्ड युद्ध किया तो असुरों ने उसे भी काट डाला। शूद्रक अपने दाँतों में दण्ड पकड़ कर जब युद्ध करने लगा तो दैत्यों ने उसका मस्तक भी कांट दिया।

अब आकण्ठ तृप्त देव गणों ने शूद्रक का मस्तक भूमि पर पड़ा देख कर कहा—अहो! अद्भुत भोग देने वाले इस बिचारे का यह क्या हुआ? इस प्रकार सन्ताप करते हुए वे भी लड़ने लगे और कोल्लासुर को मार गिराया। श्री देवी ने अमृत-सिंचन कर शूद्रक को पूर्णाङ्ग बना दिया और जीवित्त कर दिया। देवी ने दोनों कुत्तों को भी जीवित्त कर प्रसन्नतापूर्वक उसे खड्गरत्न दिया और कहा—इससे अजय रहोगे! ऐसा वर दिया।

इसके बाद शूद्रक महालक्ष्मी आदि देवताओं के साथ राजा सातवाहन की रानी को खोजने के लिए सारे भूमण्डल में घूमता हुआ महार्णव में पहुँचा। वहाँ एक ऊँचा वटवृक्ष देखकर विश्राम

के लिए उस पर चढ़ गया। वहाँ उसने पेड़ की शाखा पर लटकते हुए नीचा शिर किए हुए काष्ठ की कील में ऊँचे पाँव रहे हुए पुरुष को देखा। वह जिह्वा फैलाकर पानी में रहे हुए जलचर जीवों को भक्षण कर रहा था, यह उन सभी ने देखा। शूद्रक ने उससे पूछा—तुम कौन हो ? इस प्रकार क्यों लटक रहे हो ? उसने कहा—मैं मायासुर का छोटा भाई हूँ ! मेरा बड़ा भाई कामोन्मादी है, उसने रावण की भाँति सीता जैसी सातवाहन की महिषी को रमण करने की इच्छा से हरण कर लिया है। वह पतिव्रता है, उसे बिल्कुल नहीं चाहती। मैंने भाई से कहा—आपको परदारा का अपहरण करना योग्य नहीं है क्योंकि अपने विक्रय से सारे संसार को आक्रान्त करने वाला रावण भी परस्त्रीरमण की इच्छा से कुलक्षय को प्राप्त हुआ था। मेरे इस प्रकार कहने पर मायासुर क्रुद्ध हो गया और मुझे इस वट की शाखा में टंगाकर इस प्रकार विडम्बित किया है। मैं जिह्वा फैला कर समुद्र में चलने वाले जलचरादि का भक्षण कर जीवन धारण कर रहा हूँ ! यह सुन कर शूद्रक ने कहा—मै भी उन्हीं राजा सातवाहन का शूद्रक नामक सेवक हूं। और उसी देवी की शोध के लिए आया हूं ! उस असुर ने कहा—यदि ऐसा है तो मुझे छुड़ाओ ! जिससे मै तुम्हारे साथ चल कर उस देवी को दिखाऊँ ! मायासुर ने अपने स्थान के चारों ओर लाक्षा का दुर्ग बना रखा है, वह निरन्तर प्रज्वलित रहता है अत: उसे उल्लंघन कर अन्दर जाकर उसे मार कर देवी को लौटाना है !

यह सुनकर शूद्रक ने उसके काष्ठ-बन्धन काट डाले और उसके पीछे-पीछे देवताओं से घिरे हुए प्रस्थान कर दुर्गोल्लंघन पूर्वक उस स्थान में जा पहुँचा। मायासुर देवगणों को देख कर अपनी सेना को साथ लेकर उनसे युद्ध करने लगा। सेना के मर जाने से वह स्वयं मैदान में उतर पड़ा, शूद्रक ने क्रमश: उस

तलवार के द्वारा मायासुर को मार डाला। और उस घंटावलंबी विमान में देवी को चढा कर सब देवगण शीघ्र ही प्रतिष्ठानपुर की ओर प्रस्थान कर गए।

इधर दश दिन की अवधि पूर्ण होते जानकर राजा विचारने लगा–न तो मेरी महादेवी आई और न शूद्रक वीर और न वे दोनों कुत्ते ही वापस लौटे। यह सब विनाशलीला मुझ कुबुद्धि ने ही करवायी। इस प्रकार चिन्ता करते हुए सपरिवार प्राणत्याग की इच्छा से नगर के बाहर उसने चन्दनादिकाष्ठ से चिता तैयार करवायी। ज्योंही वह परिजनसमूह को चिता में डालने लगा त्योंही देवगणों में से एक बधाई देने वाला वहाँ आ पहुंचा और विनयपूर्वक राजा से निवेदन किया––देव ! महादेवी के आगमन से भाग्यशाली हैं ! देव की इस कर्णमनोहर बात को सुन आनद कंद कलित चित्त से राजा ने ज्यों ही ऊँचा देखा—आकाश में देवसमूह और शूद्रक दिखलाई पड़े। शूद्रक और महादेवी विमान से उत्तर कर राजा के चरणों में गिर पड़े। शातवाहन राजा ने आनन्दसहित्त शूद्रक का अभिनन्दन करते हुए उसे अर्द्ध राज्य दिया। राजा, महादेवी के साथ शूद्रक का चारु चरित सुनत्ता हुआ उत्सवपूर्वक नगर में प्रविष्ट हो राज्य-लक्ष्मी भोगने लगा।

इस प्रकार हाल राजा के भाँति-भाँति के अवदान हैं, कितनों का वर्णन किया जा सकता है ? इसी ने गोदावरी नदी के किनारे महालक्ष्मी को स्थापित किया और प्रासाद में उन उन स्थानों में अन्यान्य देवता भी यथायोग्य स्थापित किये। इस प्रकार राजा चिरकाल तक विशाल राज्य का उपभोग करता रहा।

नगर की वणिक-वीथी में कोई काष्ठभारवाहक प्रतिदिन अच्छी लकड़ियाँ लाकर बेचा करता था। किसी दिन वह भार बेचने नहीं आया। वणिक ने उसकी बहिन से पूछा–आज तुम्हारा

भाई गली में क्यों नहीं आया ? उसने कहा---श्रेष्ठिवर ! मेरा भाई देवताओं में रहता है ! वणिक ने कहा---यह कैसे ? वह बोली---कंकण बँधने से लेकर विवाह-प्रकरण तक चार दिन मनुष्य अपने आपको देवताओं के बीच बसता हुआ मानता है, वैसे वैसे उत्सव देखने के कुतुहल से वैसा अनुभव करता है। यह बात राजा तक पहुँची, राजा ने विचार किया—अहो ! क्या मै देवताओं में नहीं रहता ? मै भी चार दिनों के अनवरत विवाहोत्सवमय देवस्वरूप रहूंगा ! यह सोचकर चार वर्णो में जिन-जिन कन्याओं को युवती या रूपवती देखता सुनता, उन्हीं को उत्सवपूर्वक विवाह लाता था।

इस प्रकार बहुत सा समय बीत जाने पर लोगों ने विचार किया—क्या भविष्य में सभी वर्ण वाले लोग निःसन्तान ही रहेगे ? सब कन्याओं के साथ तो राजा ही विवाह कर लेता है। स्त्री के बिना सन्तान कहाँ से होगी ? इस प्रकार लोगों के दुखी होने पर 'विवाह वाटिका' नामक गाँव में रहने वाले एक ब्राह्मण ने पीठजा देवी का आराधना करके निवेदन किया --भगवती ! हमारे संतानों का विवाह कैसे होगा ? देवी ने कहा—ब्राह्मण ! मैं तुम्हारे घर में कन्या के रूप में अवतार लूंगी। जब मेरे लिए राजा प्रार्थना करे तो मुझे राजा को दे देना, शेष मै सब संभाल लूंगी ! वैसा ही हुआ। राजा ने उसे रूपवती सुनकर विप्र से याचना की। वह भी बोला–मैने कन्या दी, किन्तु महाराज वहीं पधार कर मेरी कन्या के साथ विवाह करें ! राजा ने स्वीकार कर लिया। ज्योतिषी के दिए हुए लग्न में राजा विवाह करने के लिए चला और उस गाँव श्वसुर के घर पहुँचा। देशाचार के कारण वर और वधू के बीच में पड़दा डाल दिया गया। अंजलि में खील (लाजा, जँवार की फूली) भर कर ज्यों ही दोनों पड़दा हटा कर एक दूसरे के

शिर पर लाजा विखेरने लगे। फिर हथलेवा होने वाला ही था, राजा ने उसकी ओर देखा त्यों ही वह भयङ्कर रूप वाली राक्षसी सी दिखाई पड़ी। और वह लाजा (जँवार की फूली) खीलें भी कठोर पाषाण के कंकड़ के समान शिर में लगने लगी। राजा ने भी—यह क्या आफत है—विचार करते हुए वहाँ से पलायन कर दिया। वह भी पीछे लगी हुई पत्थर के टुकड़े बरसाती हुई चलने लगी। राजा वहाँ से दौड़ता हुआ अपनी जन्म-भूमि नाग-ह्रद में प्रविष्ट हुआ और वहीं पर मर गया। आज भी वह पीठजा देवी प्रतोली के बाहर अपने मन्दिर में स्थित है।

शूद्रक भी क्रमशः कालिका देवो द्वारा अजारूप बन कर वापी में प्रविष्ट हो करुण शब्द से ठगा गया। वह उसे निकालने के लिए वापो में गया और द्वार पर उस तलवार के तिरछी गिर जाने से छिन्नाङ्ग होकर पञ्चत्व प्राप्त हो गया, क्योंकि महालक्ष्मी ने वर देते समय "इसो तलवार से तुम्हारा अन्त होगा" कह दिया था।

राजा सातवाहन के स्थान पर शक्तिकुमार का राज्याभिषेक हुआ, तब से लेकर आज तक कोई राजा प्रतिष्ठान—वीर क्षेत्र में प्रवेश नहीं करता।

यहाँ जो कुछ असंभव बातें हैं वे अन्य दर्शन में कही गई है। इस प्रकार की असंगत बातें जो हेतु से सिद्ध नहीं होती, उन्हें जैन नहीं मानते।

यह प्रतिष्ठान-कल्प और प्रसंगवश संक्षिप्त सातवाहन-चरित्र श्रीजिनप्रभसूरि ने बनाया। इसकी ग्रन्थ संख्या १६६ और ९ अक्षर ऊपर हैं।

३५. चम्पापुरी-कल्प

दुर्नीति को भंग करने वाले अंग देश जनपद के भूषणरूप प्रधान तीर्थ चम्पापुरी का कल्प कहता हूँ। यहाँ त्रिभुवन-पूज्य बारहवें तीर्थङ्कर श्री वासुपूज्य जिनेश्वर के गर्भावतरण-च्यवन, जन्म, प्रव्रज्या, केवलज्ञान और निर्वाण रूप पाँच कल्याणक हुए हैं।

यहीं श्री वासुपूज्य जिनेन्द्र के पुत्र मघव राजा की पुत्री लक्ष्मी की कुक्षी से आठ पुत्रों के ऊपर रोहिणी नामक पुत्री उत्पन्न हुई। उसने स्वयंवर में अशोक राजा के कण्ठ में वरमाला डाली और उसके साथ विवाह कर पट्टरानी हुई। क्रमशः उसके आठ पुत्र और चार पुत्रियाँ हुई। एक दिन श्री वासुपूज्य स्वामी के शिष्य रूप्य-कुम्भ-स्वर्णकुम्भ के मुख से सुखी होने के हेतु भूतपूर्व जन्म में किये हुए रोहिणी तप को सुन कर उद्यापन विधि से आराधना कर सपरिवार मुक्ति प्रप्त हुई।

यहाँ भूमण्डल के इन्द्र सदृश करकण्डू राजा ने पहिले काद-म्बरी अटवी में कलिगिरि की उपत्यका में रहे हुए कुण्ड नामक सरोवर में श्री पार्श्वनाथ भगवान को छद्मस्थावस्था में विचरते हुए हस्ति-व्यन्तरानुभाव से कलिकुण्ड तीर्थ रूप से प्रतिष्ठापित किया था।

फिर यहाँ सुभद्रा महासती ने तीन विकट पाषाणमय प्रतो-लियो के वन्द कपाट-सम्पुटों को अपने शील माहात्म्य द्वारा कच्चे सूत-तन्तु-वेष्टित चलनी से कुएँ का जल निकाल कर उससे सिंचित कर उद्घाटित किये थे। चारों में से एक प्रतोली—"मेरे जैसी अन्य सच्चरित्रा सती हो, उसके उघाड़ने के लिए वन्द ही

छोड़ देती हूँ"--कह कर राजा आदि लोगों के समक्ष बन्द ही रहने दी। उस दिन से ले कर चिरकाल पर्यन्त जनता ने उसे वैसो ही बन्द देखी। क्रमशः विक्रम संवत् १३६० में लक्षणावती के सुलतान समसदीन ने शंकरपुर दुर्ग के उपयोगी पाषाण लेने के लिए उस प्रतोली को गिरा कर कपाट जोड़ी को भी ले लिया।

यहाँ के दधिवाहन राजा अपनी रानी पद्मावती के साथ उसका दोहद पूर्ण करने के लिए हाथी पर आरूढ़ हो कर अरण्य-विहार करने गये। हाथी के न रुकने पर अरण्य में राजा वृक्ष की शाखा पकड़ कर उतर गया। हाथी आगे चला गया और राजा अपने नगर में आ गया। देवी पद्मावती असमर्थता से उतर न सकी और उस पर चढ़ी हुई अरण्य में गई। हथिनी से उतर कर क्रमशः अरण्य में ही पुत्र-प्रसव किया, वह करकण्डु नामक राजा हुआ। कलिंग में पिता के साथ युद्ध करते माता पद्मावती आर्या ने उसे प्रतिषेध किया। क्रमशः महावृषभ की यौवन, वार्द्धक्य अवस्था को देख कर वोधि पा कर करकण्डु प्रत्येकबुद्ध हो कर सिद्धिगति प्राप्त हुए।

यहीं दधिवाहन राजा की पुत्री चन्दनबाला ने जन्म लिया, जिसने भगवान महावीर स्वामी को कौशाम्बी में सूप के कोणे में रहे हुए उड़द के बाकुले दे कर पाँच दिन कम छः मासोपवास का पारणा द्रव्य क्षेत्र कालभाव अभिग्रह पूर्ण होने पर कराया।

यहाँ एवं पृष्ठचम्पा में प्रभु महावीर ने तीन वर्षाकाल बिताए, समवशरण हुए।

इसी के पास श्री श्रेणिक राजा के पुत्र अशोकचन्द्र अपर नाम कूणिक महाराजा ने पितृशोकवश राजगृह को त्याग कर चम्पक के चारु पुष्पोंसे सुन्दर नवीन राजधानी चम्पा बसाई।

दानवीरों में दृष्टान्तभूत, पाण्डुकुलमण्डन राजा श्री कर्ण का

राज्य भी यहीं था। आज भी श्रृंगार-चतुरिका आदि उनके अवदात स्थान इस नगरी में हैं।

यहाँ सम्यग्दृष्टि सुदर्शन सेठ को दधिवाहन राजा की रानी अभया ने संभोगार्थ उपसर्ग किये। राजा के वचनों से मारने के लिए ले जाने पर अपने निर्दोष शील-सम्पत्ति के प्रभाव से आकृष्ट शासनदेवता के सानिध्य से शूली का स्वर्णमय सिंहासन हो गया। और तीक्ष्ण तलवार भी सुगन्धित पुष्पमाला हो कर मन को आनन्ददायी वन गई।

भगवान महावीर का अग्रश्रावक कामदेव भी यहीं हुआ जो अठारह करोड़ स्वर्ण एवं दश हजार गायों वाले छह गोकुलों का स्वामी था। भद्रा का वह पति था। पौषधशाला में मिथ्यादृष्टि देव द्वारा पिशाच, हाथी, साँप आदि का रूप करके उपसर्ग करने पर भी अक्षुब्ध रहा। समवशरण में भगवान ने स्वयं इनकी प्रशसा की।

यहीं विचरते हुए चौदह पूर्वधर श्री शय्यंभवसूरि ने राजगृह से आये हुए अपने मनक नामक पुत्र को दीक्षित करके श्रुतोपयोग से उसकी छः मास आयु अवशिष्ट ज्ञात कर उसके अध्ययनार्थ पूर्वो से दशवैकालिक सूत्र की रचना की। उनमें आत्म-प्रवाद से छज्जीवणिया, कर्म-प्रवाद पूर्व से पिण्डैषणा, सत्य-प्रवाद पूर्व से वाक्यशुद्धि एवं अवशिष्ट अध्ययन प्रत्याख्यान पूर्व की तीसरी वस्तु से लिए।

यहाँ के निवासी कुमारनन्दी स्वर्णकार ने अपने विभव वैभव के मद से अभिभूत हो तीव्र ज्वाला में प्रविष्ट हो पंचशैलाधिपत्य प्राप्त किया। पूर्व भव के मित्र से बोध पा कर गोशीर्षचन्दन-मय जीवित स्वामी की अलंकारविभूषित देवाधिदेव श्री महावीर स्वामी की प्रतिमा निर्मित की।

यहाँ के पूर्ण भद्र चैत्य में श्री वीर प्रभु ने कहा—जो अष्टापद पर आरोहण करता है वह उसी भव में मोक्षगामी है।

यहाँ श्री वीर प्रभु का उपासक पालित्त नामक वणिक हुआ। उसके समुद्र यात्रा मे जन्मा हुआ समुद्रपाल नामक पुत्र था जिसने किसी अपराधी को मारने के लिए ले जाते देख कर प्रतिबोधित्त मोक्ष प्राप्त किया।

यहाँ के सुनन्द श्रावक ने साधुओं के मल-दुर्गन्ध की निन्दा की और मर कर कौशाम्बी में श्रेष्ठि पुत्र हुआ, व्रत ग्रहण किया। दुर्गन्ध उदीरण होने पर कायोत्सर्ग ध्यान द्वारा देवता को आकृष्ट कर अपने अंग को सुगन्धित कराया।

यहाँ कौशिकार्य शिष्य अंगर्षि रुद्रक ने अभ्याख्यान सविधान के और सुजात्त प्रियंगु आदि कई संविधानों को बनाया।

इत्यादि नाना प्रकार के संविधानक रत्न प्रकटित नाना वृत्त-निधान-घटनाओं वाली यह नगरी है। इस नगरी की प्राकार-भित्ति को प्रिय सखी की भाँति प्रतिक्षण सर्वाङ्ग आलिङ्गन करती पवित्र घन रसपूरितान्तर वाली उत्तम नदी है।

उत्तमोत्तम नर-नारी रूपी मुक्तामणि को प्रसव करने में शुक्ति के सदृश यह नगरी विविध अद्भुत वस्तु शालिनी मालिनी जयवन्त है।

भगवान वासुपूज्य स्वामी की जन्मभूमि को विद्वान लोग उनकी भक्तिपुरस्सर स्तवना करते हैं। श्री जिनप्रभ सूरि ने चम्पा नगरी का यह कल्प कहा।

श्री चम्पापुरी का कल्प समाप्त हुआ। इसकी ग्रन्थ-श्लोक संख्या ४७ है।

■

३६. पाटलिपुत्रनगर-कल्प

श्री नेमिनाथ भगवान को नमस्कार करके अनेक पुरुष-रत्नों के जन्म से पवित्रित पाटलिपुत्र नामक नगर का कल्प प्रस्तुत करता हूँ।

पूर्वकाल में महाराजा श्रेणिक का निधन होने पर उसके पुत्र कूणिक ने पितृशोक से चम्पापुरी नई बसाई। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र उदायि चम्पा की राजगद्दी पर बैठा। वह भी अपने पिता के क्रीडास्थान-राजसभा-शयनागार-भोजनालय आदि स्थानों को देखकर अत्यन्त शोकाकुल हो जाता था। तब अमात्य लोगों की अनुमति से नया नगर बसाने के लिए नैमित्तिक लोगों को स्थान-गवेषणार्थ आदेश दिया। वे सर्वत्र उन स्थानों को देखते हुए गंगा-तट पर गये। वहाँ पाडल कुसुम वाले पाटलि वृक्ष को देखकर उसकी शोभा से चमत्कृत हुए। उसकी शाखा पर बैठे हुए चापपक्षी के मुँह में कीटकादि जन्तु स्वयमेव आकर गिरते देखकर सोचा—अहो! इस चाष पक्षी के मुँह में स्वयं कीड़े आकर गिर रहे है तो इस स्थान पर नगर बसाने से राजा को स्वयं लक्ष्मी प्राप्त होगी! उन्होंने राजा से विज्ञप्ति की। वह भी अत्यन्त प्रसन्न हुआ। वहाँ एक वृद्ध नैमित्तिक ने कहा—देव! यह पाडल वृक्ष साधारण नहीं है। पूर्वकाल में ज्ञानियों ने कहा है कि—

"महामुनि की खोपड़ी में उत्पन्न यह पवित्र पाटल वृक्ष है, विशेष इसका मूल जीव एकावतारी है।"

राजा ने कहा—वे महामुनि कौन? नैमित्तिक ने कहा—देव! सुनिये! उत्तर मथुरा में रहने वाला देवदत्त नामक वणिक पुत्र एक बार पर्यटन करने के लिए दक्षिण मथुरा गया। वहाँ जयसिंह

नामक वणिक पुत्र के साथ उसकी मित्रता हो गई। वह एक बार उसके घर भोजन करने गया तो थाल में भोजन परोस कर पंखा झलकर हवा करती हुई उसकी अन्निका नामक बहिन के सौन्दर्य को देखकर उसमें अनुरक्त हो गया और दूसरे दिन चरों को भेज-कर जयसिंह से अन्निका की याचना की। उसने कहा—मैं अपनी बहिन को उसे दूँगा जो मेरे घर से दूर न हो और जब तक उसके सन्तान जन्मे मैं उन्हें प्रतिदिन देख सकूँ। इस लिए तव तक यदि वह मेरे घर रहे तो मैं उसे अपनी वहिन दूँगा। देवदत्त के स्वीकार करने पर शुभ मुहूर्त्त में उनका विवाह कर दिया।

देवदत्त उसके साथ भोग भोगते हुए वहाँ रहने लगा। एक दिन उसके पास अपने माता-पिता का पत्र आया, जिसे पढकर उसके नेत्रों में अश्रु-वर्षा होने लगी। कारण पूछने पर भी न बोला तो अन्निका ने स्वयं पत्र लेकर पढ़ा। उसमें माता पिता ने लिखा था—बेटा! हम दोनों वृद्ध हो गए, मृत्यु निकट है, यदि हमें जीते देखना चाहते हो तो शीघ्र आ जाना! उसने पति को आश्वासन देकर अपने भाई को हठ छोड़ने की प्रार्थना की। और पति के साथ उत्तर मथुरा को जाते उस सगर्भा ने पुत्र जन्म दिया। देवदत्त के "इसका नामकरण पिताजी करेंगे" ऐसा कहने पर परिजन लोग उस बालक को 'अन्निका पुत्र' नाम से पुकारने लगे। क्रमशः देवदत्त अपने घर पहुँचा। माता पिता को नमस्कार कर उसने उन्हें पुत्र को अर्पण किया। उसका नाम संधीरण रखा तो भी अन्निकापुत्र नाम ही प्रसिद्ध हुआ।

अन्निकापुत्र ने बड़े होकर तरुणावस्था में भोगों को तृणवत् छोड़कर जयसिंहाचार्य के पास दीक्षा ग्रहण कर ली और गीतार्थ होकर आचार्य पद प्राप्त किया।

एक बार वृद्धावस्था में विचरते हुए अन्निकापुत्राचार्य पुष्प-भद्रपुर पहुंचे। वहाँ पुष्पकेतु राजा और पुष्पवती रानी के पुष्प-

चूल, पुष्पचूला नामक पुत्र-पुत्री युगल थे। वे दोनों साथ-साथ वढ़ते-खेलते परस्पर अत्यन्त प्रीति वाले हो गए। राजा ने देखा इन दोनों का वियोग कराने से निश्चय ही ये जीवित नहीं रहेंगे। और मैं भी इनका विरह नही सहूँगा, अतः इनका परस्पर विवाह कर दूं तो अच्छा हो, यह विचार कर मंत्री-मित्र और नागरिकों से उसने छलपूर्वक पूछा—यदि अन्तःपुरमें रत्न उत्पन्न हो तो उसका स्वामी कौन ? उन लोगों ने कहा—

देव ! अन्तःपुर का तो कहना ही क्या ? जिस देश में रत्न उत्पन्न हो उसे राजा स्वेच्छानुसार विनियुक्त करे, इसमें किसी को क्या आपत्ति है।

यह सुनकर राजा ने अपना अभिप्राय कहा। महारानी के मना करने पर भी राजा ने उनका संवंध घटित कर दिया। दोनों पति-पत्नी सांसारिक भोग करने लगे। रानी ने पति के अपमान से विरक्त होकर व्रत ग्रहण किया और स्वर्ग में देव हो गई।

राजा पुष्पकेतु का जीवन अध्याय शेष होने पर पुष्पचूल राजा हुआ। देव ने अवधिज्ञान प्रयोग से उसका अकृत्य जान कर पुष्पचूला को स्वप्न में नरक और वहाँ के दुख दिखलाये। उससे प्रबुद्ध होकर भय से पति को सारा निवेदन किया, उसने शांति के उपाय किये। वह देव प्रति रात्रि में उसे नरक दिखाता था। राजा ने समस्त तीर्थिक लोगों को वुलाकर पूछा—नरक कैसे होते है ? किसी ने गर्भावास को, किसी ने कारावास को, किसी ने दारिद्रय को और किसी ने परतन्त्रता को नरक वतलाया। रानी उनके विसंवादी वचनों को सुनकर मुख मोड़कर वैठ गई।

राजा ने अन्निकापुत्र आचार्य को वुलाकर उन्हें पूछा। उन्होंने जैसा रानी ने देखा था, वैसा ही नरक स्वरूप वतलाया। रानी ने कहा—भगवन् ! आपने भी क्या स्वप्न देखा है, अन्यथा

यह कैसे जानते हैं ? सूरि महाराज ने कहा—भद्रे ! जिनागमों से सब कुछ मालूम होता है ! पुष्पचूला ने कहा—भगवन् ! किस कर्म से नरक प्राप्त होते हैं ? गुरु महाराज ने कहा—भद्रे ! महा आरंभ-परिग्रह और गुरुविरोधी होकर पञ्चेन्द्रियवध—मांसाहार से प्राणियोंका नरक पतन होता है।

क्रमशः देव ने उसे स्वप्न में स्वर्ग दिखाये। राजा ने उसी प्रकार पाखण्डियों से पूछा और उनके परस्पर-विरोधी विरोधी वचन पाकर उन्हे विसर्जित कर आचार्य महाराज से स्वर्ग का स्वरूप पूछा। उन्होंने यथातथ्य कहा और रानी के पूछने पर स्वर्ग-प्राप्ति का कारण सम्यक्त्व मूल गृहस्थ और यति धर्म बतलाया। लघुकर्मा रानी प्रतिबोध पाई। उसने राजा से दीक्षा के लिए अनुज्ञा माँगी। उसने कहा—मेरे घर से ही भिक्षा ग्रहण करो तो दीक्षा लो ! उसने राजा के वचनों को स्वीकार कर आचार्य महाराज के पास उत्सवपूर्वक शिष्यत्व स्वीकार किया और गीतार्थ बनी।

एक बार आचार्य महाराज ने श्रुतोपयोग से भावी दुर्भिक्ष ज्ञात कर गच्छवासी साधुओं को देशान्तर भेज दिया और स्वयं जंघा बल क्षीण होने से वहीं रहे। पुष्पचूला साध्वी अन्तःपुर से आहार-पानी लाकर गुरु महाराज को देती थी।

गुरु-शुश्रुषा भाव प्रकर्ष से क्रमशः उसने क्षपकश्रेणि आरोहण कर केवलज्ञान उत्पन्न किया, तो भी वह गुरु महाराज के वैयावृत्य से निवृत्त नहीं हुई। गुरु महाराज ने भी जहाँ तक उसका केवली होना नहीं जाना, वहाँ तक उसका पूर्वं प्रयुक्त विनय चलता ही रहा। गुरु महाराज की जब जैसी रुचि होती, वह उसी प्रकार का अन्नादि लाकर देती थी। एक बार वर्षा के समय भी वह आहार ले आई। गुरु महाराज ने कहा—वत्से ! तुम श्रुतज्ञा होकर वर्षा में कैसे आहार लाई ? उसने कहा—भगवन् ! जहाँ अचित्त अप्काय

था वहीं से लाई हूँ, अतः प्रायश्चित्त का कोई प्रश्न नहीं। गुरु महाराज ने कहा—छद्मस्थ होकर कैसे जाना ? उसने कहा—मुझे कैवल्य है ! तब मैंने केवली की आशातना की, मेरा दुष्कृत्य मिथ्या हो ! ऐसा कहते हुए गच्छाधिप ने पूछा कि—मैं सिद्ध हूँगा कि नहीं ? केवली ने कहा—अधृति न करें, आपको गंगा पार होते समय केवलज्ञान होगा ! तब गंगा पार होने के लिए सूरिजी नौका में बैठे। वे जिधर-जिधर बैठते उधर ही नौका डूबने लगती, फिर बीच में बैठने से सारी नौका डूबने लगी। लोगों ने सूरिजी को नदी में फेंक दिया। दुहागिन बना देने से वैर से पूर्व भव की पत्नी जो व्यन्तरी हुई थी—ने जल में शूली पर रख लिया। शूली पर भी उन्होंने "मेरे से अप्काय जीवों की विराधना हो रही है"—इस आत्म-पीड़ा से क्षपक श्रेणी आरोहण कर अन्तः-कृत केवली होकर सिद्धि प्राप्त की। निकटवर्त्ती देवों ने उनकी निर्वाण महिमा की। अतः वह तीर्थ "प्रयाग" नाम से जगत्प्रसिद्ध हुआ। जहाँ प्रकृष्ट याग-पूजा हो वह प्रयाग, यह अन्वयार्थ है। शूली पिरोने की गतानुगतिकता से पर दर्शनी लोग आज भी अपने अंग पर करोत दिलाते हैं। वहाँ के वट वृक्ष को तुर्कों द्वारा काट डालने पर भी वार-वार उग जाता है।

सूरिजी की खोपड़ी के दो टुकड़े होने पर भी जल की लहरें उन्हें किनारे ले गई। सीप की भाँति इधर-उधर तैरते नदी तट के किसी गुप्त विषम प्रदेश में अटक कर रह गई। उस खोपड़ी में कभी पाटल वृक्ष का बीज गिर कर उगा। और उसे भेद कर गर्दन के दक्षिण ओर यह विशाल पाटल वृक्ष हो गया। इस पाटल वृक्ष का प्रभाव चाप पक्षी पर भी है, अतः यहाँ नगर बसाइये। शिवा के शब्द पर्यन्त सूत्र दीजिये ! राजा के आदेश से नैमित्तिकों ने पाटल वृक्ष के पूर्व से पश्चिम को, फिर उत्तर को

फिर पुनः पूर्व को और फिर दक्षिण को शिवा शब्दावधि जाने पर सूत्र डाल दिया।

इस प्रकार चौकोर नगर का सन्निवेश हो गया। उस अंकन किये हुए प्रदेश में राजा ने नगर वसाया। वही पाटल वृक्ष के नाम से पाटलीपुत्र नगर और विविध कुसुम वाहुल्य से कुसुमपुर नाम भी रूढ हुआ। उसमें राजा ने नेमिनाथ भगवान का चैत्य वनवाया। गजशाला, अश्वशाला, रथशाला, प्रासाद, सौध, प्राकार, गोपुर, पण्यशाला, सत्रागार, पौषधशाला से रम्य उस नगर में उदायि राजा ने चिरकाल तक जैनधर्म पालन करते हुए राज्य किया।

हत्यारे (छद्मवेशी साधु) ने पौषध में रहे हुए राजा उदायि को स्वर्ग का अतिथि वना दिया, तब वहाँ नापित-गणिका का पुत्र नन्द, भगवान महावीर के निर्वाण के साठ वर्ष बीतने पर राजा हुआ। उसके वंश में सात नन्द राजा हुए फिर नौवें नन्द-राज के परमार्हत् कल्पक का वंशज शकडाल मंत्री हुआ। उसके दो पुत्र स्थूलभद्र और श्रीयक थे एवं यक्षा, यक्षदत्ता, भूता, भूतदत्ता, एणा, रेणा, वेणा नामक सात पुत्रियाँ थीं जो क्रमशः एक से सात बार श्रुतपाठिनी स्मृति वाली हुई।

उसी नगर में कोशा वेश्या और उसकी वहिन उपकोशा भी हुई।

वहीं चाणक्य मंत्री ने नन्द को मूल से उखाड़ कर मौर्यवंशी चन्द्रगुप्त को स्थापित किया। उसी के वंश में विन्दुसार, अशोकश्री, कुणाल और उसका पुत्र त्रिखण्ड भरताधिप परमार्हत, अनार्य देशों में भी श्रमण विहार प्रवर्त्तन करने वाला महाराजा संप्रति हुआ।

समस्त कला-कलापज्ञ मूलदेव, महा धनिक सार्थवाह अचल, गणिकारत्न देवदत्ता भी आगे वहीं हुए।

कौभीषण गोत्र के उमास्वाति वाचक,—जो पाँच सौ संस्कृत प्रकरणों की रचना से प्रसिद्ध हैं—ने यहीं तत्त्वार्थधिगम की सभाष्य रचना की। विद्वानों के परितोष के लिए वहाँ चौरासी वादशालाएँ बनी हुई थी।

वहाँ ऊँची तरंगों से गगनाङ्गणोत्संगित महानदी गंगा प्रवाहित है। उसके उत्तर दिशा में निकट ही विपुल बालुका स्थल है जहाँ पर चढ़कर कल्की और प्रातिपदाचार्य प्रमुख संघ का सलिल प्लवन से निस्तरण हुआ।

वही कल्की राजा व उसके वंशज धर्मदत्त, जितशत्रु, मेघघोषादि होंगे। वही नंद राजा के ९९ द्रव्य कोटि, पाँच स्तूप अन्तर्निहित विद्यमान है। जिन्हे लक्षणावती का सुलतान धन प्राप्त करने की इच्छा से उन-उन उपक्रमों को कर लड़कर नष्ट हो गया ऐसा जाना गया है।

यहीं श्री भद्रवाहु, महागिरि, सुहस्ति, वज्रस्वामी आदि युगप्रधान विचरे और प्रातिपदाचार्यादि विचरेगें।

यहीं महाधनिक धन सेठ की पुत्री रुक्मिणी श्री वज्रस्वामी को वरण करना चाहती थी जिसे निर्लोभ-चूडामणि उन आचार्य भगवान ने प्रतिबोध दे प्रर्वाजित किया।

. यहीं महर्षि सुदर्शन सेठ की अभया रानी ने व्यन्तरी होकर उपसर्ग किये, पर वे अक्षुब्ध रहे।

यहीं स्थूलिभद्र महामुनि ने षड्रसयुक्त आहार करते हुए कोशा की चित्रशाला में मदन का मद-मर्दन कर वर्षा काल चातुर्मास किया। सिंहगुफावासी मुनि भी उनकी स्पर्द्धा से वहीं आया और कोशा ने उससे लायी गई रत्नकम्बल को नाले में फेंक कर प्रतिवोध दे पुन. उसे चारित्र लक्ष्मी अङ्गीकार कराई।

वहीं बारहवर्षी दुष्काल पड़ने पर गच्छ को देशान्तर भेजने

पर श्री सुस्थिताचार्य के दो क्षुल्लक शिष्यों ने आँखों में अदृश्याञ्जन लगा कर चन्द्रगुप्त राजा के साथ कितने ही दिनों तक भोजन किया। उसके बाद गुरु के प्रत्युपलंभादि से विष्णुगुप्त की भाँति उनका निर्वाह किया।

वहाँ श्री वज्रस्वामी ने नगर के नर-नारियों के संक्षोभ से रक्षणार्थ पहिले दिन साधारण रूप बनाया। दूसरे दिन देशना-रस-मुग्ध लोगों से—अहो भगवन् का रूप गुणानुरूप नहीं है—ऐसा सुनकर उन अनेक लब्धि-सम्पन्न आचार्यमहाराज ने अपना सहज अद्वितीय रूप बनाकर स्वर्णमय सहस्र दल पर बैठकर देशना दी जिससे राजा आदि जनता को प्रमुदित किया।

उसी नगर में सप्रभावातिशय वाली मातृदेवता थी, जिसके प्रभाव से उस नगर को दूसरों के लिए हठ करके भी लेना अशक्य था। चाणक्य के वचन से उसे उखाड़ देने पर फिर जनता ने मातृमण्डल में चन्द्रगुप्त और पर्वतक को पकड़ लिया।

इस प्रकार अनेक संविधान निधान उस नगर में अठारह विद्या, स्मृति-पुराण, भरत वात्स्यायन और चाणक्य रूप त्रिरत्न मंत्र, यंत्र-तंत्र विद्या में, रसवाद, धातु-निधिवाद, अञ्जन-गुटिका, पाद प्रलेप, रत्नपरीक्षा, वास्तुविद्या, पुरुष-स्त्री, गज, अश्व, वृषभादि लक्षण, इन्द्रजालादि ग्रन्थों में, काव्यों में निपुणता वाले और सुबह उठते ही नाम कीर्त्तन करने योग्य पुरुष रहते थे।

आर्यरक्षित भी इसी स्थान पर चौदह विद्याओं का अध्ययन कर के दशपुर आये।

यहाँ ऐसे धनाढ्य निवास करते थे कि जो हजार योजन जाने में जितने हाथी के पद-चिह्न हों उन्हें प्रत्येक को हजार सोनैयों से परिपूर्ण कर सकते थे। और तिलों के आढक (माप) बोने पर ऊगने से जितने तिल फलें उतनी हजार स्वर्ण-मुद्राएँ घर

मे थीं। दूसरे धनाढ्य ऐसे थे जिन के घर एक दिन के उत्पन्न गाय के मक्खन से मेघ वृष्टि प्रवहित पहाड़ी नदी के जल पूर को बाँध सकते थे।

एक दिन में जन्मे हुए नव किशोरों के स्कन्ध केशों द्वारा पाटलिपुत्र नगर को चारों ओर से वींटा जा सकता था।

किसी की हवेली में दो प्रकार के शालि रत्न भरे रहते थे जो एक शालि बीज को बोने पर भिन्न-भिन्न शालिबीज उत्पन्न होते थे। दूसरा गर्दभिका नामक शालि-धान्य था जो बार-बार काटने पर पुनः पुन: उगता था।

गौड़ देश के भूषण पाटलिपुत्र-कल्प की रचना आगम से श्री जिनप्रभ सूरि ने की।

इसकी ग्रन्थ-संख्या १२५ और १९ अक्षर ऊपर है।

■

३७. श्रावस्तीनगरी-कल्प

श्री सम्भवनाथ जिनेश्वर को नमस्कार कर के दुःखरूपी सरिता को तरने में नौका के सदृश सकल सुखों को उत्पन्न करने वाली श्रावस्ती नगरी का संक्षिप्त कल्प कीर्त्तन करता हूँ।

अगण्य गुणगण वाले इसी दक्षिणार्द्ध भारतवर्ष में कुणाला (जनपद) में श्रावस्ती नामक नगरी वर्त्तमान काल में 'महेठ' नाम से प्रसिद्ध-रूढ़ है। वहाँ आज भी गहन घन वन के मध्य स्थित श्री

सम्भवनाथ प्रतिमा विभूषित गगनचुम्बी शिखर और पार्श्व स्थित जिनबिम्बमण्डित देवकुलिका से अलंकृत, प्राकारपरिवृत जिनालय विद्यमान है। उस चैत्य के द्वार के अनतिदूर वल्लि उल्लसित अतुल्य पल्लवों की स्निग्ध छाया वाले बड़ी-बड़ी शाखाओं से अभिराम रक्त अशोक के वृक्ष दिखाई देते है। उस जिनालय की प्रतोली के कपाट संपुट माणिभद्र यक्ष के प्रभाव से सूर्यास्त होते ही स्वयमेव बन्द हो जाते थे और सूर्योदय होते ही अपने आप खुल जाते थे।

एक वार दुर्ललित काल के प्रभाव से अलाउद्दीन सुलतान के हब्बस नामक मल्लिक ने बहराइच नगर से आ कर प्राकार-दीवालें, कपाट और कतिपय प्रतिमाओं को भी भग्न कर डाला। दूषम काल में अधिष्ठायक देव भी मन्द प्रभाव वाले हो जाते है। तथा यात्री-संघ के आने पर न्हवण-महोत्सव के समय उसी चैत्य के शिखर पर एक चित्रक—चीता आ कर बैठ जाता है जो किसी को भी भय नहीं करता। मंगल प्रदीप होने पर स्वस्थान चला जाता है।

इस नगरी में बौद्धायतन है जहाँ समुद्रवंशीय करावल्ल नरेन्द्र के कुलोत्पन्न राजा लोग बौद्ध भक्त हैं। वे आज भी अपने देव के समक्ष अलंकृत और विभूषित पलाण किया हुआ महातुरंग चढ़ाते हैं। स्वसम्पदा से भगवान बुद्ध ने यहीं महाप्रभावी जांगुली विद्या प्रकाशित की थी।

यहाँ नाना प्रकार के चावल उत्पन्न होते हैं। उन सब चावलों की जाति के एक-एक कण यदि एक बड़े कटोरे में डाले जाँय तो वह शिखा पर्यन्त भर जाता है।

यहाँ भगवान सम्भवनाथ स्वामी के च्यवन-जन्म-दीक्षा और केवलज्ञान कल्याणक हुए, जिन्हें सुरासुर नर भुवन मन रंजन करने वाले मनाये गये।

कौशाम्बीपुरी में उत्पन्न जितशत्रु नृपसचिव काश्यप पुत्र यक्षा कुक्षी सम्भूत कपिल महर्षि हुए। पिता के वियोग होने पर इसी नगरी में पिता के मित्र इन्द्रदत्त उपाध्याय के पास विद्याध्ययनार्थ आये और शालिभद्र सेठ की दासी के वचनों से दो मासा सोने के लिए याचना करते क्रमश: स्वयं बुद्ध हुए। एवं पांच सौ चोरों को प्रतिबोध दे कर सिद्ध हुए।

यहीं पाँच सौ श्रमण और एक हजार आर्याओं से परिवृत प्रथम निह्नव जमालि तिन्दुग उद्यान में रहे। कुम्भकार ढँक ने पहले अपनी शालामें स्थित भगवान की पुत्री प्रियदर्शना साध्वी को साडी के एक प्रदेश में अंगार छुआ कर भगवान महावीर के वाक्य "कयमाणे कडे" को मान्य कराया। उसी ने सब साधु-साध्वियों को प्रतिबोध दे कर स्वामी के पास भेजा, एक जमालि ही विप्रतिपन्न रहा।

यहीं तिन्दुक उद्यान में केशीकुमार श्रमण के पास गणधर भगवान गौतम स्वामी ने कोष्टक उद्यान से आ कर परस्पर संवाद किया और पंचयाम धर्म स्वीकार कराया।

भगवान महावीर यहीं एक वर्षाकाल विविध खण्ड-प्रतिमा धारण कर रहे। शक्रेन्द्र ने पूजा की, विचित्र प्रकार के तप किये।

यहाँ जितशत्रु-धारिणी के पुत्र स्कन्दकाचार्य उत्पन्न हुए जिन्हें कुम्भकारकड़ नगर में पालक ने पाँच सौ शिष्यों सहित घाणी में पिला दिया था।

यहीं जितशत्रु राजा का पुत्र भद्र प्रव्रजित हो कर प्रतिमा धारण कर विचरते हुए शत्रु-राज्य में गया और उसे चोर समझ कर राज-पुरुषों ने पकड़ कर उसके अंग-छेदन कर क्षार देने के लिए कठोर दर्भ से बींट दिया। वे मुक्त और सिद्ध हुए।

राजगृहादि की भाँति इस नगरी में भी ब्रह्मदत्त का परिभ्रमण हुआ था।

यहीं अजितसेनाचार्य का शिष्य क्षुल्लककुमार जननी-महत्तरा, आचार्य और उपाध्याय के कथन से बारह-बारह वर्ष द्रव्य श्रमणत्व में रहा। नाटक देखते हुए "सुट्ठु गाइयं सुट्ठु वाइयं" इत्यादि गीतिका सुन कर युवराज, सार्थवाह पत्नी और मंत्री के साथ प्रतिबोधप्राप्त हुआ।

इस प्रकार अनेक संविधानक रत्नों की उत्पत्तिरूप यह भूमि रोहणाचल जैसी है। जिनप्रवचन की भक्ति से जिनप्रभसूरि जी ऐसा कहते है कि श्रावस्ती महातीर्थ का यह कल्प विद्वान लोग पढ़ें।

श्रावस्ती नगरी का कल्प समाप्त हुआ। इसकी ग्रंथ-संख्या ४२ है।

•

३८. वाराणसीनगरी-कल्प

तत्त्व बतलाने वाले और सम्पूर्ण विघ्नों को दूर करने वाले श्री सुपार्श्व और श्री पार्श्वनाथ भगवान को नमस्कार करके उत्तम कल्पनाओं से भरा हुआ वाराणसी तीर्थ-रत्न का कल्प कहता हूं।

इसी दक्षिणार्द्ध भरत के मध्य खण्ड में काशी जनपद के अलङ्कारस्वरूप उत्तरवाहिनी त्रिदशवाहिनी—गंगा से अलंकृत धन-कनक-रत्नों से समृद्ध वाराणसी नामक नगरी अद्भुत गौरव की निधान है। वरणा और असि नाम की दोनों ही नदियाँ यहाँ गंगा में आकर मिलने से वाराणसी नाम निरुक्ति से प्रसिद्ध है।

यहाँ सातवें जिनेश्वर श्री सुपार्श्वनाथ ने इक्ष्वाकु-प्रतिष्ठ नरेश्वर की रानी पृथ्वी देवी की कुक्षी में अवतरित हो जन्म लिया। तीन भुवन के लोगों से वादित यश पटह वाले, स्वस्तिक लाछन विराजित दो सौ धनुष की कंचनवर्णी काया वाले प्रभु ने क्रमश: राज्य-सुख अनुभव कर सांवत्सरिक दान देकर सहस्राम्रवन में दीक्षा लेकर छद्मस्थ अवस्था में नौमास विचर कर केवलज्ञान प्राप्त किया और समेत शिखर गिरि पर मुक्त हुए !

तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ इक्ष्वाकु वंश के राजा अश्वसेन के पुत्र और वामा देवी की कुक्षी से जन्मे। उनका सर्पलांछन व नौ हाथ का ऊँचा नीलवर्ण वाला शरीर था। उन्होंने आश्रमपदोद्यान में राजकुमार अवस्था में ही चारित्र लेकर केवलज्ञान प्रकट कर उसी सम्मेत शिखर गिरि पर शैलेसीकरण करके सिद्ध हुए। इन्ही भगवान के कुमारावस्था में मणिकर्णिका पर पञ्चाग्नि तप करने वाले कमठ ऋषि की भविष्य में होने वाली विपत्त को जानते हुए भी काष्ठ के अन्दर जलती हुई ज्वालाओं से अधजले सर्प को दिखाकर माता-पिता के कुपथ का भी निरसन कर दिया।

यहीं काश्यप गोत्रवाले चतुर्वेदी षट्कर्म कर्मठ और समृद्ध युगल भ्राता जयघोष और विजयघोष नामके द्विजश्रेष्ठ थे। एक बार जयघोष गंगा में स्नान करने गया वहाँ पर साँप के द्वारा ग्रसे जाते हुए मेंढक को देखा और सर्प को उलल के द्वारा उठाकर भूमि पर पटका हुआ देखा। उलल सर्प को दवा कर वैठा था और सर्प वैसी अवस्था में भी मेंढक का आस्वादन कर रहा था। मेंढक चिल्ला रहा था और सर्प भी चीत्कार कर रहा था। इसे देखकर वह प्रतिबोध को प्राप्त हुआ। दीक्षा लेकर क्रमश: एक रात्रि की प्रतिमा स्वीकार कर विचरते हुए पुन: इसी नगरी में आया। मास-क्षमण के पारने के दिन यज्ञपाटक में प्रवेश किया। वहाँ पर भिक्षा

न देने की इच्छा वाले विप्रों ने उन्हें प्रतिषेध किया। तब श्रुत में कही हुई अभिचर्या का उपदेश देकर भाई और अन्य विप्रों को प्रतिबोध दिया। वैराग्यवान् भाई विजयघोष ने दीक्षा ली, दोनों मोक्ष गए।

यहाँ नन्द नामक नाविक ने तर्पण ग्रहण करने की इच्छा से मुमुक्षु धर्मरुचि की विराधना की। उनके हुंकार से भस्म होकर क्रमशः सभा में गृहकोकिला, अमृतगंगा के तीर पर हंस और अंजनगिरि पर सिंह के भव पाये। और उन्हीं अनगार की तेजोलेश्या से मर कर इसी नगरी में ब्राह्मण हुआ, वही मर के फिर राजा हुआ। जातिस्मरण ज्ञान हुआ तब आधा श्लोक बनाया। इसी दिन वहीं आये हुए उन मुनि के समस्या पूर्ण करने से उन्हे पहचान कर अभय याचना पूर्वक क्षमा माँगी और परम श्रावक हो गया। धर्मरुचि क्रमशः सिद्धि को प्राप्त हुए।

वह समस्या यह थी—

गंगाए नाविओ नन्दो सभाए घरकोइलो।
हंसो मयंग तीराए सोहो अंजण पव्वए॥ १॥
वाराणसी ए वडुओ राया तत्थेव आयओ।
ए एसिं घायगो जोउ सो इत्थेव समागओ॥ २॥

[गंगा में नाविक नंद, सभागृह में गृहकोकिला, मयंग तीर पर हंस तथा अंजन पर्वत पर सिंह फिर वाराणसी में ब्राह्मणपुत्र और वहीं पर राजा बना। इनका जो घातक बना वह भी यहाँ आ गया]।

इसी नगरी के शत्रु राजा की सेना द्वारा वेष्टित होने पर संवाहन राजा के एक हजार कन्याओं से अधिक होने पर भी रानी के गर्भ में रहे हुए अंगवीर ने नगरी की रक्षा की।

यहाँ पर वल नामक मातंग ऋषि अमृतगंगा के तीर पर जन्मे और तिन्दुक उद्यान में रहे। उन्होंने गण्डी तिन्दुक यक्ष को अपने गुण गणों से आकृष्टहृदय वनाया। कौशलिक राजा की पुत्री भद्रा ने मलक्लिन्न ऋषि को देख कर उन पर थूक दिया। तदनन्तर उसी यक्ष ने मुनि के शरीर में प्रविष्ट होकर उसके साथ विवाह किया। मुनि ने उसे छोड़ दिया तव रुद्रदेव ने उसे यज्ञ-पत्नी वनाया। मासक्षमण के पारणे के दिन भिक्षार्थ आये हुए मुनि की ब्राह्मणो ने हँसी उड़ाई और कदर्थना भी की। यह देख कर भद्रा ने उन्हें पहचान लिया और ब्राह्मणों को वोध दिया। ब्राह्मणों ने क्षमायाचना कर भोजनादि प्रदान किया। देवताओं ने गन्धोदकवृष्टि, पुष्पवृष्टि, दुन्दुभिवादन और वसुधारा वृष्टि की।

यहाँ पर—

वाणारसी पकोट्ठए पासे गोवालि भद्दसेणेय।
णंदसिरी पउमदह रायगिहे सेणिए वीरे···· ॥१॥
वाराणसीय नगरी अणगार धम्मघोस-धम्मजसे;
मासस्सय पारणए गोउल गंगाय अणुकम्पा····॥२॥

[भावार्थ—वाराणसी के कोष्टक चैत्य में पार्श्वनाथ भगवान और गोपाली आर्या के पास भद्रसेन की पुत्री नन्दश्री दीक्षित हो पद्मद्रह में उत्पन्न हुई, राजगृह में वीर प्रभु ने श्रेणिक को कहा।

वाराणसी नगरी में अणगार धर्मघोष-धर्मयश को मासक्षमण के पारणे में देव ने अनुकम्पा से गंगापार गोकुल दिखाया।]

आवश्यक-नियुंक्ति में इसके दो संविधान हैं। यतः—

१—इसी नगरी में भद्रसेन नामक जीर्ण सेठ था। उसकी भार्या नन्दा थी। उनकी पुत्री नन्दश्री विधवा थी। एक वार यहाँ के कोष्टक चैत्य में पार्श्वनाथ स्वामी समवसरे। नन्दश्री ने

प्रव्रज्या ली। गोपाली आर्या को शिष्या रूपमें सर्मपित की। वह पहले तो उग्र विहार करती थी, पीछे शिथिल होकर हाथ-पाँव धोने लगी। साध्वियों के मना करने पर अलग वसति में रहने लगी। वह साध्वी बिना आलोयणा के मर के क्षुल्ल हिमवंत के पद्मद्रह में देवगणिका श्रीदेवी हुई। वह भगवान महावीर के राजगृह आने पर समवशरण में नाट्य विधि प्रदर्शित करने गई। अन्यत्र ऐसा भी कहा है कि उसने हथिणी रूप में बात-निसर्ग किया, श्रेणिक ने उसका स्वरूप पूछा, भगवान ने उसकी पूर्व भव की अवसन्नता का वृत्तान्त बतलाया।

२—इसी नगरी में धर्मघोष—धर्मयश नामक दो अणगार वर्षाकाल-चातुर्मास रहे। वे मासक्षमण करते थे। एक बार चौथे पारणे में तीसरे प्रहर में विहार के लिए प्रस्थान कर सूर्यताप से आर्त्त प्यासे गंगा पार होते हुए मन से भी जल पीने की अनेषणीय होने से इच्छा नहीं की। देवता ने उनके गुणों से आकृष्ट हो गोकुल की विकुर्वणा की और गंगा पार होने पर दही आदि के लिए निमन्त्रित किया। उन ज्ञानियों ने उपयोग देकर यथार्थतः देवमाया जान कर प्रतिषेध कर दिया। देव ने उनके नगर की ओर जाते समय वादल विकुर्वण किये। उन्होंने आर्द्रभूमि में शीतल वायु बहते चल कर गाँव पहुंच कर शुद्ध आहार लिया।

श्री अयोध्या में इक्ष्वाकुवंशी महानरेन्द्र त्रिशंकु का पुत्र हरिश्चन्द्र, उशीनर राजा की पुत्री रानी सुतारादेवी और पुत्र रोहिताश्व के साथ चिरकाल सुख अनुभव करते थे। एक बार सौधर्मेन्द्र ने देवसभा में उनके सत्व की प्रशंसा की। उसे अश्रद्धा करते हुए चन्द्रचूड़—मणिचूड़ नामक देव पृथ्वी पर आये। उनमें से एक वनवाराह रूप बनाकर अयोध्या के बाहर शक्रावतार चैत्याश्रम को संरम्भपूर्वक भंग करने में प्रवृत्त हो गया। सिंहासन-

स्थित राजा हरिश्चन्द्र शूकर के किए हुए उपद्रव को सुनकर वहाँ गया और बाण के प्रहार से उसे मार डाला। उसके सशरीर अन्तर्हित हो जाने पर अनिंद्य चरित्र वाला राजा ज्यों ही उस प्रदेश में आया त्यों ही अपने बाण से प्रहृत हरिणी को और उसके गलित गर्भ को काँपते हुए देख कर कपिंजल और कुन्तल नामक मित्रों के साथ इसका विचार किया। राजा अपने को गर्भहन्ता सोचता हुआ प्रायश्चित्त लेने के लिए कुलपति के पास आया और नमस्कार कर आशीष ग्रहण कर बैठा। त्यों ही वंचना नामक कुलपति-कन्या ने जोर से शोर मचाया और बोली—पिता जी! इस पापी ने मेरी मृगी को मार दिया है! उसके मरने से मेरा और मेरी माता का भी मरण होगा! ऐसा सुनकर कुलपति राजा पर कुपित हो गए। राजा कुलपति के चरणों में गिरकर बोले-प्रभो! मेरी सारी पृथ्वी ग्रहण करके मुझे इस पाप से मुक्त करें। वंचना को भी मरने से निवारणार्थ में एक लक्ष स्वर्ण मुद्रा दूँगा! उसके मानने पर कौटिल्य ऋषि को साथ लेकर राजा अपने नगर आया फिर वसुभूति मंत्री और मित्र कुन्तल को सारा स्वरूप बतलाकर कोश से लक्ष निष्क मँगाये। तब अंगारक-तापस ने स्मितपूर्वक कहा—हमें समुद्र-मेखलापर्यन्त सारी पृथ्वी दे दी तो फिर हमारी वस्तु ही हमें देते हो, यह कौन सा न्याय है? वसुभुति मंत्री कुछ भी बोलने लगा तो कुलपति ने उसे शुक और कुन्तल को शाप देकर शृगाल कर दिया, वे वन में रहने लगे। राजा ने महीने की अवधि माँग कर रोहिताश्व की अंगुली पकड़ कर सुतारा के साथ काशी की ओर चल पड़ा। क्रमशः इस नगर में पहुँच कर संस्था में रहा। वहाँ मस्तक पर तृण रखकर वज्रहृदय विप्र के हाथ देवी सुतारा रानी और कुमार को छः हजार स्वर्ण में बेच दिया। वह खांडना-पीसना आदि गृहकार्य करने लगी। पुत्र भी समिधा, पत्र, पुष्प, फलादि लाने लगा।

राजा के चित्त में बड़ी चिन्ता थी। कुलपति स्वर्ण माँगने आ गया। राजा ने उसे छः हजार स्वर्ण दिया। "यह तो थोड़ा है" कुलपति ने कुपित होकर कहा फिर अंगारक ने कहा—पत्नी और पुत्र को किस लिए बेचा ? यहाँ के राजा चन्द्रशेखर से क्यों नहीं लक्ष स्वर्ण-मुद्रा माँग लेते ?

राजा ने कहा—हमारे कुल में ऐसा नहीं होता ! डोम के घर में भी नौकरी करके तुम्हें लक्ष स्वर्ण मुद्रा दूँगा ! तब काम करने में प्रवृत्त होने पर चाण्डाल ने उसे श्मशान रक्षा में नियुक्त किया। उसके पश्चात् उन देवों ने नगर में मारि फैला दी। एवं राजा के आदेश से मान्त्रिक लोगों ने राक्षसी प्रवाद का आरोप लगा कर सुतारा को मण्डल में ला कर गधे पर चढ़ाया, शुक की भाँति अग्नि में कूदने पर अदग्ध रही। श्मशान में वट की शाखा से लटकते पुरुष को तथा तट पर रोती हुई सुन्दरी को देख कर विद्याधर के अपहार का वृत्त सुन कर उन्हें छुडाया और उसके स्थान में राजा ने स्वयं नियुक्त होकर होमकुण्ड में अपने मांस-खण्ड दिये थे। जैसे कुण्ड में से मुख निकाल कर शृगाल रोया, तापस ने जैसे राजा का व्रण रोहण किया था। और पुष्प ग्रहण करते हुए रोहिताश्व को निर्दय सर्प ने डस लिया था, उसका संस्कार करने जैसे ही रानी लाई उससे कफन माँगा था और जैसे सत्व-परीक्षा के निर्वाह से प्रमुदित देवताओं ने अपना रूप प्रकट किया, पुष्पवृष्टि की, जय जय ध्वनि की। सर्वजनों द्वारा यह सात्विक-शिरोमणि है, ऐसी प्रशंसा की गई। और जिस प्रकार बहिर्मुख के मुख से, वराहादि से लगा कर पुष्पवृष्टि पर्यन्त सारी बातें दिव्य-माया विलसित जान कर ज्यों ही चित्त में चमत्कृत हुआ त्यों ही स्वयं को अपनी नगरी अयोध्या की सभा में सपरि-वार सिंहासन पर बैठे देखा। यहाँ रानी और कुमार के विक्रय से

लेकर दिव्यपुष्पवृष्टि पर्यन्त श्री हरिश्चन्द्र राजा का सत्व-कसौटी रूप चरित्र इसी नगरी के अन्दर मनुष्यों को विस्मय करने वाला घटित हुआ।

और जो काशी-माहात्म्य में प्रथम गुणस्थानियों द्वारा कहा है कि— वाराणसी में कलि का प्रवेश नहीं होता और यहाँ मरने वाले कीट-पतंग-भ्रमर आदि तथा चतुर्विध हत्या करने वाले अनेक पापी मनुष्य भी शिव को प्राप्त करते हैं। ऐसी युक्तिहीन वार्तों पर हमारे लिए श्रद्धा करना मानना दुःशक्य है, फिर कल्प में कहने के लिए तो उपेक्षणीय ही है।

इस नगरी में परिव्राजकों, जटाधरों, योगियों तथा ब्राह्मणादि चारों ही वर्ण मे धातुर्वाद, रसवाद, खन्यवाद, मंत्रविशारद, शब्दानुशासन-तर्क-अलंकार-ज्योतिषचूड़ामणि निमित्तशास्त्र-साहित्यादि विद्यानिपुण ऐसे अनेक पुरुष हैं जो रसिक मन वालों को प्रसन्न करते है। यहाँ सकल कला परिकलन कौतूहल वाले चारों दिशाओं के देशान्तरवासी लोग दिखाई पड़ते है।

वर्त्तमान मे वाराणसी चार भागों में बँटी हुई देखी जाती है जैसे—देव वाराणसी, जहाँ विश्वनाथ का मन्दिर है जिसमें आज भी जैन चतुर्विशति तीर्थङ्कर पाषाणमय पट्ट पूजा में रखा हुआ विद्यमान है। दूसरी राजधानी वाराणसी है जहाँ आज कल यवन लोग रहते है। तीसरी मदन वाराणसी और चौथी विजय वाराणसी है। लौकिक तीर्थ तो इतने अधिक है कि उनकी सख्या भी कौन कर सकता है? अन्तर्वन में दन्तखात तालाव के निकट श्री पार्श्वनाथ का चैत्य अनेक प्रतिमाओं से विभूषित है। यहाँ तालाबों में निर्मल परिमल से भरे हुए नाना जाति के सुगन्धित कमल भ्रमरसमूहसंयुक्त है। और इस नगरी में निर्भय विचरने वाले वानर और मृगधूर्त लोग एकत्र हैं। यहाँ से तीन कोश पर

धर्मेक्षा नामका सन्निवेश है जहाँ अपने ऊँचे शिखरों से गगन को चूमने वाला गौतम बुद्ध का आयतन है। यहाँ से ढाई योजन आगे चन्द्रावती नगरी है, जहाँ पर अखिल भुवनजनों को तुष्ट करने वाले चन्द्रप्रभ भगवान के गर्भावतारादि चार कल्याणक हुए हैं।

दो भगवान के जन्म और गंगोदक से गौरववत्ती काशी नगरी किसके द्वारा प्रकाशित नहीं है? अर्थात् सभी ने इसका वर्णन किया है। इस अनल्प समृद्धि वाली वाराणसी का कल्प श्रीमान् जिनप्रभसूरि मुनीन्द्र ने बनाया है।

श्री वाराणसी नगरी का कल्प समाप्त हुआ। इसकी ग्रंथसंख्या ११३ व २३ अक्षर ऊपर है।

३९. महावीर-गणधर-कल्प

श्री वीर प्रभु के ब्राह्मण-वंशोत्पन्न ग्यारह गणधरों को नमस्कार करके शास्त्रों के अनुसार उनका कल्प संक्षेप से कहता हूँ। उनके (१) नाम, (२) स्थान, (३) पिता, (४) माता, (५) जन्म-नक्षत्र, (६) गोत्रादि, (७) गृहपर्याय, (८) संशय, (९) व्रतदिवस, (१०) नगर, (११) देश, (१२) काल, (१३) व्रतपरिवार, (१४) छद्मस्थ, (१५) केवलित्व वर्षसंख्या, (१६) रूप, (१७) लब्धि (१८) आयुष्य, (१९) मोक्ष स्थान, (२०) तप आदि द्वार वर्णन करता हूँ।

(१) गणधरों के नाम—१ इन्द्रभूति, (२) अग्निभूति, (३)

वायुभूति, (४) व्यक्त, (५) सुधर्मा स्वामी, (६) मण्डित्त, (७) मोरिय-पुत्र, (८) अकम्पित, (९) अचलभ्राता, (१०) मेतार्य और (११) प्रभास।

(२) स्थान—इन्द्रभूति आदि तीन सहोदर मगधदेश के गोव्वर गाँव में उत्पन्न हुए। व्यक्त और सुधर्मा स्वामी कोल्लाग सन्निवेश में, मण्डित्त और मोरियपुत्र दोनों मोरिय सन्निवेश में, अकम्पित मिथिला में, अचलभ्राता कोशला में, मेतार्य वत्सदेश के तुंगिय सन्निवेश में और प्रभास स्वामी राजगृह में उत्पन्न हुए।

(३) पिता:—तीन सहोदरों के पिता वसुभूति, व्यक्त का धनमित्र, आर्य सुधर्मा का धम्मिल, मण्डित्त का धनदेव, मोरिअ-पुत्र का मोरिय, अकम्पित के पिता देव, अचल भ्राता के वसुदत्त, मेतार्य के दत्त, और प्रभास स्वामी के पिता का नाम वल था।

(४) माता:—तीन भ्राताओं की जननी पृथ्वी, व्यक्त की वीरुणी, सुधर्म धी भद्दिला, मण्डित्त की विजयादेवा एवं मोरिअ-पुत्र की भी वही—क्योंकि धन देव के परलोक गत होने से मोरिअ ने उसे संगृहीत किया क्योंकि उस देश में ऐसा होना निर्विरोध था। अकम्पित की जयन्ती, अचलभ्राता की नंदा, मेतार्य की वरुणदेवा और प्रभास की माता अतिभद्र थी।

(५) नक्षत्र:—इन्द्रभूति का ज्येष्ठा, अग्निभूति का कृत्तिका, वायुभूति का स्वाति, व्यक्त का श्रवणा, सुधर्मा स्वामी का उत्तरा-फाल्गुनी, पण्डित्त का मघा, मोरिअपुत्र का मृगशिरा, अकम्पित का उत्तरापाढ़ा, अचलभ्राता का मृगशिरा, मेतार्य का अश्विनी, प्रभास का पुष्य नक्षत्र था।

(६) गोत्र:—तीनों भाई गौतम गोत्रीय, व्यक्त भारद्वाज-गोत्रीय, सुधर्मा स्वामी अग्निवेश्यायन गोत्रीय, मण्डित्त वाशिष्ठ गोत्रीय, मोरिअपुत्र काश्यपगोत्रीय, अकम्पित गौतमगोत्रीय,

अचलभ्राता हारीतगोत्रीय, मेतार्य और प्रभास स्वामी कौडिन्य-गोत्रज थे।

(७) गृहस्थ पर्याय:—इन्द्रभूति का ५० वर्ष, अग्निभूति का ४६ वर्ष, वायुभूति का ४२ वर्ष, व्यक्त का ५० वर्ष, मण्डित का ५३ वर्ष, मोरियपुत्र का ६५ वर्ष, अकम्पित का ४८ वर्ष, अचल-भ्राता का ४६ वर्ष, मेतार्य का ३६ वर्ष और प्रभास स्वामी का १६ वर्ष था।

(८) संशय:—इन्द्रभूति का 'जीव' विषयक संशय भगवान महावीर ने मिटाया। अग्नि भूति का 'कर्म' विषयक, वायुभूति का जीव-शरीर विषयक, व्यक्त का पंच महाभूत विषयक, सुधर्मा स्वामी का जैसा यह भव वैसा ही परभव, मण्डित का बन्ध-मोक्ष-विषयक, मोरियपुत्र का देवसम्बन्धी, अकंपित का नरकसंबंधी, अचलभ्राता का पुण्य-पापसम्बन्धी, मेतार्य का परलोकविषयक, एवं प्रभास स्वामी का निर्वाणविषयक सन्देह भगवान ने मिटाया था।

(९-१०-११-१२) द्वार:—ग्यारह गणधरों का दीक्षादिवस एकादशी है। उन यज्ञवाटिका में उपस्थितों ने समवशरण में देवों का आगमन देख कर वैशाख शुक्ल ११ के दिन, मध्यम पावा नगरी में, महसेन वनोद्यान में पूर्वाण्ह देश और पूर्वाण्ह काल में भगवान महावीर स्वामी के पास दीक्षा ग्रहण की थी।

(१३) व्रत परिवार—इन्द्रभूति आदि पाँच सौ छात्रों के साथ दीक्षित हुए। मण्डित व मोरियपुत्र साढे तीन सौ एवं अकम्पितादि चारों गणधर तीन-तीन सौ छात्रों के साथ प्रत्येक दीक्षित हुए थे।

(१४) छद्मस्थ पर्याय—इन्द्रभूति का तीस वर्ष, अग्निभूति का बारह वर्ष, आयुभूति का दश वर्ष, व्यक्त का बारह वर्ष, सुधर्मा स्वामी का बयालीस वर्ष, मण्डित और मोरियपुत्र का चौदह वर्ष,

अकम्पित का नौ वर्ष, अचलभ्राता का बारह वर्ष, मेतार्य का दस वर्ष और प्रभास का साठ वर्ष छद्मस्थकाल है।

(१५) केवलित्व—इन्द्रभूति गणधर बारह वर्ष, अग्निभूति सोलह वर्ष, वायुभूति और व्यक्त अठारह-अठारह वर्ष, आर्य सुधर्मा स्वामी आठ वर्ष, मण्डित और मोरियपुत्र सोलह सोलह वर्ष, अचलभ्राता चौदह वर्ष, मेतार्य और प्रभास गणधर प्रत्येक सोलह-सोलह वर्ष केवलीपर्याय में विचरे थे।

(१६) रूप—ग्यारहों गणधर वज्र ऋषभ नाराच संघयण वाले सम चतुरस्र सस्थान, स्वर्णाभ देह वर्ण वाले एवं तीर्थङ्करों की भाँति रूप सम्पदा वाले थे। तीर्थङ्कर के लिए कहा है कि—समस्त देवों का सौन्दर्य यदि अंगुष्ठ प्रमाण में विकुर्वण किया जाय तो भी वे जिनेश्वर के पदाङ्गुष्ठ के बराबर शोभा नहीं देते। इन वाक्यों के अनुसार तीर्थङ्करों का रूप अद्वितीय होता है। उनसे किञ्चन न्यून गणधरों का, उनसे कुछ हीन आहारक शरीर वालों का, उनसे न्यून अनुत्तर देवों का, उनसे हीन नौ ग्रैवेयक पर्यवसान देवों का, उनसे हीन क्रमशः अच्युत देवलोक से लगा कर सौधर्म देवलोक के देवों का रूप होता है। उनसे भी हीन भुवनपति, उनसे हीन ज्योतिषी देव और उनसे हीन व्यन्तर देवों का रूप होता है। उनसे भी हीन चक्रवर्त्ती, उनसे हीन अर्ध चक्री वासुदेवों का उनसे हीन बलदेवों का एवं उनसे हीन अवशिष्ट लोगों का रूप होता है। इस प्रकार के विशिष्ट रूपधारी गणधर होते है।

श्रुतज्ञान की दृष्टि से गृहस्थावास में वे चतुर्दश विद्या के पारंगत, श्रामण्य में द्वादश अंग गणि पिटक के पारगामी और सभी द्वादशाङ्गों के प्रणेता होते हैं।

(१७) लब्धि—सभी गणधर सर्वलब्धिसम्पन्न होते हैं। यतः बुद्धिलब्धि (१८ प्रकार) केवलज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान,

बीजबुद्धि, कोष्टबुद्धि, पदानुसारित्व, संभिन्न सोइत्व, दूरासायण सामर्थ्य, दूरस्पर्शसामर्थ्य, दूरदर्शनसामर्थ्य, दूरश्रवणसामर्थ्य, दशपूर्वित्व, चतुर्दशपूर्वित्व, अष्टाङ्ग महानिमित्त कौशल्य, पण्णासवण्णत, प्रत्येकबुद्धत्व, वादित्व।

क्रियाविषयक लब्धियाँ दो प्रकार की होती हैं—

१. चारण लब्धि, २. आकाशगामित्व लब्धि।

विकुर्वित्त लब्धि अनेक प्रकार की होती है—

अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, पत्ती, प्रकामित्व, इसित्त, वसित्त, अप्रतिघात, अन्तर्द्धान, कामरूपित्व इत्यादि।

तपातिशय लब्धि सात प्रकार की होती है। यथा—

उग्रतपत्व, दित्त तपत्व, महातपत्व, घोर तपत्व, घोर पराक्रमत्व, घोर ब्रह्मचारित्व, अघोर ब्रह्मचारित्व।

बललब्धि तीन प्रकार की होती है—

१. मनोबलित्व, २. वचनबलित्व, ३. कायबलित्व।

औषधिलब्धि आठ प्रकार की होती है—

१. आमोसहि लब्धि, २. खेलोसहि लब्धि, ३. जल्लोसहि लब्धि, ४. मलोषधि लब्धि, ५. विप्पोसहि लब्धि, ६. सर्वौषधि लब्धि, ७. आसग अविसत्व, ८. दृष्टि अविषत्व।

रसलब्धि छः प्रकार की होती है, यथा—

१. वचन विषत्व, २. दृष्टि विषत्व, ३. क्षीराश्रवित्व, ४. मधु आश्रवित्व, ५. रूपि आश्रवित्व, ६. अमृताश्रवित्व।

क्षेत्रलब्धि दो प्रकार की होती है—

१. अक्षीण महान सत्व, २. अक्षोण महालयत्त्व।

सभी गणधर इन लब्धियों से सम्पन्न होते हैं।

(१८) सर्वायु—इन्द्रभूति की बाणवे वर्ष, अग्निभूति की चौहत्तर वर्ष, वायुभूति की सत्तर वर्ष, व्यक्त की अस्सी वर्ष, आर्य

सुधर्मा स्वामी की सौ वर्ष, मण्डित की त्रेयासी वर्ष, मोरियपुत्र की पंचाणवें वर्ष, अकम्पित की अठहत्तर वर्ष, अचलभ्राता की वहत्तर वर्ष, मेतार्य की बासठ वर्ष और प्रभास स्वामी की सर्वायु चालीस वर्ष की थी।

(१९)-(२०) मोक्ष स्थान व तप—सभी गणधरों का निर्वाण मासभक्तोपवास व पादोपगमन पूर्वक राजगृह नगर के वैभार गिरि पर्वत पर हुआ। प्रथम और पंचम गणधर के अतिरिक्त नौ गणधर भगवान् महावीर की विद्यमानता में ही मोक्ष प्राप्त हुए। इन्द्रभूति और सुधर्मा स्वामी भगवान के निर्वाणोपरान्त मोक्ष गए।

यह गणधर-कल्प जो प्रतिदिन प्रातःकाल प्रसन्न चित्त से पढता है उसके करतल में सभी कल्याणपरम्पराएँ निवास करती हैं।

संवत् १३८९ विक्रमीय के ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी बुधवार के दिन श्री जिनप्रभसूरिकृत गणधर-कल्प चिरकाल तक जयवन्त रहे।

श्री महावीर-गणधर कल्प समाप्त हुआ। इसकी ग्रन्थसंख्या ६८ है।

●

४०. कोकावसति पार्श्वनाथ-कल्प

पद्मावती-नागराज धरणेन्द्र द्वारा संसेवित्त पार्श्वनाथ भगवान को नमस्कार करके कोकावसति पार्श्वनाथ का थोड़ा सा वृत्तान्त कहता हूँ।

श्री प्रश्नवाहणकुल संभूत हर्षपुरीय गच्छालंकार भूषित श्री

अभयदेव सूरि हर्ष पुर से एक बार ग्रामानुग्राम विचरते हुए श्री अणहिल्लवाड पाटण में आये। बाह्य प्रदेश में वे सपरिवार रहे। एक दिन महाराजा श्री जयसिंहदेव गजारूढ होकर राजवाटिका में आया और सूरिजी को मल-मलिन वस्त्र-देहयुक्त देखा। राजा ने हाथी से उतर कर नमस्कार करते हुए उन्हें दुष्कर क्रियाशील देखकर 'मलधारि' नाम दिया। राजा उन्हें अभ्यर्थना करके नगर में ले गया और घृतवसही के निकट उपाश्रय दिया जहाँ सूरि महाराज रहे।

कालक्रम से उनके पट्ट पर अनेक ग्रंथ निर्माण द्वारा विख्यात कीर्त्ति वाले श्री हेमचन्द्रसूरि (मलधारि) हुए। वे प्रतिदिन चौमासी चौदस से घृतवसही में जाकर व्याख्यान करते। एक दिन घृत-वसति के किसी गोष्टी के पितृ-कार्य से उस चैत्य में बलि-विस्तरादि करना प्रारंभ किया। जब श्रीहेमचन्द्र सूरिजी व्याख्यान करने के लिए वहाँ पधारे तो गोष्ठी लोगों ने प्रतिषेध करते हुए कहा—आज यहाँ व्याख्यान न करें क्योंकि बलि-मंडनादि से अवकाश नहीं हैं। सूरि जी ने कहा—आज थोड़ा सा व्याख्यान करेंगे जिससे चौमासे के व्याख्यान में विच्छेद न हो! पर गोष्ठी लोगों के न मानने पर आचार्य महाराज उदास मन से उपाश्रय लौट आये।

गुरु महाराज को दुःखित चित्त ज्ञात कर सौवर्णिक मोखदेव-नायग नामक श्रावक ने और किसी दिन पराये चैत्य में ऐसा अपमान न हो इसलिए नव्य चैत्य निर्माणार्थ घृतवसति के निकट भूमि माँगी, पर कहीं भी नहीं मिली। तब कोका नामक सेठ से भूमि मांगी। घृतवसति के गोष्टिकों ने मना कर दिया और तिगुना मूल्य देने को प्रस्तुत हो गए। सूरि महाराज संघसहित कोका के घर पधारे। उसने आदरपूर्वक कहा—मैने यथोचित मूल्य में भूमि दी, पर मेरे नाम से चैत्य बनवाना! सूरि महाराज और

श्रावकों ने उसके प्रस्ताव को मान लिया और घृतवसति के निकट "कोकावसति" नामक चैत्य बनवाया। उसमें श्री पार्श्वनाथ भगवान स्थापित किए, त्रिकाल पूजा होने लगी।

कालक्रम से श्री भीमदेव के शासनकाल में पाटण का भंग करते मालवा के सुलतान ने पार्श्वनाथ प्रतिमा भी भंग कर दी। सौवर्णिक नायग के वंशज सेठ रामदेव-आसधर ने उद्धार करना प्रारंभ किया। आरासन से तीन फलक आये, पर वे निर्दोष नहीं थे। अतः उनके तीन बिम्ब घड़ाने पर भी गुरु महाराज एवं श्रावकों को सन्तोष नहीं हुआ। तब सेठ रामदेव ने अभिग्रह लिया कि जब तक पार्श्वनाथ प्रतिमा न हो, भोजन नहीं करूँगा। गुरु महाराज भी उपवास कर रहे थे। आठवें उपवास में रामदेव को देव का आदेश हुआ कि जहाँ अक्षत पुष्प युक्त गहुंली दिखाई दे, उसके नीचे यहीं चैत्य के निकट इतने हाथ नीचे पाषाणफलक विद्यमान है! भूमि खोदकर फलक प्राप्त किया और पार्श्वनाथ भगवान का अनुपम रूप वाला बिम्ब बनवाया। विक्रम संवत् १२६६ वर्ष में श्री देवाणंद सूरि जी ने प्रतिष्ठित कर भगवान को चैत्य में स्थापित किया। कोका पार्श्वनाथ नाम प्रसिद्ध हुआ।

सेठ रामदेव के तिहुणा और जाजा नाम के पुत्र हुए। तिहुण का पुत्र मल्ल हुआ। उसके देल्हण और जइत्तसीह नामक पुत्र हैं जो प्रतिदिन भगवान पार्श्वनाथ की पूजा करते है।

एक दिन श्री संखेश्वर पार्श्वनाथ भगवान (के अधिष्ठायक) ने देल्हण को स्वप्न दिया कि प्रभात में चार घड़ी पर्यन्त कोका पार्श्वनाथ प्रतिमा का मै सांनिध्य करूँगा। उस चार घड़ी के समय एक प्रतिमा की पूजा करते हमारी पूजा हो जायगी। उसी प्रकार लोगों द्वारा पूज्य मान्न श्री कोकावसति पार्श्वनाथ भी श्री संखेश्वर पार्श्वनाथ की भाँति परचे पूरते है।

संखेश्वर पार्श्वनाथ सम्बन्धी पूजा-यात्रा-अभिग्रहादि लोगों के यहीं पूर्ण होते हैं।

इस प्रकार सन्निहित प्रातिहार्य श्री कोकावसति पार्श्वनाथ की तेतीस पर्वागुल प्रमाण प्रतिमा मलधारि गच्छ प्रतिबद्ध है।

अणहिलपत्तनमण्डन श्री कोकावसति पार्श्वनाथ का यह संक्षिप्त कल्प लोगों का क्लेश नष्ट करे।

श्री कोकावसति पार्श्वनाथ-कल्प समाप्त हुआ। इसकी ग्रंथ-श्लोक संख्या ४० है।

●

४१. श्रीकोटिशिलातीर्थ-कल्प

जिनेश्वर भगवान को नमस्कार करके पूर्व पुरुष-सिंहों के वाक्यों का सहारा लेकर श्री कोटिशिलातीर्थ का कल्प श्री जिन-प्रभसूरि प्रकाशित करते हैं।

इस भरतक्षेत्र में मगधदेश में कोटिशिला तीर्थ है, जो आज भी चारण, सुर-असुर और यक्षों के द्वारा पूजा जाता है। भरतार्द्ध-वासिनी अधिष्ठिता देवता द्वारा भी सतत (पूजा होती है), वह एक योजन पृथुल और एक योजन ऊँचा है।

सभी तीन खण्ड पृथ्वी के स्वामी वासुदेव देवों, मनुष्यों और विद्याधरों के प्रत्यक्ष में उसे उपाड़ कर (उठा कर) अपने बाहुबल की परीक्षा करते हैं।

प्रथम वासुदेव ने उसका छत्र किया, दूसरे ने मस्तक तक, तीसरे ने ग्रीवापर्यन्त, चौथे ने छाती तक, पाँचवें ने उदर पर्यन्त, छट्ठे ने कटि प्रदेश तक, सातवें वासुदेव ने जंघा तक ऊँचा उठाया। आठवें ने जानुपर्यन्त और नौवें कृष्ण वासुदेव ने उसे अपनी बायीं भुजा से उठा कर भूमि से चार अंगुल ऊँचा किया।

अवसर्पिणी काल के प्रभाव से क्रमशः मनुष्य का बलादि कम होता जाता है। तीर्थङ्करों का बल सब का एक जैसा होता है।

जिस कोटिशिला को करोड़ बलवान् सुभटों द्वारा उठाना अशक्य है, उसे अकेला वासुदेव उठा लेता है।

शान्तिनाथ भगवान के प्रथम गणधर चक्रायुध विधिपूर्वक अनशन करके कोटिशिला पर मुक्त हुए।

शान्तिनाथ भगवान के तीर्थ में संख्याबद्ध मुनियों की कोटि यहीं सिद्ध हुई एवं श्री कुन्थुनाथ भगवान के तीर्थ में भी। श्री अरनाथ जिनेश्वर के तीर्थ में भी बारह श्रमणों की कोटि और मल्लि जिनेश्वर के तीर्थ में छः कोटि ऋषि सिद्ध हुए। मुनि सुव्रतनाथ जिनेश्वर के तीर्थ मे तीन कोटि सिद्ध हुए। नमिनाथ भगवान के तीर्थ में एक कोटि अणगार सिद्ध हुए।

वहाँ अन्य भी अनेक महर्षि शाश्वत पद को प्राप्त हुए। इसीसे भूमण्डल में कोटिशिलातीर्थ विख्यात हुआ।

पूर्वाचार्यों ने इससे विशेष भी कुछ कहा है, जैसे—

दशार्ण पर्वत के समीप योजन पृथुलयाम वाली कोटिशिला है। छः तीर्थङ्करों के शासन में वहाँ से अनेकों कोटि मुनि सिद्ध हुए।

शान्तिनाथ स्वामी के प्रथम गणधर चक्रायुध अनेक साधुओं के परिवार सहित यहाँ से बत्तीस युगों तक संख्यात कोटि मुनि सिद्ध हुए। कुन्थुनाथ भगवान के अठाइस युगों तक संख्यात मुनि

कोटि सिद्ध हुए। अरनाथ भगवान के ३४ युगों तक बारह कोटि मुनि सिद्ध हुए। मल्लिनाथ भगवान के वीस युगों तक छः कोटि मुनि सिद्ध हुए और मुनि सुव्रत भगवान के शासन में तीन कोटि मुनि व नमिनाथ प्रभु के शासन में एक कोटि मुनि सिद्ध हुए। इसलिए इसका नाम कोटिशिला है।

शिर पर, ग्रीवा तक, छाती तक, उदर तक, कोटिपर्यन्त और जंघाओं तक तथा जानुपर्यन्त एवं चार अंगुल तक वासुदेव उसे उठाते हैं।

यह कोटिशिला तीर्थ त्रिभुवनजनों को सुख देनेवाला देवता व खेचरों से पूजित है। वह भव्यजनों का कल्याण करे।

कोटिशिलातीर्थ का कल्प समाप्त हुआ। इसमें ग्रन्थ-श्लोक संख्या २४ अक्षर ६ हैं।

●

४२. वस्तुपाल-तेजपालमन्त्रि-कल्प

श्री वस्तुपाल और तेजपाल दोनों भ्राता प्रसिद्ध मंत्रीश्वर हुए हैं, उनकी कीर्त्तन-संख्या कहता हूँ।

पहले गुर्जर-धरामण्डन मण्डली महानगरी में श्री वस्तुपाल तेजपाल आदि निवास करते थे। एक वार श्रीपत्तन निवासी प्राग्वाटज्ञातीय ठक्कुर श्री चण्डप के पुत्र ठक्कुर श्री चण्डप्रसाद के पुत्र मंत्री श्री सोमकुलावतंश ठक्कुर श्री आसराज के नन्दन, कुमारदेवी के कुक्षी रूपी सरोवर के दो राजहंस श्री वस्तुपाल-

तेजपाल श्री शत्रुञ्जय गिरनार आदि तीर्थों की यात्रा के लिए चले। हडाला गाँव आ कर जव अपने वैभव का विचार किया तो वह सर्वस्व तीन लाख हुआ। फिर सौराष्ट्र में दुख का आकलन कर एक लाख पृथ्वी में गाडने के लिए रात्रि में एक वड़े पीपल के नीचे खड्डा खुदवाया। उसे खोदते हुए किसी का पुराना स्वर्ण पूर्ण शोल्व कलश निकला। उसे ले कर वस्तुपाल ने तेजपाल की स्त्री अनुपमा देवी को मान्य होने से पूछा—इस निधि को कहाँ रखें? उसने कहा—गिरिशिखर पर ही इसे ऊँचा स्थापित करना चाहिए जिससे प्रस्तुत निधि की भाँति वह अन्य के अधिकार में न आ सके! यह सुन कर वस्तुपाल ने उस द्रव्य को श्री शत्रुञ्जय गिरनार में व्यय किया। यात्रा कर के लौटते समय वे धवलक्कपुर आये।

इसी बीच महणदेवी नामक कन्नौजपति की पुत्री पिता से कंचुलिक खर्च में गुजरात की पृथ्वो पा कर उसका आधिपत्य भोग कर मृत्यु के उपरान्त वहीं देश की अधिष्ठात्री देवी हुई। उसने एक दिन राजा वीरधवल को स्वप्न में कहा कि वस्तुपाल-तेज-पाल को राज्यचिन्तक नियुक्त करके सुख से राज्य करो! वैसा करने से तुम्हारे राज्य-राष्ट्र की वृद्धि होगी। यह आदेश देते हुए अपने को प्रकट कर देवी अन्तर्धान हो गई। प्रातःकाल उठ कर राजा ने वस्तुपाल-तेजपाल को वुलाया और सम्मानपूर्वक बड़े को स्तम्भतीर्थ व धवलक्क के राज्यों का आधिपत्य एवं तेजपाल को सर्व राज्य की व्यापार मुद्रा दी। तव वे दोनों षट् दर्शन को दान, नाना प्रकार के धर्म स्थान वनवाने आदि सैकड़ों सुकृत्यों द्वारा अपना समय विताने लगे!

जैसे कि उन्होंने सवा लाख जिन-प्रतिमाएँ बनवाई। अठारह करोड़ छियानवें लाख द्रव्य श्री शत्रुञ्जय तीर्थ पर व्यय किया। वारह करोड़ अस्सी लाख श्री उज्जयन्त पर, वारह करोड़ त्रेपन

लाख आबू पर लूणगवसही में खर्च किये। नौ सौ चौरासी पौषध-शालाएँ बनवाईं। पाँच सौ दाँत के सिंहासन, पाँच सौ जादर के समवशरण, सात सौ सतरह ब्रह्मशाला, सात सौ दानशालाएँ, तपस्वी-कापालिक मठों में सर्वत्र भोजन-दान किया। तीन हजार दो माहेश्वरायतन, तेरह सौ चार शिखरबद्ध जिनालय, तेईस सौ जिनालयों का उद्धार, अठारह करोड़ स्वर्ण के व्यय से तीन स्थानों में सरस्वती-भण्डार भरवाये। पाँच सौ ब्राह्मण प्रतिदिन वेद-पाठ करते थे। वर्ष में तीन बार संघ पूजा, पन्द्रह सौ श्रमण घर में नित्य बहोरते थे। एक हजार से अधिक तटिक-कार्पटिक प्रतिदिन भोजन करते थे। संघपति बन कर तेरह तीर्थयात्राएँ की। प्रथम यात्रा में चार हजार पाँच सौ गाडे—सेज वाले (शय्यापालक), सात सौ सुखासन, अठारह सौ वाहिनी, उन्नीस सौ श्रीकरी, इक्कीस सौ श्वेताम्बरों व ग्यारह सौ दिगम्बरों के, साढ़े चार सौ जैन गायक, तेतीस सौ वन्दीजन, चौरासी तालाब बँधाये। चार सौ चौसठ बावड़ी (वापी) तीस-बत्तीस पाषाणमय दुर्ग, चौवीस दन्तमय जैन रथ, दो हजार शाक (सागवान काष्ठ) घटित (रथ बनवाये)। वस्तुपाल मंत्री के 'सरस्वती कण्ठाभरण' आदि चौबीस विरुद थे। उसने चौसठ मस्जिदें करवाई। दक्षिण में श्रीपर्वत तक, पश्चिम में प्रभास तक, उत्तर में केदार तक और पूर्व में वाराणसी तक उनके कीर्त्तिकलाप व्याप्त हैं। सब मिला कर तीन सौ करोड़ चौदह लाख अठारह हजार आठ सौ में तीन लौष्टिक कम द्रव्य हुआ। त्रेसठ बार संग्राम में उसने जय-पत्र प्राप्त किया। इस प्रकार अठारह वर्ष उनका व्यापार-कार्यकाल चला।

इस प्रकार अनेक पुण्यकृत्य करते हुए कितने ही काल पर राजा वीरधवल काल प्राप्त हुआ। तब उसके पट्ट पर उसके पुत्र वीसलदेव को मंत्रिश्रेष्ठों ने राज्याभिषिक्त किया। वह समर्थ होता

हुआ क्रमशः घमण्डी हो गया। उसने दूसरा सचिव बनाकर मंत्री तेजपाल को हटा दिया। यह देखकर राजपुरोहित सोमेश्वर महाकवि ने राजा को उद्देश्य करके व्यङ्गात्मक नव्य काव्य पढा—

हे चंचल समीर ! महीने भर सुन्दर पाटल पुष्पों के परिमल को वहन करती अपनी महान् शक्ति का तूने क्या प्रयोग किया है ? देख तो सही—अन्धकार को दूर हटाने वाले सूर्य और चन्द्रमा का दूर से ही तिरस्कार करके पादस्पर्श सहन करने वाली धूलि को उनके स्थान पर स्थापित कर दिया। इत्यादि।

उन पुरुष-रत्नों का शेष वृत्तान्त और आदि से उत्पत्ति का स्वरूप तो लोक-प्रसिद्धि से ही जान लेना चाहिए।

गायकवर्य सूढा के द्वारा जान करके दोनों मन्त्रिमुख्यों के कीर्त्ति-कलापों की यह संख्या बतलायी है।

जहाँ अर्हन्त भगवान विराजमान हों, वह तीर्थ कहलाता है और उन दोनों मंत्रियों के चित्त में अर्हन्त अहर्निश बसते थे। इसलिए उन तीर्थरूप पुरुषश्रेष्ठों के कीर्त्तन से भी क्या कल्पकृति व्याप्त नहीं है ? अर्थात् है। ऐसा विचार कर उन दोनों मंत्री-नायकों का यह संक्षिप्त कल्प श्री जिनप्रभसूरि ने हृदय से बनाया है।

महामात्य श्री वस्तुपाल तेजपाल के कीर्त्तन-संख्या का यह कल्प ग्रंथाग्रं० ५३ और अक्षर ६ अधिक है।

●

४३. ढिंपुरीतीर्थ-कल्प

श्री चेल्लण पार्श्वनाथ और श्री वीर प्रभु का ध्यान करके श्री ढिंपुरी तीर्थ का कल्प यथाश्रुत कहता हूँ। पारेत जनपद में महानदी चर्मणवती के तट पर नाना प्रकार के गहरे जंगलों में गहन ढिंपरी नगरी है।

इसी भारतवर्ष में विमलयशा नामक राजा हुआ। उसके रानी सुमंगला देवी के साथ विषय-सुख अनुभव करते क्रमशः सन्तान-युगल जन्मे। उनमें पुत्र का नाम पुष्पचूल और पुत्री पुष्पचूला थी। उद्दण्ड, अनर्थकारी होने से लोगों ने पुष्पचूल का नाम वङ्कचूल कर दिया। महाजनों के उपालम्भ से रुष्ट होकर राजा ने वङ्कचूल को नगर से निकाल दिया। अपने परिजन और स्नेह वश वहिन के साथ जाते हुए वह भीषण अटवी के मार्ग में पड़ गया। वहाँ भूख प्यास से व्याकुल अवस्था में उसे भीलों ने देखा और अपनी पल्ली में ले गए। उन्होंने उसे अपने पूर्व पल्लीपत्ति के पद पर स्थापित कर दिया। वह ग्राम, नगर और पथिकों के सार्थ को लूट खसोट कर राज्य-पालन करने लगा।

एक वार सुस्थिताचार्य आवूसे अष्टापद यात्रा के हेतु जाते हुए अपने शिष्यादि परिवार के साथ सिंहगुफा नामक इसी पल्ली में पहुंचे। वर्षाकाल आया, भूमि जीवाकुल हो गई। सूरिजी ने साधुओं के साथ आलोचना करके बंकचूल से वसति माँग कर वहीं रह गए। उसने पहले से ही व्यवस्था कर ली कि हमारी सीमा में धर्म-कथा न कहें क्योंकि आपकी कथाओं में अहिंसादि धर्म है और उससे हम लोगों का निर्वाह नहीं होता। गुरु महाराज

उसका कथन स्वीकार कर उपाश्रय में ठहर गए। उसने सभी प्रधान पुरुषों को बुलाकर कहा—मैं राजपुत्र हूँ, मेरे पास ब्राह्मणादि आवेंगे अतः आप लोग पल्ली में जीव-वध एवं मांस-मदिरा का प्रसंग उपस्थित न करें जिससे साधुओं को भी आहार-पानी कल्प्य हो जायगा। उन्होंने चार महीने ऐसा ही किया।

विहार का समय आया। सूरिजी ने वंकचूल को—"श्रमणों और पक्षियों का वास अनियत होता है" वाक्यों द्वारा सूचित किया। वह गुरु महाराज के साथ चला। अपनी सीमा पर पहुंचा कर विनति की—हम परायी सीमा मे प्रवेश नहीं करते! सूरिजी ने कहा—हम सीमान्तर में आ गए, अब कुछ उपदेश देंगे! वङ्कचूल ने कहा—मेरे से निर्वाह हो सके, ऐसा उपदेश दीजिए। सूरिजी ने उसे चार नियम दिलाए—१. अज्ञात फल न खाना, २. सात-आठ पाँव पीछे हट कर आघात करना, ३. पट्टरानी से गमन नहीं करना, ४. कौए का मांस भक्षण न करना। वह नियम स्वीकार कर गुरु महाराज को नमस्कार कर अपने घर आ गया।

एक बार वह सार्थ पर डाका डालने के लिए गया। शकुन न होने के कारण सार्थ नहीं आया, वङ्कचूल का पाथेय समाप्त हो गया। ठाकुर लोग क्षुधा-पीड़ित हुए। उन्होंने फला हुआ किम्पाक वृक्ष देखा, उसके फल ग्रहण किए। वङ्कचूल ने उस फल का नाम न जानने से उन्हें नही खाया, दूसरे सब लोगों ने खाया। वे लोग किम्पाक फल से मर गए। वङ्कचूल ने सोचा—अहो! नियम पालन का यह फल है! उसके बाद वह पल्ली में अकेला आया। रात्रि में अपने घर में प्रविष्ट होकर दीपक के प्रकाश मे पुष्पचूला को पुरुष वेश में अपनी पत्नी के साथ सोये हुए देखा। उन पर क्रुद्ध होकर कहा—दोनों को खड्ग से मारूँगा! ऐसा सोचकर नियम याद आ जाने से सात-आठ पाँव पीछे हट कर

आघात करने के उद्देश्य से पीछे हटा और खड्ग के खटके से जग कर बहिन ने "वङ्कचूल जीते रहो" शब्द कहे। उसने लज्जित होकर पूछा – यह ऐसा क्यों ? बहिन ने नट का सारा वृत्तान्त बतलाया।

कालक्रम से वङ्कचूल के राज्य-शासन करते उस पल्ली में उन्हीं आचार्य महाराज के धर्मऋषि धर्मदत्त नाम के दो मुनि वर्षावास रहे। उनमें से एक के तीन मासक्षमण और दूसरे के चार मासक्षमण तप था। वङ्कचूल आचार्य महाराज के उपदेश के के शुभ फल अनुभव कर चुका था, अतः उसने—कृपा कर कुछ उपदेश दीजिये—कहा। उन्होंने क्लेश का नाश करनेवाला चैत्य निर्माण कराने का उपदेश दिया। वङ्कचूल ने 'शराविका' पर्वत्त समीपवर्त्ती उसी पल्ली में चर्मणवती नदी के तट पर ऊँचे शिखर वाला सुन्दर जिनालय बनवाया। उसमें श्री महावीर स्वामी की प्रतिमा स्थापित की। वह तीर्थ के रूप में प्रसिद्ध हो गया, चारों दिशाओं से संघ आने लगे।

कालान्तर में कोई व्यापारी अपनी पत्नी के साथ सर्वऋद्धि सहित वहाँ की यात्रा के लिए चला। क्रमशः रन्ति नदी पर आया। नौका में बैठे हुए दम्पत्ति ने चैत्य का शिखर देखा और सोने के कटोरे में कुंकुम, चन्दन, कर्पूर आदि डालकर शीघ्रता से जल में प्रक्षेप करते हुए व्यापारी की पत्नी के हाथ से प्रमादवश छूट कर नदी तल में जा डूबा। वणिक ने कहा—यह करोड़ों के मूल्य वाला रत्नजटित्त कटोरा राजा द्वारा ग्रहणक में दिया हुआ था, अब राजा से कैसे छुटकारा होगा ? उसने दीर्घ विचार करके यह बात वङ्कचूल से कही ताकि यह राजकीय वस्तु मिल जाय ऐसा प्रयत्न करे। वङ्कचूल ने उसकी खोज के लिए धीवर को आदेश दिया, वह नदी में प्रविष्ट होकर तल तक गया। उसने

सोने के रथ में स्थित जीवन्त स्वामी श्री पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा देखी और उस प्रतिमा के हृदय पर उस कटोरे को भी देखा। धीवर ने कहा—ये दम्पति धन्य हैं जिनका घिसा हुआ चन्दन विलेपन भगवान के हृदय पर स्थित है! धीवर ने उसे लाकर व्यापारी को दिया, उसने भी उसे प्रचुर द्रव्य दिया। नाविक ने विम्ब का स्वरूप कहा तो श्रद्धालु वङ्कचूल ने उसे ही प्रवेश कराके भगवत् प्रतिमा को निकलवा और स्वर्णरथ को वहीं छोड़ दिया। भगवान ने स्वप्न में आगे ही सूचित कर दिया था—जहाँ डाली हुई पुष्पमाला जाकर ठहरे वहाँ प्रतिमा की शोध करना! तदनुसार विम्ब लाकर वङ्कचूल राजा को समर्पित कर दिया। उसने श्री महावीर स्वामी विम्ब-जिनालय के वहिर्मण्डप में स्थापित किया और जवतक इसके लिए नया मन्दिर न वने तव तक यही विराजमान रहे। मन्दिर तैयार होने पर उसमें स्थापित करने के लिए राजकीय पुरुषों ने विम्ब को उत्थापन करना प्रारम्भ किया पर देवताधिष्ठान से वह विम्ब नहीं उठा और आज तक भी वैसे ही स्थित है।

धीवर ने पल्लीपति वङ्कचूल राजा से निभेदन किया—मैंने नदी में प्रविष्ट होने पर दूसरी प्रतिमा भी देखी थी, उसे वाहर लाने का प्रयत्न करना चाहिए, पूजा होने पर ही ऐसा होता है! तव पल्लीपति ने अपनी सभा में पूछा—कोई इन प्रतिमाओं का सविधान जानते हो? किसने इन्हें नदी में रखा? यह सुन कर पुरातत्त्वविद स्थविर ने कहा—देव! एक नगर में पहले एक राजा था जो परचक्र के आने पर उसके साथ युद्ध करने के लिए सैन्य सजा कर गया। उसकी पटरानी ने अपने सर्वस्व विम्बद्वय को सोने के रथ में रख कर जल-दुर्ग समझ कर कोटिंवक में डाल कर चर्मणवती में रख दिए। चिरकाल युद्धरत अवस्था में किसी खल व्यक्ति ने वात फैला दी कि राजा को शत्रु ने नष्ट कर दिया।

रानी ने यह सुन कर उस कोटिंबक को जल के तल में रख दिया और स्वयं मरण स्वीकार कर लिया। वह राजा जब शत्रु को हरा कर अपने नगर में आया और रानी के वृत्तान्त को सुन कर संसार से विरक्त होकर भागवती दीक्षा स्वीकार कर ली। उसमें से एक बिम्ब को देव बाहर लाये, वह तो पूज्यमान है, दूसरा भी निकाला जाय ऐसा उपक्रम करना चाहिए! यह सुन कर परमार्हत्त चूडामणि बंकचूल ने उसी धीवर को बिम्ब निकलने के लिए नदी में प्रवेश कराया। उसने उस प्रतिमा को कटि प्रदेश पर्यन्त जल-तल में और अवशिष्ट बाह्य रहे हुए देख कर उसे बाहर निकालने के अनेक उपाय किये पर बाहर न निकलने से दैवी प्रभाव ज्ञात कर उसने अपने स्वामी को उसका स्वरूप निवेदन किया। आज भी वह वैसा ही है। सुना जाता है कि आज भी किसी वृद्ध धीवर ने नौका स्तम्भित होने पर उसका कारण खोजते उस स्वर्णमय रथ की एक कीलिका प्राप्त की। उसे स्वर्णमय देख कर लोभवश सोचा—मैं इस सारे रथ को क्रमशः ग्रहण कर के धनवान हो जाऊँगा! इससे उसे रातभर नींद नहीं आई। किसी अदृश्य पुरुष ने कहा—यदि इसे वहीं रखोगे तो सुखी रहोगे, अन्यथा मै तुम्हें शीघ्र ही मार दूंगा! उसने भय के मारे उस युग-कीलिकादि को वहीं छोड़ दिया। देवाधिष्ठित पदार्थो के प्रति कौन-सी बात सम्भव नहीं होती?

सुना जाता है कि वर्त्तमान काल में कोई म्लेच्छ हाथ में पत्थर ले कर श्री पार्श्वनाथ प्रतिमा को तोड़ने के लिए उपस्थित हुआ। उसकी भुजाएँ स्तम्भित हो गई। बहुत कुछ पूजा-विधि करने से वह ठीक हुआ। श्री वीरप्रभु की प्रतिमा वड़ी है और श्री पार्श्वनाथ प्रतिमा उसकी अपेक्षा छोटी है अतः श्री महावीर प्रतिमा के सामने यह बालरूप देव हैं। इस प्रकार 'मेद' लोग

'चेल्लण' नाम से इसे कहते हैं। बड़े भारी माहात्म्य वाले श्री चेल्लण पार्श्वनाथ के समक्ष उन महर्षियों ने सुवर्ण मुकुट मन्त्राम्नाय भव्यों के लिए आधारित व प्रकाशित की। और वह सिंह-गुफा पल्ली कालान्तर में ढिंपुरी नाम से प्रसिद्ध नगरी हुई। आज भी वे भगवान महावीर और वे चेल्लण पार्श्वनाथ उसी नगरी में यात्रोत्सवादि से आराधन किये जाते हैं।

एक बार वंकचूल खात डाल कर चोरी करने के लिए उज्जैन में किसी सेठ के घर गया। कोलाहल सुन कर वहाँ से लौट आया और देवदत्ता नामक प्रधान गणिका के घर में प्रविष्ट हुआ। उसने उसे कोढी के साथ सोये हुए देखा। वहाँ से निकल कर नगर सेठ के घर गया। वहाँ एक विंशोपक हिसाव में कम हो रहा था जिसके लिए सेठ ने अपने पुत्र को दुर्वाक्यों से फटकार कर घर से निकाल दिया। यह देखते हुए रात बीत गई। फिर—राजकुल में जाऊँगा—यह सोचते हुए सूर्योदय होने से पल्लीपति वंकचूल ने नगर से निकल कर गोह लेकर वृक्ष के नीचे दिन विताया। रात्रि में फिर राजकीय भण्डार के वाहर से गोह के पूँछ द्वारा चढ कर अन्दर प्रविष्ट हो गया। उसे राजा की रूठी हुई पटरानी ने देख कर पूछा—तुम कौन हो ? उसने कहा—मैं चोर हूँ ! रानी ने कहा—डरो मत, मेरे साथ संगम करो ! चोर ने कहा—तुम कौन हो ? उसने कहा—मैं पटरानी हूँ ! चोर ने कहा—तब तो तुम मेरी माँ होती हो ! कहते हुए जाने का निश्चय किया तो रानी ने नखों से अंग विदीर्ण कर पहरेदारों को पुकार के बुलाया। उन्होंने पकड़ लिया। रानी को मनाने के लिए आये हुए राजा ने यह दृश्य स्वयं देख लिया था। अतः उसने अपने पुरुषों को कहा—इसे ज्यादा कष्ट मत दो ! उन्होंने उसे रखा। प्रातःकाल राजा के पूछने पर उसने कहा—देव ! मै चोरी करने के लिए प्रविष्ट हुआ, पीछे आपके भण्डार में देवी ने मुझे देख लिया। इसके आगे कुछ

न कहने पर जानकार राजा ने प्रसन्न होकर उसे पुत्र रूप में स्वीकार कर लिया और सामन्त पद पर आरूढ किया। वंकचूल ने राजा के द्वारा विडम्बना की जाती हुई रानी की रक्षा की। अव वंकचूल सोचने लगा—अहो! नियम धारण करने का भी कैसा शुभ फल है!

एक बार राजा ने उसे कामरूप के राजा को जीतने के लिए भेजा। वह युद्ध में गया और उसे जीत कर घावों से जर्जरित होकर स्वदेश लौटा! राजा ने वैद्यों को नियुक्त कर इलाज कराया पर घाव वढते ही गए। उन्होंने कहा—देव! कौए के मांस से यह अच्छा होगा।

जिनदास श्रावक के साथ वंकचूल की मित्रता थी अत. राजा ने उसे वुलाने के लिए पुरुषों को भेजा ताकि मित्र के समझाने से ये काक-मांस भक्षण कर ले। राजा द्वारा बुलाए हुए जिनदास ने अवन्ती आते हुए किन्हीं दो देवियों को रोते हुए देखा। उसने पूछा—क्यों रोती हो! देवियों ने कहा—हमारा पति सौधर्म देव-लोक से च्युत हो गया अतः हम राजकुमार वंकचूल की प्रार्थना करती हैं, पर तुम्हारे जाने पर वह काक-मांस भक्षण कर दुर्गति-भाजन हो जायगा, इसलिए रोती है। सेठ ने कहा—मैं ऐसा ही करूँगा कि यह उसे भक्षण न करे। सेठ उज्जैन गया, राजा के अनुरोध से उसने वंकचूल से कहा—काक-मांस ग्रहण करो! अच्छे होकर प्रायश्चित्त कर लेना। वंकचूल ने कहा—तुम जानते हो, जिस कार्य को करके फिर प्रायश्चित्त लेना पड़े, इससे तो उसका आचरण पहले से ही न करना श्रेयस्कर है। कीचड़ को प्रक्षालन करने से तो अच्छा है कि उसका स्पर्श न कर दूर ही रहा जाय। इस प्रकार राजा को निषेधकर अपने नियमपालन में दृढ़ रह कर वह मर कर अच्युत कल्प में उत्पन्न हुआ।

लौटते हुए जिनदास श्रावक ने उन देवियों को उसी प्रकार रोते देखकर कहा—अब क्यों रोती हो ? उसने मांस ग्रहण नहीं किया है। देवियों ने कहा—वह तो अधिक धर्माराधन करके अच्युत-कल्प में चला गया, हमारा पति नही बना।

इस प्रकार जैन धर्म के प्रभाव को बहुत काल तक विचारता, मनन करता हुआ जिनदास श्रावक अपने घर लौटा।

इस प्रकार इस तीर्थ के निर्माता वंकचूल भी जगत को आनंद देने वाले हुए। ढिंपुरीतीर्थरत्न का यह कल्प जैसा सुना, उसकी किंचित् रूप से श्री जिनप्रभसूरि ने रचना की।

यह चेल्लण पार्श्वनाथ का कल्प समाप्त हुआ। इसकी ग्रन्थ-संख्या ११६ अक्षर २६ ऊपर है।

■

४४. ढिंपुरीस्तव

विविध उत्तुग पर्वतों के बीच शुभ्र छाया सुशोभित श्री महावीर प्रभु, पार्श्वनाथ, मुनि सुव्रत और आदिनाथ की प्रतिमाओं से युक्त, नियमधारण करने वाले श्री वंकचूल की विश्वविश्रुत पल्ली ढिंपुरी चिरकाल तक अद्भुत लक्ष्मी को करें।

यहाँ रन्तिदेव नदी के तट पर स्थित मनोहर गगनचुम्बी शिखर वाले चैत्यों को देखकर यात्री-गण अपने नेत्रों को शीतलता देते है।

यहाँ मूलनायक चरम जिनेश्वर महावीर स्वामी की लेप्यमय

विशाल प्रतिमा है। दाहिनी ओर चेल्लण पार्श्वनाथ जयवन्त है जिनके ऊपर सर्पफण अलंकृत हैं।

एक ओर आदिनाथ जिनेश्वर और दूसरे ओर श्री मुनि सुव्रत भगवान हैं। इस प्रकार अनेक जिनेश्वर मूर्त्तियों वाला मन्दिर चमकीले बादलों के सदृश है। द्वार के समीपवर्त्तिनी अंबिका देवी और छः भुजाओं वाला क्षेत्रपाल है। सर्वज्ञ भगवान के चरण कमलों में वे दोनों सेवा करते हुए भ्रमर के समान संघ के विघ्न-समूह क्षण मात्र में नष्ट करते हैं।

यहाँ पौष दशमी को लोक समूह द्वारा किये जाने वाले उत्सव को देखकर भव्यजन कलिकाल के घर निश्चय ही कृतयुग को पाहुने के रूप में आने की संभावना करते हैं।

देवताओं द्वारा पूजित इस तीर्थ की भक्ति से आराधना करके समस्त मनोवांछित प्राप्त होते हैं और सर्व प्रकार के भयों को जीत लेते हैं। अत्यन्त सुगन्धित चन्दन को पा कर ताप से व्याप्त आलिङ्गित अंग को कौन सहन कर सकता है?

पापों को दूर करने में दृढ़ वंद्यजन ढिंपुरी तीर्थ रत्न की वन्दना करते है। जिसमें कल्प वृक्ष के सदृश प्राथित अर्थ को देने वाले पद्मावती और धरणेन्द्र द्वार चरण गृहीत भगवान चेल्लण पार्श्वनाथ की यह कायोत्सर्ग स्थित देह है।

शक संवत् १२५१ दीपावली के दिन संघसहित इस नगरी में आकर प्रभावमहोदधि इस तीर्थ का मुदित मन वाले श्री जिनप्रभ-सूरि ने यह स्तोत्र बनाया है।

४५. चौरासी तीर्थ-नामसंग्रह-कल्प

जिन्होंने पाप का निग्रह कर दिया है ऐसे पंच परमेष्ठी की उपासना करके तंत्र जानने वालों को विदित 'चौरासी तीर्थ जिन' नाम का संग्रह करता हूँ।

जैसे कि शत्रुञ्जय परभुवन में दीपक के तुल्य श्री वज्रस्वामी प्रतिष्ठित श्री आदिनाथ एवं पांडवों द्वारा स्थापित श्री मूलनायक नन्दिवर्द्धन युगादिनाथ, श्री शांतिनाथ, पुण्डरीक, श्री कलश प्रतिष्ठित और दूसरे श्री वज्रस्वामी प्रतिष्ठित पूर्ण कलश। सुधाकुण्ड जीवित स्वामी श्री शांतिनाथ और अवसर्पिणी में भरत क्षेत्र से प्रथम सिद्ध होने वाली माता मरुदेवी स्वामिनी।

श्री उज्जयन्त गिरनार पर पुण्य कलश-मदन मूर्त्ति श्री नेमिनाथ, कंचन वालानक में अमृतनिधि श्री अरिष्टनेमि, पापा मठ मे अतीत चौवोसी में से श्री नेमीश्वरादि आठों पुण्य के निधान है।

१. कायंद्रा में त्रिभुवन मंगल कलश श्री आदिनाथ। पारकर देश में आदिनाथ, अयोध्या में श्री ऋषभदेव, कोलापुर में वज्र-मिट्टमय श्री भरतेश्वरपूजित भुवनतिलक श्री आदिनाथ, सोपारक में जीवत स्वामी श्री ऋषभदेव प्रतिमा। नगरमहास्थान में श्री भरतेश्वर द्वारा कारित युगादि देव, दक्षिणापथ में गोमटदेव श्री वाहुवली, उत्तरापथ में कलिंग देश में गोमट श्री ऋषभदेव, खंगारगढ में श्री उग्रसेन द्वारा पूजित पृथ्वी के मुकुट श्री आदिनाथ, महानगरी के उद्दण्डविहार में श्री आदिनाथ, पुरिमताल में श्री आदिनाथ, तक्षशिला में वाहुवलि का वनवाया हुआ धर्मचक्र। मोक्षतीर्थ में आदिनाथपादुका, कुल्पाक में मन्दोदरी के देहरासर

के श्री माणिक्यस्वामी ऋषभदेव। गंगा यमुना के वेणी संगम पर श्री आदिकर मण्डल तीर्थ है।

२. अयोध्या में श्री अजितनाथ, चन्देरी में श्री अजितनाथ, तारण तीर्थ की विश्वकोटिशिला पर श्री अजितनाथ, अंगदिका में श्री अजित-शांति दो तीर्थंकर ब्रह्मेन्द्र के देहरासर के हैं।

३. श्रावस्ती में जांगुली विद्यापति श्री संभवनाथ हैं।

४. सेगमती गाँव में श्री अभिनन्दन देव हैं। नर्मदा नदी उन्हीं के चरणों में से निकली है।

५. क्रौंच द्वीप, सिंहल द्वीप, हंस द्वीप में श्री सुमतिनाथ देव की पादुका हैं। आंबुरिणि गाँव में श्री सुमतिनाथ देव हैं।

६. माहेन्द्र पर्वत और कौशाम्बी में श्री पद्मप्रभ हैं।

७. मथुरा में महालक्ष्मीनिर्मित श्री सुपार्श्व-स्तूप है। दशपुर नगर में सीता देवी के देहरासर के श्री सुपार्श्वनाथ हैं।

८. प्रभास में शशिभूषण श्रीचन्द्रप्रभ स्वामी की चन्द्रकान्त मणिमय प्रतिमा श्री ज्वालामालिनी देवी के देहरासर की है। वल्लभी में आई हुई, श्री चन्द्रप्रभ स्वामी की प्रतिमा नन्दिवर्द्धन राजा की बनवायी हुई और श्री गौतमस्वामी द्वारा प्रतिष्ठित है। नाशिक में जीवितस्वामी त्रिभुवनतिलक श्री चन्द्रप्रभ हैं। चन्द्रावती के मन्दिर में मुकुटसदृश श्री चन्द्रप्रभ हैं। वाराणसी के विश्वेश्वर में भी श्री चन्द्रप्रभ भगवान है।

९. कायाद्वार में श्री सुविधिनाथ भगवान है।

१०. प्रयाग तीर्थ में श्री शीतलनाथ है।

११. विन्ध्याचल और मलयगिरि पर श्री श्रेयांसनाथ भगवान है।

१२. चम्पानगर में विश्वतिलक श्री वासुपूज्य है।

१३. कम्पिला जी तीर्थ में गंगातट पर एवं श्रीसिंहपुर में श्री विमलनाथ हैं।

१४. मथुरा में यमुना-ह्रद में, द्वारिका में समुद्र मे, और शाकपाणि में श्री अनन्तनाथ भगवान है।

१५. अयोध्या के समीप रत्नवाहपुर में नागराजपूजित श्री धर्मनाथ भगवान है।

१६. किष्किन्धा, लंका, पाताललंका और त्रिकूटगिरि पर श्री शान्तिनाथ भगवान हैं।

१७. १८. गंगा यमुना के वेणी संगम पर श्री कुन्थुनाथ—श्री अरनाथ भगवान है।

१९. श्रीपर्वत पर श्री मल्लिनाथ है।

२०. भृगुपत्तन—भरोंच में अनर्घ्य रत्नचूड़ श्री मुनिसुव्रत है। प्रतिष्ठानपुर—अयोध्या, विन्ध्याचल में माणिक्य दंडक मे श्री मुनि सुव्रत भगवान हैं।

२१. अयोध्या में मोक्ष तीर्थ में श्री नमिनाथ हैं।

२२. सौरीपुर के शंख-जिनालय में, पाटला नगर में, मथुरा, द्वारिका, सिंहपुर, स्तम्भ तीर्थ में पाताललिंग नामक श्री नेमिनाथ भगवान हैं।

२३. अजाहरा में नवविधि पार्श्वनाथ, स्तम्भन में भवभयहर पार्श्वनाथ, फलौदी में विश्वकल्पलता श्री पार्श्वनाथ, करहेंड़ा में उपसर्गहर पार्श्वनाथ, अहिछत्रा में त्रिभुवनभानु पार्श्वनाथ, कलिकुण्ड और नागह्रद में श्री पार्श्वनाथ, कुक्कुटेश्वर में विश्वगज पार्श्वनाथ। माहेन्द्र पर्वत पर छाया पार्श्वनाथ, ओंकार पर्वत पर सहस्त्रफणा पार्श्वनाथ, वाराणसी में दण्डखात में भव्य पुष्करावर्त्तक पार्श्व, महाकाल के अन्तर मे पातालचक्रवर्ती पार्श्व, मथुरा में कल्पद्रुम पार्श्व, चम्पा में अशोकपार्श्व, मलयगिरि पर श्री पार्श्वनाथ भगवान हैं।

२४. श्रीपर्वत पर घण्टाकर्ण महावीर, विन्ध्याचल पर श्री-गुप्त, हिमाचल में छायापार्श्व मंत्राधिराज श्रीस्फुलिंग हैं। श्री-पुर में अन्तरिक्ष श्री पार्श्वनाथ, डाकुली भीमेश्वर में श्री पार्श्व-नाथ, भाइल स्वामिगढ में देवाधिदेव हैं।

श्री रामसेन में प्रद्योतकारी श्रीवर्द्धमान, मोढेरा, वायड़, खेड़नाणा, पाली, मतुण्डक, मूंगथला, श्री मालपत्तन, ओसियाँ, कुण्डग्राम, सत्यपुर, टंका में, गंगाह्रद में, सर स्थान में, वीतभय में, चम्पा में, अपापा में, पुण्ड्र में पर्वत पर नन्दिवर्द्धन कोटि भूमि में श्री वीर प्रभु हैं। राजगृह वैभारगिरि पर, कैलाश और श्री रोहणाचल में भी श्री महावीर भगवान हैं।

अष्टापद पर चौबीस तीर्थङ्कर हैं, समेतशिखर पर वीस जिनेश्वर हैं, हेम सरोवर में बहत्तर जिनालय है, कोटिशिला सिद्धक्षेत्र है।

इस प्रकार जैन धर्म में प्रसिद्ध तीर्थों की नामावली को श्री जिनप्रभसूरि ने स्फुटित किया। इनमें कुछ मैंने देखे हैं, कुछ सुने हैं वैसे ही अपने तीर्थों के नामों की पद्धति में मैंने लिखे हैं।

समस्त तीर्थों का नामसंग्रह-कल्प समाप्त हुआ। इसकी ग्रंथ संख्या ४९ और २१ अक्षर हैं।

●

४६. समवशरण रचना-कल्प

श्री महावीर जिनेश्वर को नमस्कार करके पूर्वाचार्य कृत समवशरण-रचना का गाथाओं से कल्प कहता हूँ।

वायुकुमार और मेघकुमार क्रमशः एक योजन भूमि शुद्ध कर सुगन्धित जल की वर्षा करते हैं। वाणमंतर मणिरत्नमय भूमि रत्न करते है और कुसुमवृष्टि करते हैं।

श्रेष्ठ रजत कनक और रत्न के तीन प्राकार क्रमशः भुवनपति, ज्योतिष और वाणमंतर देव बनाते हैं। प्राकारों पर कंचन, रत्न और मणियों के कपिशीर्षक होते हैं।

उन प्राकारों का एक-एक गाऊ और छः सौ धनुष का अन्तर होता है। तेतीस धनुष एक हाथ और आठ अंगुल का विस्तार होता है।

उन वप्रों के पाँच सौ धनुष ऊँचे द्वार होते हैं। ये सर्व माप जिनेश्वरों के स्वहस्त प्रमाण से जानना चाहिए।

भूमि से दश हजार सोपान चढ़ने पर प्रथम प्राकार आता है। वहाँ से पचास धनुष जाने पर पाँच हजार सोपान चढ़कर दूसरा वप्र आता है।

उसका अन्तर भी पूर्वोक्त विधि से जान लेना चाहिए। तदनन्तर पूरे बीस हजार सोपान चढ़ने पर तीसरा कोट है।

वे सब क्रमशः दश, पाँच और पाँच हजार सोपान एक हाथ ऊँचे व एक हाथ विस्तीर्ण हैं। बाह्य, मध्य और अभ्यन्तर वप्रों के ये सोपान समझना चाहिए।

उनके बीच में भूमि से ढाई कोश ऊँचा, दो सौ धनुष लम्बा-

चौड़ा मणिपीठ है और जिनेश्वरों की धनुष-ऊँचाई के समान ही उसके चार द्वार हैं।

उस चार मणि-रत्न जटित सिंहासन हैं, जिन पर तीन छत्रों से भूषित भगवान पूर्वाभिमुख विराजमान होते हैं।

समधिक योजन विस्तार वाला दो सौ सोलह धनुष ऊँचा अशोक वृक्ष है। व्यन्तरदेव भगवान के तीन प्रतिविम्ब शेष तीन सिंहासनों पर विराजमान करते हैं।

परिषद के आगे प्रारम्भ में मुनिराज, वैमानिक देवियाँ और साध्वियाँ रहती हैं। भुवनपति व्यन्तर ज्योतिषी देव-देवी, वैमानिक देव और पुरुष-स्त्री बैठते हैं।

कुडहिकेतु संकीर्ण एक हजार योजन ऊँचे दण्ड वाला धर्मध्वज होता है, दो यक्ष चामरधारी होते हैं और जिनेश्वर के आगे धर्म-चक्र होता है।

ऊँची ध्वजाएँ मणितोरण अष्ट मङ्गल, पूर्णकलश, मालाओं, पंचालिकाओं और छत्रादि से प्रत्येक द्वार सुशोभित होते हैं, धूप-घटिकाएँ होती हैं।

क्रमशः हेम-श्वेत-रक्त और श्यामल वर्ण वाले वैमानिक, व्यन्तर, ज्योतिषी और भुवनपति प्रतिद्वार पर रत्न के वप्र वाले पूर्वादि वप्रों पर प्रतिहार होते हैं।

जय, विजय, जयन्त और अपराजित क्रमशः गौर, रक्त, कनक व नील आभा वाली देवियाँ पूर्व क्रम से कनकमय स्थापित करती हैं।

प्रत्येक वाह्य वप्र के द्वार पर दोनों ओर जटित मुकुटों से मण्डित तुम्वुरु, षट्वाङ्ग पुरुष श्रीमालाओं से युक्त स्थापित करते हैं।

वाह्यवप्र में यानादि रहते हैं, दूसरे वप्र में तिर्यंच परस्पर

शत्रु भी मित्र भाव वाले होकर बैठते हैं। ये सब रत्न वप्र के बाहर मणिमय छंद में बैठते है।

बाह्य वप्र के द्वारा मध्य में दो दो गोल वापियाँ होती है। कोनों मे एक-एक चौकोर वापी होती है।

तीर्थंकर पादमूल में नमस्कार करते हुए देव चारों ओर कल-कल शब्द से उकडु बैठे हुए सिंहनाद करते हैं।

चैत्य वक्ष, पीठ छंदक, आसन, छत्र, और चामर जो भी करणीय है, वे बाणमंतर देव करते हैं।

पूर्व से पश्चिम का अवगाहन करती हुई दो-दो पद्मपंक्तियाँ मार्ग मे भगवान के पाँवों के नीचे आती है। अन्य सात घूमती हुई क्रमशः पॉवों के नीचे आती रहती हैं।

दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशाभिमुख देव कृत प्रतिविम्ब होते हैं। ज्येष्ठ गणधर अथवा अन्य दक्षिण पूर्व में निकट बैठते है।

जिनेश्वर देव के प्रतिविम्ब जो देवकृत हैं वे तीनों दिशाओं के अभिमुख हैं। उनका भी वैसा ही प्रभाव है और तदनुरूप होते है।

खड़े हुए महर्द्धिक प्रणाम करते हैं, बैठे हुए भी प्रणाम करते न उन्हे कष्ट होता है न वे विकथा करते है, न उनमें परस्पर मात्सर्य भाव होता है न भय करते हैं।

भगवान साधारण शब्द से तीर्थ को प्रणाम करके योजन-गामिनी वाणी से सभी सन्नी जीवों को उपदेश देते हैं।

जहाँ पहले समवशरण नहीं होता, जिस श्रमण ने पहले नही देखा, वहाॅ वे भी बारह योजन से शीघ्र आ जाते है।

निकली हुई भगवान की वाणी उनके कानो मे साधारण रूप से श्रवित होती है। और उनके श्रोत्र निवृत्त नहीं होते।

शीत, उष्ण, क्षुधा, पिपासा, परिश्रम भय की अवगणना करते

हुए जो जिनेश्वरदेव कहते हैं उसे यदि सारी आयु तक (आजीवन) सुनना पड़े तो वे सुनने की इच्छा रखते हैं।

साढ़े बारह लाख और उतने करोड़ सोनइयों का प्रीतिदान भगवान का आगमन कहने वाले को चक्रवर्त्ती देते हैं।

वासुदेव इतने ही प्रमाण के रजत का दान देते हैं। लाख और हजार का दान मण्डलीक राजा (प्रान्तपति) देते हैं।

इभ्य—श्रेष्ठी आदि भी जिनेश्वर भगवान का आगमन सुनकर नियुक्त पुरुषों को अपनी-अपनी भक्ति और वैभव के अनुसार दान देते है।

राजा, युवराज, अमात्य द्वारा शासित प्रवर जनपद में कोई दुर्बलाखंडित पूजायोग्य आढक कलमा शालि बिना तुले अखण्ड फलक जैसे बलि किए जाते हैं, जिनसे देवता भी स्तब्ध हो जाते हैं।

पूर्व द्वार से एक साथ ही पूजा की जाती है। तिगुनी पूर्व द्वार पर उसकी आधी अन्य द्वार स्थित देवों को दी जाती है।

आधी-आधी अधिपतियों की और अवशेष याचक जनों की होती है। यह सर्व रोगों का प्रशमन करने वाली होती है, छः मास तक कोई व्याधि नहीं आती।

पादपीठ पर राजोपनीत सिहासन पर बैठे हुए ज्येष्ठ गणधर अथवा दूसरे गणधर दूसरे प्रहर में देशना देते हैं।

श्री जिनप्रभसूरि ने यह समवशरण रचना-कल्प संक्षेप से सूत्रानुसार लिखा है। इसे पढ़ना चाहिए।

श्री समवशरण रचना-कल्प समाप्त हुआ। इसकी ग्रन्थ संख्या ४३ है।

४७. कुडुंगेश्वर नाभेय (ऋषभ) देव-कल्प

श्वेताम्वराचार्य चारणमुनि वज्रसेन द्वारा शक्रावतार तीर्थ में प्रतिष्ठित श्री ऋषभदेव जयवन्त हों।

विशेष तेजस्वी भगवान कुडुंगेश्वर ऋषभदेव का संक्षिप्त कल्प देखकर कहता हूँ।

पूर्व काल में लाट देश मण्डन भरोंच नगर के अलङ्कार शकुनिकाविहार स्थित श्री वृद्धवादीसूरि ने "जो जिससे हारेगा वह उसका शिष्य होगा" इस प्रतिज्ञा को लेकर दक्षिणापथ से आये हुए कर्णाट भट्ट दिवाकर को जीत कर उसे व्रत ग्रहण कराया, सिद्धसेन दिवाकर नाम रखा गया। फिर कितने ही दिनों में उसने समस्त आगमों का अध्ययन कर लिया। एक दिन उहोंने—सभी आगमों को मैं संस्कृत में कर दूँगा—कहा तो पूज्यश्री ने कहा—क्या तीर्थङ्कर-गणधर संस्कृत नही जानते थे जो अर्द्धमागधी में आगमों को कहा। ऐसा बोलने से तुम्हे प्रायश्चित्त लगा है। तुम्हे क्या कहा जाय, तुम स्वयं जानते हो!

उन्होंने विचार कर कहा—भगवन्! मौन धारण करके बारह वर्षीय पाराञ्चित नामक प्रायश्चित्त लेकर रजोहरण मुखवस्त्रिकादि साधु लिंग को गुप्त रखकर अवधूत के वेश में विचरण करना आवश्यक है! गुरु महाराज के मुख से—"यह उपयुक्त है" ऐसा सुन कर ग्राम नगरादि देशान्तर मे पर्यटन करते हुए बारहवें वर्ष उज्जैन मे कुडुंगेश्वर देवालय में शेफालिका के कुसुम से रञ्जित वस्त्र धारण किए हुए आकर बैठ गए। लोगों द्वारा "देव को क्यों नहीं नमस्कार करते हो?" ऐसा कहने पर भी कुछ नही बोले। इस प्रकार जन-परम्परा से सुनकर सबको ऋण मुक्त करके अपना

संवत्सर प्रवर्त्तन करने वाले महाराजा श्री विक्रमादित्यदेव ने आकर कहा—क्षीर चाटने वाले भिक्षु ! क्या तुम देव को नमस्कार नहीं करते ? तब उन्होंने कहा—मेरे नमस्कार करने से देव का लिंग भग्न हो जायगा ! जो आपके अप्रीति का कारण हो जायगा ! राजा ने कहा—होने दो ! आप नमस्कार तो कीजिये ! उन्होंने कहा—तब सुनिये ! फिर उन्होंने पद्मासनस्थ होकर द्वात्रिंशद् द्वात्रिंशिकाओं से देव की स्तुति करना प्रारम्भ किया। यथा—

"अव्यक्त, प्रव्याहृत, विश्वलोक स्वरूप अनादि-मध्य-अन्त रहित पुण्य-पापविहीन स्वयंभू और सहस्रनेत्रभूत अनेक रूप वाले एकाक्षर भावलिंग को ....।

इत्यादि प्रथम श्लोक से ही प्रासाद स्थित शिखि के शिखाग्र से धुआँ निकलने लगा। तब लोगों ने कहा—'आठ विद्याओं के अधीश्वर ये कालाग्नि रुद्र हैं ! भगवान अपने तीसरे नेत्र की अग्नि से इस साधु को भस्म कर डालेंगे !" इतने में ही बिजली के तेज समान तड़तड़ाहट करते हुए प्रथम ज्योति निकलकर अप्रतिचक्रा—चक्रेश्वरी देवी द्वारा मिथ्यादृष्टि देवता को ताड्यमान करते लिंग-मूल से दो टुकड़े होकर पद्मासनस्थ स्वयंभू भगवान ऋषभदेव प्रादुर्भूत हुए।

इस धर्मप्रभावना द्वारा पाराञ्चित समुद्र से उत्तीर्ण होकर उन्होंने रक्ताम्बर त्याग कर रजोहरण मुखवस्त्रादि युक्त साधुलिंग में प्रकट होकर महाराजा को धर्मलाभ आशीर्वाद दिया। "दूर से ही हाथ उठाए हुए आशीर्वादरूप 'धर्मलाभ' बोलने पर आचार्य सिद्धसेन को राजा ने करोड़ दिए।" फिर प्रभु से क्षमा-याचना कर राजा ने स्तुति की।

पाराञ्चित प्रायश्चित्त वहन करने वाले सिद्धसेन दिवाकराचार्य प्रतिष्ठित श्रीमान् कुडुङ्गेश्वर नाभिराजाङ्गज ऋषभदेव जिनेश्वर आपका कल्याण करे।

फिर भगवान श्री सिद्धसेन दिवाकर सूरि की संजीवनी चारि-चरक न्याय से देशना द्वारा भद्र-स्वभावी श्री विक्रमादित्य महाराजा ने सम्यक्त्वमूल देशविरति धर्म विशेष रूप से स्वीकार किया। और उन्होंने गोह्लद मण्डल में सांवद्रा आदि ९१ गाँव, चित्रकूटमण्डल के वसाड़ प्रभृति ८४ गाँव, घुंटारसी आदि ८४ गाँव, मोहड़वासक मण्डल के ईसरोंड़ा प्रभृति ५६ गाँव श्रीकुडुंगेश्वर ऋषभदेव भगवान को अपने निःश्रेयस् के हेतु ताम्रशासन कर दिए। यह शासनपट्टिका "श्रीमद् उज्जयिनी में संवत् १ चैत्र सुदी १ गुरुवार को भाट देशीय महाक्षपटलिक परमार्हत् श्वेताम्बरोपासक ब्राह्मण गौतम के पुत्र कात्यायन ने राजा (ज्ञा) से लिखी।"

अब श्री कुडुंगेश्वर भगवान ऋषभदेव के प्रगट होने के दिन से लेकर सर्वातम रूपसे मिथ्यात्व का उच्छेद कर सभी जटाधरादि दार्शनिक लोगों को श्वेताम्बर बनाकर मिथ्यादृष्टि देव-गुरु से परिमुक्त कर सारी पृथ्वी को जैन मुद्राङ्कित बनाया। प्रसन्न-चित्त श्री सिद्धसेन सूरि ने राजा से कहा—

हे विक्रमादित्य! तुम्हारे ग्यारह सौ निन्याणवें वर्ष पूर्ण होने पर तुम्हारे जैसा कुमारपाल राजा होगा!

इस प्रकार श्री कुडुंगेश्वर युगादिदेव सर्वजगत्पूज्य ख्याति-प्राप्त हुए।

कुडुंगेश्वर देव के इस कल्प की श्री जिनप्रभसूरि ने यथाश्रुत सुन्दर रचना की।

कुडुंगेश्वर युगादिदेव-कल्प समाप्त हुआ, इसकी ग्रन्थ-संख्या ५५ अक्षर १८ ऊपर है।

❁

४८ व्याघ्री-कल्प

जो जीव-जन्तु आराधक होते हैं, उनका कीर्त्तन करने से निश्चय ही कल्याण होता है, यह हृदय में आलोचना-विचार करके मैं किञ्चित् रूप में व्याघ्री-कल्प कहता हूं।

श्री शत्रुञ्जय पर आदिनाथ चैत्य दुर्ग के प्रतोली द्वार को रोक कर कभी कोई व्याघ्री आ बैठी। उसे निश्चलाङ्गी देखकर उससे आतङ्कित चिन्तित मन वाले श्रावक लोग जिनेश्वर को नमन बाहर से ही कर लेते, पर आगे नहीं जाते।

कोई साहसी ठाकुर उसके पास गया, पर वह न तो उसके प्रति आकृष्ट हुई और न उसको किञ्चित् भी मारने की चेष्टा की।

तब उस क्षत्रिय ने कहीं से मांस लाकर उसके आगे रखा, पर उसने उस ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा।

अब निर्भय होकर श्रावकों ने भी उसके आगे आकर क्रमशः उत्तम भक्ष्य और पानी रखा। तो भी उसे अनिच्छुक देखकर जनता ने हृदय में सोचा—अवश्य ही इसने जातिस्मृति पाकर तीर्थ पर अनशन स्वीकार किया है।

इसका तिर्यच भव भी प्रशंसनीय है, जिसने चारों प्रकार का आहार छोड़ दिया। यह एकाग्र नेत्रों से देव को ही निरीक्षण करती है।

साधर्मी की बुद्धि से श्रावकों ने उसकी चन्दन-पुष्पादि से पूजा की और संगीत उत्सवादि में भावना-भक्ति में लग गए।

निरागार प्रत्याख्यान करवाया और हर्षपूर्वक मन से ही उसने श्रद्धा करके उसे स्वीकार किया।

इस प्रकार वह तीर्थ के माहात्म्य से ही शुद्ध वासना-भावना समृद्ध हुई। सात आठ दिन अनशन पालन कर पापों को नष्ट कर वह स्वर्ग गई।

अगर-चन्दन में उसके शरीर का अग्नि-संस्कार करके प्रतोली के दक्षिण तरफ उसकी पाषाणमूर्त्ति स्थापित की।

तीर्थचूडामणि श्री विमलाचल की चिरकाल जय हो, जहाँ तिर्यंच भी आराधकाग्रणी हुए।

श्री जिनप्रभसूरि ने यह व्याघ्री-कल्प रच कर जो पुण्य उपार्जन किया वह श्रीसंघ को सुखकारी हो।

यह व्याघ्री-कल्प समाप्त हुआ, इसकी ग्रन्थ संख्या १४ है।

•

४९. अष्टापदगिरि-कल्प

अष्टापद-स्वर्ण के समान देह की कान्ति वाले भवरूपी हस्ती के लिए अष्टापद के समान श्री ऋषभदेव को नमस्कार करके अष्टापद गिरि का कल्प संक्षेप से कहता हूँ।

इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे दक्षिण भरतार्द्ध में भारतवर्ष में नौ योजन चौड़ी और बारह योजन लंबी अयोध्या नामक नगरी है। यही श्री ऋषभ-अजित-अभिनंदन-सुमति-अनंतादि जिनेश्वरों की जन्मभूमि है। इस के उत्तर दिशा में बारह योजन पर अष्टा-पद नामक कैलाश अपर नाम वाला रम्य गिरिश्रेष्ठ आठ योजन ऊँचा, स्वच्छ स्फटिक शिलामय है। इसी से लोगों में धवल गिरि

नाम भी प्रसिद्ध है। आज भी अयोध्या के निकटवर्ती उड्डयकूट पर स्थित होने पर आकाश निर्मल हो तो उसकी धवल शिखर पंक्तियाँ दीखती हैं। फिर वह महासरोवर, घने सरस वृक्ष, पानी के पूर वाले झरनों से युक्त, परिपार्श्व में संचरण करते जलधर, मत्त मोर आदि पक्षियों के कोलाहल युक्त, किन्नर-विद्याधररमणियों से रमणीक, चैत्यों को वंदन करने के लिए आने वाले चारण-श्रमणादि लोगों के दर्शनमात्र से भूख प्यास हरण करने वाला, निकटवर्त्ती मानसरोवर विराजित है। इसकी उपत्यका में साकेत-वासी लोग नाना प्रकार की क्रीडाएँ कराते है।

इसी के शिखर पर ऋषभदेव स्वामी चतुर्दश भक्त से पर्यंकासन स्थित, दस हजार अणगारों के साथ माघी कृष्ण त्रयोदशी के दिन अभिजित्त नक्षत्र में पूर्वाह्ण में निर्वाण प्राप्त हुए। शक्रादि ने वहाँ स्वामी का देह-संस्कार किया। पूर्व दिशा में स्वामी की चिता, दक्षिण दिशा में इक्ष्वाकुवंशियों की और पश्चिम दिशा में शेष साधुओं की थी। उन तीन चितास्थानों पर देवों ने तीन स्तूप किये। भरत चक्रवर्त्ती ने स्वामी के संस्कार के निकटवर्ती भूतल पर एक योजन लंबा, आधा योजन चौड़ा, तीन कोश ऊँचा सिंह-निषद्या नामक प्रासाद रत्नोपल-वार्द्धकि रत्न के द्वारा बनवाया। उसके स्फटिक रत्नमय चार द्वार है। उभय पक्ष में सोलह रत्न चंदन कलश हैं। प्रत्येक द्वार पर सोलह रत्नमय तोरण है। द्वार-द्वार पर सोलह अष्टमंगल हैं। उन द्वारों में चार विशाल मुख्य मण्डप है। उन मुख्य मण्डपों के आगे चार प्रेक्षामण्डप है। उन प्रेक्षामण्डपों के मध्य भाग में वज्रमय अक्षवाटक हैं। प्रत्येक अखाड़े के बीच में रत्नसिंहासन है। प्रत्येक प्रेक्षा-मण्डप के आगे मणिपीठिकाएँ हैं। उनके ऊपर रत्नमय चैत्य-स्तूप हैं। उन चैत्य-स्तूपों के आगे प्रत्येक के प्रतिदिशा में बड़ी विशाल पूजा-मणि-

पीठिका हैं। उन प्रत्येक के ऊपर चैत्य वृक्ष है। चैत्य स्तूप के सम्मुख पाँच सौ धनुष प्रमाण वाली सर्वांग रत्न निर्मित ऋषभ-वर्द्धमान-चन्द्रानन-वारिषेण नामक पर्यंकासन विराजित मनोहर शास्वत जिनप्रतिमाएँ नन्दीश्वर द्वीप चैत्य मध्य स्थित्त की भाँति हैं। उन चैत्य-स्तूपों के आगे प्रत्येक चैत्य-पादप हैं। उन चैत्य-वृक्षों के आगे मणिपीठिकाएँ हैं। उन प्रत्येक के ऊपर इन्द्र-ध्वजाओं के आगे तोरण और सोपान युक्त, स्वच्छ शीतल जल से पूर्ण, विचित्र कमल शालिनी, मनोहर दधि मुखाधार पुष्करिणी के सदृश नन्दा पुष्करिणी है।

सिंह-निषद्या महाचैत्य के मध्य भाग में विशाल मणिपीठिका है। उनके ऊपर चित्र रत्नमय देवच्छंदक है। उसके ऊपर नाना वर्ण के सुगम उल्लोच है। उल्लोचों के अन्तर पार्श्व में वज्रमय अंकुश है। उन अंकुशों से अवलम्बित्त घड़े में आने योग्य आँवले जैसे प्रमाण के मुक्ताओं के हार हैं। हार-पंक्तियों में विमल मणि-मालिकाएँ है। मणिमालिकाओं के नीचे वज्रमालिकाएँ हैं। चैत्य भित्ती में विचित्र मणिमय गवाक्ष हैं, जिनमें जलते हुए अगर-धूप समूह की मालिकाएँ है।

उस देवच्छंदक में रत्नमय ऋषभादि चौबीस जिनप्रतिमाएँ अपने-अपने संस्थान, प्रमाण और वर्ण वाली भरत चक्रवर्त्तीकारित हैं। उनमें सोलह प्रतिमाएँ ऋषभ, अजित्त, संभव, अभिनन्दन, सुमत्ति, सुपार्श्व, शीतल, श्रेयांस, विमल, अनन्त, शान्ति, कुन्थु, अर, नमि और महावीर भगवान की स्वर्णमय है। मुनिसुव्रत और नेमिनाथ की लाजवर्तमय है। चन्द्रप्रभ और सुविधिनाथ की स्फटिक रत्नमय हैं। मल्लि और पार्श्वनाथ की वैदूर्यमय है। पद्म-प्रभ और वासुपूज्य भगवान की पद्मरागमय हैं। उन सब प्रतिमाओं के लोहिताक्ष प्रतिषेक पूर्ण अंक रत्नमय नख हैं। नखपर्यन्त जावयर के जैसे लोहिताक्ष मणि रस का जो सिंचन किया जाता

है उसे प्रतिषेक कहते है। नाभि, केशान्तभूमि, जिह्वा, तालु, श्रीवत्स, चुचुक, हाथ और पाँवों के तले तपनीय स्वर्णमय हैं। नयनपद्म, कनीनिकाएँ, मंशु, भौंहें, रोम और शिरके केश अरिष्ट-रत्नमय हैं। ओष्ठ विद्रुममय हैं, दन्त स्फटिकमय हैं, शीर्षघटिका वज्रमय हैं। अन्दर लोहिताक्ष प्रतिषेक वाली स्वर्णमय नाशिकाएँ हैं। लोहिताक्ष प्रतिषेक प्रान्त वाले अंकमय लोचन है। उन प्रतिमाओं के पृष्ठ भाग में प्रत्येक के एक-एक मुक्ताप्रवाल जाल कंस कोरंट मल्ल दाम वाली, स्फटिक मणि-रत्न के दण्ड वाली, श्वेत छत्र के धारण करने वाली छत्रधर प्रतिमाएँ हैं। उनके दोनों ओर प्रत्येक उठाए हुए मणिचामरों वाली रत्नमयी चामर-धारिणी प्रतिमाएँ हैं। प्रतिमाओं के आगे दो-दो नागप्रतिमाएँ, दो-दो यक्षप्रतिमाएँ, दो-दो भूतप्रतिमाएँ, दो-दो कुण्डधारिणी प्रतिमाएँ सर्वाङ्गोज्ज्वल रत्नमयी कृताञ्जलि हो पर्युपासना करती हैं। तथा देवछंदा में चौबीस रत्न घण्टे, चौबीस माणिक्य दर्पण और वैसे ही स्वर्णमयी स्थान स्थित दीपिकाएँ हैं। तथा रत्नकरण्डक पुष्प चंगेरियाँ, लोमहस्त, पटलिकाएँ, आभरणकरण्डक कनकमय हैं। धूपदहनक, आरतियाँ, रत्नमय मंगलदीप, रत्नमय भृंगार, रत्नमय स्थाल, सोने के प्रतिग्रह, रत्नचन्दन के कलश, रत्नमय सिंहासन, रत्नमय अष्टमङ्गल, स्वर्णमय तेल के डब्बे, कनकमय धूपभाण्ड और स्वर्णमय कमलहस्तक हैं। ये सब प्रत्येक प्रतिमा के आगे होते हैं। वह चैत्य चन्द्रकान्त शाल से शोभित है। ईहामृग, वृषभ, मकर, तुरंगम, नर-किन्नर, विहग, वालग, रुरु, शरभ, चमरी, गज, वनलताओं से विचित्रित रत्नस्तम्भों से समाकुल है। स्वर्ण के ध्वज-दण्डमण्डित पताका है। उपरिस्थित किंकिणी शब्द से मुखर ऊपर पद्मराग कलश से विराजित और गोशीर्ष चन्दनरस के हस्तकों से लांछित है। विचित्र चेष्टाओं वाली, अधिष्ठित नितम्ब वाली माणिक्य की शालभंजिकाएँ, चन्दनरस से लिप्त

कलशयुग से अलंकृत द्वारदेश के उभय पक्ष में शोभायमान हैं। तिरछी बाँध के लटकाई हुई धूपित-सुगन्धित सुन्दर मालाएँ, पंचवर्ण कुसुम रचित गृहतल, कपूर, अगर, कस्तूरी, धूपधूम-धारित्त अप्सरागण संकीर्ण, विद्याधरी-परिवृत, आगे-पीछे और पार्श्व में चारु चैत्य पादपों, मणिपीठिकाओं से विभूषित भरत की आज्ञा से यथाविधि वार्धकिरत्न के द्वारा निष्पादित है। वहीं दिव्य रत्न-शिलामय ९९ भाइयों की प्रतिमाएँ बनवाईं। सुश्रूषा करती हुई अपनी प्रतिमा भी बनवाई। चैत्य के बाहर भगवान ऋषभदेव स्वामी का एक स्तूप और ९९ भाइयों के स्तूप करवाए। मनुष्य लोग यहाँ आवागमन करके आशातना न करें इसलिए लोहयंत्रमय आरक्षक पुरुष बनवाए जिससे वह अगम्य हो गया। पर्वत की चोटियाँ भी दण्डरत्न से तोड़ दी, अतः वह गिरिराज अनारोहणीय हो गया। योजन-योजन के अन्तर से मेखलारूप आठ सीढ़ियाँ—पदों द्वारा मनुष्यों के लिए अलंघ्य कर दिया। जिससे अष्टापद नाम प्रसिद्ध हो गया।

फिर काल-क्रम से चैत्यरक्षण के निमित्त सगर चक्रवर्ती के साठ हज़ार पुत्रों ने दण्डरत्न से पृथ्वी को खोद कर सहस्र योजन की परिखा की। दण्डरत्न से गंगातट को विदीर्ण कर जल से पूर्ण किया। तब गंगा को खाई में भरने से अष्टापदासन्न ग्राम-नगर, पुरादि डूबने लगे। अतः उसे दण्ड-रत्न से निकाल कर कुरु देश के बीच से, हस्तिनापुर के दक्षिण से कोशल देश के पश्चिम, प्रयाग से उत्तर, काशी देश से दक्षिण, वत्सदेश में दक्षिण से मगध के उत्तर से नदी का मार्ग काटते हुए सगरादिष्ट जण्हुपुत्र भागीरथ कुमार ने पूर्वी समुद्र में उतार दिया। तब से गंगासागर तीर्थ हो गया।

इसी पर्वत पर ऋषभदेव स्वामी के आठ पौत्र, और बाहुबलि-प्रमुख निनाणवें पुत्र भी स्वामी के साथ सिद्ध हुए। इस प्रकार

एक सौ आठ उत्कृष्ट अवगाहना से एक समय में आश्चर्यभूत सिद्ध हुए।

श्री वर्द्धमान स्वामी ने स्वयं कहा कि "जो मनुष्य इस पर्वत्त पर स्वशक्ति से चढ कर चैत्यों की वन्दना करेगा वह इसी भव में मोक्ष प्राप्त होगा।" यह सुन कर लब्धिनिधान भगवान गौतम स्वामी इस पर्वतश्रेष्ठ पर चढ़े। चैत्यों की वन्दना कर अशोक वृक्ष के नीचे वैश्रमण के आगे तप से कृश अंग का वखान करते हुए स्वयं उपचित्त शरीर वाले अन्यथा वादकारी हैं—ऐसे उसके विकल्प को निवारण करने के लिए पुण्डरीक अध्ययन प्रणीत्त किया। पुष्ट देह वाला पुण्डरीक भावशुद्धि से सर्वार्थसिद्ध गया और दुर्बल शरीर वाला कण्डरीक सातवीं नरक गया। यह पुण्डरीक अध्ययन सामानिक देव वैश्रमण ने गौतम स्वामी के मुख से सुनकर अवधारित किया। वे ही तुंबवण सन्निवेश में धनगिरि की पत्नी सुनंदा के गर्भ में उत्पन्न होकर दश पूर्वधर श्री वज्र स्वामी हुए। अष्टापद से उत्तरते हुए गौतम स्वामी ने कौडिन्य-दिन्न-सेवालि तापसों को पन्द्रह सौ तीन की संख्या में दीक्षित किया। उन्होंने जनपरम्परा से "इस तीर्थ के चैत्यों की वंदना करने वाला इसी भव में मोक्ष प्राप्त करेगा"—ऐसे वीर-वचनों को सुनकर प्रथम, दूसरी और तीसरी मेखला संख्यानुसार कौडिन्यादि चढ़े और इससे आगे जाने में असमर्थ थे। उन्होंने गौतम स्वामी को अप्रतिहत उतरते देखकर विस्मित हो प्रतिबोध पाया और उनके पास दीक्षित हो गए।

इसी पर्वत पर भरत चक्रवर्ती आदि अनेक महर्षि कोटि सिद्ध हुए। वहीं सगर चक्रवर्ती के सुबुद्धि नामक महामात्य ने जन्हु आदि सगर के पुत्रों के समक्ष आदित्ययशा से लेकर पचास लाख कोटि सागरोपम काल में भरत महाराजा के वंश में समुद्भूत

राजर्षियों को चित्रान्तर गण्डिका से सर्वार्थसिद्धगति और मोक्ष गए बतलाया है।

इसी गिरिराज पर प्रवचन देवतानीत वीरमती ने चौवीस जिन-प्रतिमाओं के भाल-स्थल पर रत्नजटित स्वर्णतिलक चढ़ाए। उसके तव धूसरी भव, युगलिया भव और देव भव प्राप्त कर दमयन्ती के भव में अन्धकार को दूर करने वाला भाल-स्थान में स्वाभाविक तिलक हुआ।

इसी पर्वत पर वालि महर्षि कायोत्सर्ग करके स्थित थे। विमानस्खलन से कुपित रावण ने पूर्व वैर को स्मरण कर नीचे की भूमि खोदकर, उसमें प्रविष्ट होकर अपने वैरी सहित अष्टापद गिरि को उठाकर लवण समुद्र में फेंकने की वुद्धि से हजारों विद्याओं का स्मरण कर पर्वत को उठाया। उन राजर्षि ने अवधि-ज्ञान से यह जान कर चैत्य-रक्षा के निमित्त पैर के अंगूठे से गिरि-शिखर को दवाया। तव इससे संकुचितगात्र दशानन मुंह से रुधिर वमन करते हुए चीखने लगा। जिससे वह रावण नाम से प्रसिद्ध हुआ। जब दयालु महर्षि ने छोड़ा तो वह चरणों में गिर कर क्षमायाचना कर स्वस्थान गया।

यही लंकाधिपति ने जिनेश्वरदेव के समक्ष नाटक करते हुए दैवयोग से वीणा की तांत टूटने पर नाट्य-भङ्ग न हो इस विचार से अपनी भुजा की तांत काट कर वीणा में जोड़ दिया। इस प्रकार वीणावादन और भक्ति-साहस से सन्तुष्ट धरणेन्द्र ने तीर्थ-वन्दना के लिए आये हुए रावण को अमोघ विजयाशक्ति रूप-कारिणी विद्या दी।

इसी पर्वत पर गौतम स्वामी ने सिंहनिषद्या चैत्य के दक्षिण द्वार से प्रवेश कर पहले संभवनाथ आदि चार प्रतिमाओं को वन्दन किया। फिर प्रदक्षिणा देते हुए पश्चिम द्वार से सुपार्श्वादि

आठ तीर्थङ्करों को, फिर उत्तर द्वार से धर्मनाथादि दश को, फिर पूर्व द्वार से ऋषभदेव अजितनाथ जिनेश्वरद्वय को वन्दन किया।

यद्यपि यह तीर्थ अगम्य है फिर भी स्फटिक वन-गहन समर वालों से जो जल में प्रतिबिम्बित चैत्य के ध्वज-कलशादि देखता है वह भाव-विशुद्धि वाला भव्य जीव वहाँ ही पूजा-न्हवणादि करते हुए यात्रा का फल प्राप्त करता है, क्योंकि भावोचित फलप्राप्ति कही है।

भरतेश्वर से निर्मापित प्रतिमायुक्त इस चैत्य-स्तूपों की जो वन्दन-पूजन करते हैं वे धन्य हैं, वे श्रीनिलय हैं।

श्री जिनप्रभसूरि द्वारा निर्मित इस अष्टापद-कल्प की जो भव्य अपने मन में भावना करते हैं, उनके कल्याण उल्लसित होते हैं। पहले अष्टापद-स्तवन में जो अर्थ संक्षेप से कीर्त्तन किया है वही हमने विस्तार से इस कल्प में प्रकाशित किया है।

श्री अष्टापद तीर्थ का कल्प समाप्त हुआ, इसकी ग्रंथ संख्या ११८ है।

■

५०. हस्तिनापुरतीर्थ-स्तवन

जगद्वंद्य श्री शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ और अरनाथ भगवान को नमस्कार कर के इन्द्रों के समूह से स्तुत्य गजपुर तीर्थ की स्तवना करता हूँ।

भगवान ऋषभदेव के सौ पुत्रों में कुरु नामक राजा हुआ। उसके नाम से यह राष्ट्र कुरुक्षेत्र नाम से प्रसिद्ध हुआ। कुरु का

पुत्र हस्ति हुआ जिसके नाम से यह हस्तिनापुर नगर है जो अनेक आश्चर्य की खान है। पहले श्री आदिनाथ भगवान का प्रथम पारणा श्रेयांस के घर इक्षुरस से हुआ और पंच दिव्य प्रकट हुए। यहाँ शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ और अरनाथ—तीन जिनेश्वरों का जन्म हुआ और यहीं सार्वभौम सम्राट होकर ऋद्धि का भोग किया। मल्लिनाथ प्रभु भी यहाँ समवसरे थे जिससे यहाँ श्रावकों के बनवाये हुए चैत्यचतुष्टय अद्भुत महिमा वाले देखे जाते हैं।

यहाँ जगत् के नेत्रों को पवित्र करने वाला अम्बिका देवी का भवन भी यात्रियों के उपद्रव को नष्ट करने वाला भासमान है।

उन चैत्य की दीवालों को जाह्नवी गंगा अपनी तरंगों से प्रक्षालित करती है। उछलती हुई कल्लोलें भक्तिपूर्वक स्नात्र कराती हों ऐसा लगता है।

सनत्कुमार, सुभूम और महापद्म चक्रवर्त्ती एवं मुक्तिश्री को वरण करने वाले पाँच पाण्डव भी यहीं हुए हैं।

गंगादत्त और कार्त्तिक सेठ मुनि सुव्रत स्वामी के शिष्य हुए और विष्णुकुमार ने नमुचि को यहीं शासित किया था।

कलि के दर्प को नष्ट करने वाली भक्ति और विस्तृत संगीत-युक्त उत्तम व्यय युक्त निर्व्याज भक्ति यहाँ भव्यों ने की।

इस पत्तन में शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ और अरनाथ के चार कल्याणक हुए और जगत् के लोगों को आनन्दकारी श्री सम्मेत-शिखर गिरि पर निर्वाण प्राप्त हुए।

भाद्रपद कृष्ण ७, भाद्रपद शुक्ल ९ और फाल्गुन शुक्ल २ तिथि को इनका देवलोक से च्यवन हुआ। ज्येष्ठ कृष्ण १३, वैशाख कृष्ण १४, और मार्गशीर्ष शुक्ल १० तिथि में जन्म हुआ। ज्येष्ठ कृष्ण १४, वैशाख कृष्ण ५, माघ सुदि ११ तीनों के दीक्षा के दिन हैं। पोष वदि ९ चैत्र शुक्ल ३, ऊर्ज शुक्ल १२ आपकी ज्ञानोत्पत्ति के दिन हैं।

ज्येठ कृष्ण १३, वैशाख शुक्ल १५, मार्गशीर्ष सुदि १० क्रमशः आपकी निर्वाण-तिथियाँ हैं।

आप जैसे पुरुषरत्नों की यह जन्मभूमि है जो स्पर्शमात्र से ही श्रेष्ठ जनों के अनिष्ट को नष्ट करती है।

स्तुति की तो बात ही क्या ? उस प्रकार के अतिशयों वाले पुरुषप्रणीत जिनप्रतिबिम्ब (शान्ति-कुन्थु-अर) त्रयी के महोत्सवों से शोभायमान भागीरथी के जलसंग से पवित्र पृथ्वी पर तीर्थरत्न यह गजपुर चिरकाल जयवन्त रहे।

शक संवत् १२५३ वैशाख शुक्ल ६ को इस प्रकार यात्रोत्सव के लिए आये हुए संघसहित श्री जिनप्रभसूरि ने यह गजपुर का स्तवन किया।

■

५१. कन्यानयन महावीर-कल्प परिशेष

श्री संघतिलक सूरि के आदेश से विद्यातिलक मुनि कन्नाणय महावीर-कल्प का कुछ परिशेष कहते है।

भट्टारक श्री जिनप्रभसूरि ने श्री दौलताबाद नगर के साहु पेथड़, साहु सहजा, ठा० अचल द्वारा कारित्त चैत्यों का तुर्कों द्वारा भङ्ग किये जाते समय फरमान दिखाकर निवारण किया। श्री जैन-शासन की अतिशय प्रभावना करते हुए, शिष्यादि अध्ययनेच्छुओं का सिद्धान्त वाचना देते, तपस्वियों के अंग और अनंग प्रविष्टागम तपादि कराते, अपने शिष्यों व दूसरे गच्छ के मुनियों को भी प्रमाण, व्याकरण, काव्य, नाटक, अलंकार शास्त्रादि पढ़ाते,

उद्भट वादभट्ट वादिवृन्दों के अनल्प दर्प को अपहरण करते हुए उन्होंने कुछ कम तीन वर्ष विताये ।

इधर श्री योगिनीपुर-दिल्ली में शकाधिराज श्री महम्मद शाह किसी अवसर प्रस्तुत होने पर पण्डितों की गोष्ठी में शास्त्र-विचार में संशय उत्पन्न होने पर गुरु महाराज के गुणों का स्मरण किया। सुलतान कहने लगा—आज यदि वे भट्टारकसभा को अलंकृत करते तो मेरे मनोगत सारे संशय दूर .करने में क्षणमात्र में सहज क्षमताशील थे ! निश्चय ही उनकी वुद्धि से पराजित होकर वृहस्पति भी भूमि का त्याग कर आकाश में चला गया।

इस प्रकार राजा द्वारा गुरु-गुण-वर्णना-व्यतिकर से तत्काल समयज्ञ दौलतावाद से आये हुए ताज मल्लिक ने पृथ्वी पर मस्तक टिका कर निवेदन किया—महाराज ! वे महात्मा वहाँ है पर उस नगर का जल नही मानने से वे वहुत कृशाङ्ग—थक गए हैं। तव गुरुगुणप्राग्भार स्मृत पृथ्वीपति सुलतान ने उसी मीर को आदेश दिया कि—मल्लिक ! तुम शीघ्र दुवीरखाने में जाकर फरमान पत्र लिखाकर वहाँ भेजो ! वैसी सामग्री भी भेजो जिससे भट्टारक पुनः यहाँ आवें ।

मल्लिक ने वैसा ही किया, फरमान भेजा। क्रमशः दौलतावाद-राजसभा में पहुँचा। नगरनायक श्री कुतुलखान ने भट्टारक श्री जिनप्रभसूरि जी को विनयपूर्वक शाही फरमान आने व दिल्ली के प्रति प्रस्थान करने की सूचना दी। तव दस दिन के पश्चात् तैयार होकर ज्येष्ठ शुक्ल १२ राजयोग में गुरु महाराज ने संघ सहित आने की सूचना पहुंचाते हुए प्रस्थान किया।

क्रमशः स्थान-स्थान पर महोत्सवादि का प्रादुर्भाव कराते, विपम दूषम काल के दर्प की दलन करते, अन्तरालवर्त्ति सकल जनता के नेत्रों को कुतुहल उत्पन्न करते, धर्म-स्थानों के उद्धार करवाते, दूर से ही दर्शनोत्कण्ठित भक्तों व स्वागतार्थ आते हुए

आचार्यवर्गो द्वारा वंद्यमान राजभूमिमण्डन श्री अल्लावपुर दुर्ग पहुंचे। वहाँ उस प्रकार की प्रभावना का प्रकर्ष को नहीं सहन करने वाले म्लेच्छों की विप्रतिपत्ति को जानकर सूरि महाराज के शिष्योत्तम, राजसभामण्डन, गुरुगुणालंकृत देह वाले श्री जिनदेव सूरि द्वारा विज्ञप्ति करने पर नरेश्वर ने बहुमानपूर्वक सन्मुख भेज कर मल्लिक के प्रति फरमान के साथ सकल स्वस्तिक वस्तु विशेष से जिनशासन की प्रभावना करते हुए डेढ़ मास रहकर अल्लाव-पुर से चले। फिर सुलतान ने श्री सिरोह महानगर में गुरु महाराज के सामने स्निग्ध देव दूष्य प्राय: उत्तदश वस्त्र भेजकर अलंकृत किया। गुरु महाराज हम्मीर वीर की राजधानी—रणथंभोर—के निकट प्रदेश में पहुंचे। चिरोपचित भक्ति राग पूर्वक दर्शननिमित्त को भी अमृत कुण्ड-स्थान की भाँति अपने को धन्य मानने वाले, सामने आये हुए आचार्य-मुनि-श्रावकवृन्द से परिवृत्त युगप्रधान प्रभु मिती भाद्रपद शुक्ल २ के दिन राजसभा में पधारे। आनंद पूर्ण नेत्रों वाले सुलतान श्री महम्मद बादशाह ने अभ्युत्थान आचरण पूर्वक कोमल वाणी से श्री सूरिजी से कुशल पृच्छा की। उसने गुरु महाराज के हाथ का चुम्बन कर अत्यन्त स्नेह पूर्वक बड़े आदर के साथ उनका आदर अपने हृदय पर रखा। गुरु महाराज ने भी तत्काल निर्मित नवीन आशीर्वाद काव्य द्वारा नरेश्वर का चित्त चमत्कृत किया। उसने महा महोत्सव के साथ सूरिजी को विशाल शाला वाली पौषधशाला में भेजा। बादशाह ने गुरु महाराज के साथ जाने के लिए प्रधान पुरुषों, हिन्दू राजाओं और महामल्लिक श्री दोनार प्रमुखों को आदेश दिया।

हजारों वंदनार्थ चिर उत्कण्ठित और चिर दर्शन लालसा वाले श्रावकों व नागरिकों ने नमस्कार किया। कौतूहल प्रकृति से जानपद लोग भी साथ चल पड़े। बन्दी वृन्द के विरुदावली, स्तवना करते, बादशाहि प्रसादित भेरी-वेणु-वीणा-मद्दल-मृदंग-

पहु-पटह-शंख युक्त भुंगलादि विपुल वाजित्रों से दिग्दिगंत को ध्वनित करते, विप्रवर्ग के वेदध्वनिपाठ और गन्धर्वो, सधवाओं द्वारा मंगल गाते हुए तत्काल श्री सुलतान सराय की पौपध शाला पहुँचे। संघ के प्रधान पुरुषों ने वधामणा महोत्सव किया। सकल संघ कारित महोत्सव सहित भाद्रपद शुक्ल ३ के दिन श्री पर्यूपण कल्प सूत्र वांचा। गुर्वागमन प्रभावना-लेख स्थान-स्थान पर पहुँचे, सारे देश का संघ रंजित हुआ। सैकड़ों राज-वन्दी, वद्ध लोगों और वन्दी वनाये हुए सैकड़ों-हजारों श्रावकों को छुड़ाया। करुणापूर्वक जैनेतर लोगों को भी कारागार से उन्मुख किया। अप्रतिष्ठित लोगों को प्रतिष्ठा दी और दिलाई। इस तरह अनेक प्रकार से जैन धर्म की प्रभावना की और कराई !

सूरि महाराज प्रतिदिन राजसभा में पधार कर पण्डितों, वादिवृन्दों पर विजय प्राप्त कर धर्म-प्रभावना करते। क्रमशः चातुर्मास पूर्ण किया। एक दिन फाल्गुन महीने में सुलतान ने अपनी माता 'मगदूम-इ-जहाँ' के दौलतावाद से आते समय चतुरंगिणी सेना और परिवार सहित सुसज्जित होकर स्वागतार्थ सामने जाते हुए सूरिजी को भी साथ में लिया। 'वडथूण' स्थान में माता से मिलकर वादशाह ने सवको महादान दिया और प्रधान 'कवाहि' वस्त्र पहनाये। क्रमशः राजधानी में महोत्सव पूर्वक आये। गुरु महाराज को वस्त्र कर्पूरादि से सम्मानित किया।

सूरिजी ने मिति चैत्र शुक्ल १२ के दिन राजयोग में सुलतान को पूछ कर शाही साईवान की छाया में नन्दी मण्डाण कराके पाँच शिष्यों को दीक्षा दी। मालारोपण, सम्यक्त्व धारण आदि धर्मकृत्य कराये। थिरदेव के पुत्र ठक्कुर मदन ने व्यय किया। मिति आषाढ शुक्ल १० के दिन नव्य निर्मापित तेरह प्रतिमाओं की विस्तृत समारोह पूर्वक प्रतिष्ठा की। विम्ब-निर्माताओं ने, विशेषकर साहु महाराय पुत्र अजयदेव ने प्रचुर द्रव्यव्यय किया।

एक दिन सुलतान ने गुरु महाराज को दूर से आने में प्रतिदिन कष्ट होता है, सोचकर स्वयमेव अपने महल के निकट अभिनव भवनादि से शोभित 'सराई' दे कर श्रावक संघ को बसने का आदेश दिया। सुलतान ने स्वयं उस वस्ती का नाम "भट्टारक सराइ" दिया। बादशाह ने वहीं भगवान महावीर स्वामी का मन्दिर और पौषधशाला वनवाई। सं० १३८९ मिती आषाढ कृष्ण ७ के सुमुहूर्त्त में बादशाह के समादिष्ट गीत वाजित्र नाटकादि सम्पदा से प्रकटित अमित महोत्सवादि से स्वयं सुलतान के मंगल-क्रिया देते हुए भट्टारक गुरु पौषधशाला में प्रविष्ट हुए। प्रीति दान से सन्तुष्ट किया। दीन अनाथ लोगों का दान से उद्धार किया।

एक बार मार्गसिर मास में पूर्व देश की जय-यात्रा के निमित्त जाते समय सुलतान ने अपने साथ गुरु महाराज को लिया। स्थान-स्थान पर बन्दियों को छुड़ा कर धर्म-प्रभावना की। मथुरा तीर्थ का उद्धार किया। ब्राह्मणों को दानादि से सन्तुष्ट किया। सत्यप्रतिज्ञ गुरु महाराज को नित्य प्रवास से कष्ट होता समझ कर सुलतान ने खोजा जहाँमल्लिक के साथ आगरा नगर से राजधानी के प्रति वापस भेज दिया। हस्तिनापुर यात्रा के लिए फरमान ले कर सूरि जी स्वस्थान पधारे। चतुर्विध संघ को एकत्र कर चाहड़ शाह के पुत्र बोहित्थ शाह को संघपति तिलक किया और गुरु महाराज ने आचार्य आदि परिवार परिवृत श्री हस्तिनापुर तीर्थ की यात्रा के लिए प्रस्थान किया। स्थान-स्थान पर संघपति बोहित्थ ने महोत्सव किए। तीर्थभूमि में पहुँच कर तीर्थ को बधाया। गुरु महाराज ने वहाँ नये बनवाये हुए शान्तिनाथ-कुन्थुनाथ और अरनाथ जिनेश्वर के बिम्ब और अम्बिका देवी की प्रतिमा चैत्य स्थान में प्रतिष्ठित किए। संघ वात्सल्यादि द्वारा संघ-

पति और संघ ने महोत्सव किये। भाट-भोजक आदि लोगों का वस्त्र-भोजन-ताम्बूलादि से पूजा सत्कार किया।

गुरु महाराज ने यात्रा से लौटते ही मिती वैशाख शुक्ल १० के दिन समस्त दुरित नाशक श्री महावीर स्वामी के विम्ब की महोत्सव पूर्वक स्थापना की। वादशाह के बनवाए हुए मन्दिर में संघ के द्वारा वहाँ पूजा की जाती है। सुलतान के दिग्यात्रा से आने पर मन्दिर में विशेप उत्सव प्रवर्त्तित होते हैं। सार्वभौम सम्राट उत्तरोत्तर अधिकाधिक मान दे कर गुरु महाराज को सम्मानित करता है। सूरिसार्वभौम श्री जिनप्रभसूरि की धर्म-प्रभावना का यशपटह सर्व दिशाओं में वजता है। राजाधिराज के दिए हुए फरमान हाथ में होने से श्वेताम्बर-दिगम्बर सर्व देश में विना किसी उपसर्ग वाधा के विचरण करते हैं। यवन सैन्य परिभूत दिशि चक्र किये होने पर भी खरतर गच्छालंकार गुरु महाराज के प्रसाद से फरमान ग्रहण करते शत्रुञ्जय-गिरनार-फलौदी आदि तीर्थ निर्भय-निरापद हुए। इस प्रकार के धर्मकृत्यों से श्री पादलिप्तसूरि-मल्लवादी-सिद्धसेन दिवाकर-हरिभद्रसूरि-हेमचन्द्रसूरि आदि पूर्वाचार्यो को उद्योदित किया। अधिक क्या कहा जाय, सूरिचक्रवर्त्ती गुरु महाराज के गुणों से खिंचे हुए नरेन्द्र भी सकल धर्म कार्यारम्भ में प्रवर्त्तन करता था।

चैत्य-वसतियों में प्रति प्रात:काल शंखध्वनि वजती रहती है। धार्मिक लोगों द्वारा वीरविहार में मादल, मृदङ्ग, भुंगल, ताल वजते हुए प्रेक्षणीय महापूजाएँ की जाती हैं। भगवान महावीर के आगे भव्य लोग कर्पूर, अगर, परिमल युक्त धूप दे कर उसकी सुगन्धि दिग्मंडल में व्याप्त करते हैं। हिन्दू राज्य के समान संचरण करते हैं। इस पंचम काल और अनार्य राज्य में भी चतुर्थ आरे की भाँति जो जिन-शासन की प्रभावना होती है वह गुरु-शिक्षा का ही प्रभाव है। और तो क्या ? गुरु महाराज के चरणों

में पाँचों दर्शनी लोग किंकर की भाँति सपरिवार लौटते हैं। गुरु महाराज के वचनों की प्रतीक्षा में प्रतीक्षित रहते हैं। गुरु महाराज के दर्शनों के उत्सुक इह—परलोक कायार्थी परतीर्थिक लोग दरवाजे पर स्थित रह कर निरन्तर सेवा करते हैं। गुरु महाराज नरेश्वर की अभ्यर्थना से नित्य राजसभा में जाते हैं और बन्दी वर्ग को मुक्त कराते हैं।

सच्चारित्र वाले सूरि महाराज अपनी उच्च कोटि की चर्या में प्रवृत्त रह कर पद-पद पर धर्म-प्रभावना करते हुए जिनोक्त युक्तियुक्त वचनों से निरन्तर नरेश्वर के मन में कुतूहल उत्पन्न करते है। गंगाजल की भाँति स्वच्छ चित्त वाले वे अपनी यशश्चन्द्रिका द्वारा अन्तराल को धवलित करते हैं। उनके वचनामृत से जीव लोक उपजीवित है। स्वदर्शनी व परदर्शनी लोग समग्र व्यापार में आज्ञा शिरोधार्य करते हैं। युगप्रधान प्रभु स्व पर सिद्धान्तों की अनन्य असाधारण भंगिमा से व्याख्या करते हैं।

इस प्रकार धर्म-प्रभावनाप्रकारों से परिभाव्यमान पवाड़े—कीर्त्ति जिनके नित्य ही वर्त्तमान है ऐसो अपरिमित कीर्त्ति को अल्पमति कैसे कह सकते हैं ?

ये सूरि महाराज करोड़ों वर्ष जीवें, जिन-शासन की चिरकाल प्रभावना करें।

कन्नाणय महावीर कल्प के परिशिष्ट रूप में श्री जिनप्रभ सूरिजी के प्रभावना अंगों की यह गुणस्तुति लेशमात्र—संक्षेप में कही गई है।

५२ श्री कुल्पाक ऋषभदेव-स्तुति

श्री कुल्पाक प्रासाद के आभरण, सत्पुरुषों के शरण्य, माणिक्य देव नामक श्री ऋषभदेव जिनेश्वर के नमस्कार करता हूँ।

श्री कुल्पाकपुर लक्ष्मी के शिरोभूषण प्रासाद में पवित्र रूप से अधिष्ठित्त पृथ्वी पर माणिक्य देव नाम से प्रसिद्ध जो ऋषभदेव है उनके चरणकमलों को नमस्कार करता हूँ।

प्रसन्न चित्त वाले इन्द्र चन्द्र आदि के मुकुटों के श्रेणितट से जिनके चरण और आसन का घर्षण होता है ऐसे तीर्थंकरों का समूह मेरे दारुण दुःख रूपो वृक्षों की श्रेणि को पीस डालने के लिए मत्त गजेन्द्र है, वे मेरे लिए गज बने।

हेतु, उपपत्तियों से निरूपित वस्तु तत्त्व वाला, स्याद्वादपद्धति से दुर्नय समूह को उसमें समावेश करने वाला, उत्तम सिद्धपल्ली के लिए विपिन के समान, तीन भुवन में पूजा का पात्र श्री जिनेन्द्र-वचन का मै शरण लेता हूँ।

श्री ऋषभदेव भगवान के शासन रूपी आम्रवन की रक्षिका नवविद्रुम के समान शरीर की कान्ति वाली है। जो खेचर चक्री (गरुड़) पर चढ कर आकाश में विचरती हैं, मनोहर चक्र हाथ में धारण करती है वह चक्रेश्वरी देवी कल्याणकारी हो।

५३. आमरकुण्ड पद्मावती देवी-कल्प

तिलंग जनपद विभूषण और मनोहर आमरकुण्ड नगर में पर्वत-शिखर के भुवन में विराजमान स्थित श्री पद्मावती देवी जयवन्त हो।

कल्याण करने वाले समस्त गुणगण नीरन्ध्र युक्त आन्ध्र देश में आमरकुण्ड नामक नगर है। गगनचुम्बी मनोहर हवेलियों की श्रेणी से नयनाभिराम, नाना प्रकार के छाया वाले वृक्षों से परिष्कृत, मधुर-मधुर गूँजते हुए मधुकरों के समूह से घिरे हुए पुष्पों के सौरभ से सुगन्धित दिशाओं वाला, निर्मल पानी से भरे हुए बड़े-बड़े सरोवरों और नदों से शोभित और शत्रुओं से क्षुब्ध न होने वाला अदुर्ग होने पर भी दुर्गयुक्त वह नगर है। उस श्रेष्ठ नगर का क्या वर्णन करें? जहाँ करवीर के पुष्प हैं वे भी कस्तूरी की गन्ध वाले हैं। विशिष्ट गन्ने और बड़े-बड़े केले के फल मनोहर नारंगियाँ, अनेक प्रकार के आम्र, सरस पनस, पुन्नाग, नागवल्ली, पूग-सुपारी अत्यन्त स्वादिष्ट शालि और नारियल आदि के फल आदि मनोहर खाद्य हैं। प्रति ऋतु में सुगन्ध से समस्त दिशाओं को सुवासित करने वाली शालि फलती है। परीक्षकों द्वारा दुकानों में पट्टांशुक आदि, विभिन्न प्रकार के शस्त्रों का समूह, मौक्तिक, रत्न आदि अगणित पण्य वस्तुएँ देखी जाती है।

इधर से ही निष्पन्न मुरंगल नामक मनोहर एकशिला पत्तन है। उसके समीप भूमि का अलंकार और विष्णुपद आकाशचुम्बी शिखरों की परम्परा-ऊँची चोटियों वाला रमणीय पर्वत है जो अन्य पर्वतों के गर्व को चूर्ण करने वाला समर्थ पर्वतराज है।

उसके ऊपर परिनाह आरोहशाली श्री ऋषभदेव और शान्ति-नाथादि प्रतिमाओं से अलंकृत मनुष्यों के मन को प्रसन्न करने वाले शुभ प्रासाद शोभायमान हैं। वहाँ एक पवित्रतर और पार-गत भवन में छद्म से मुक्त मन वाले विषय-सुखों से जिनका हृदय जरा भी क्षुभित नही होता था और अपनी कृपा से सहृदय के हृदयों को आह्लादित करने वाले थे, ऐसे कामदेव को जीतने वाले और विस्मयकारी चारित्र-आचरण से वश की गई पद्मावती से लब्ध-प्रतिष्ठ मेघचन्द्र नाम के दिगम्बर आचार्य थे, जिनकी सेवा अनेक लोग करते थे। वे एक बार श्रावक गोष्ठी को कह कर दूसरे स्थान पर विचरने के लिए प्रस्थान कर गये। ज्यों ही कितनी भूमि चले, अपने अस्तालंकार पुस्तक नहीं देखी तब उन्होंने कहा—अहो! हम कैसे प्रमादी है कि अपने हाथ की पुस्तक भी भूल गये! ऐसा क्षणमात्र विषाद कर के शीघ्र ही माधवराज नामक क्षत्रियजातीय एक छात्र को पुस्तक लाने के लिए वापस भेजा। वह सरल बुद्धि वाला छात्र लौट कर ज्यों ही मठ में प्रवेश करता है त्यों ही एक अद्भुत रूप-कान्ति वाली स्त्री उस पुस्तक को उरु पर रखे बैठी थी, देखा। ज्यों ही वह निर्भीक और अक्षुब्ध चित्त से उस पर रखी हुई उस पुस्तक को लेने लगा त्यों ही वह वर्वणिनी उस पुस्तक को अपने कन्धे पर धारण किये हुए है ऐसा देखा। इसके बाद वह विद्यार्थी "यह मेरी माता के समान है" ऐसा सोच कर उसकी जंघाओं पर भी पाँव दे कर उसके स्कन्ध से पुस्तक को लेने लगा। तब उस स्त्री ने देखा कि यह व्यक्ति राज्य के योग्य है ऐसा सोच कर हाथ पकड़ लिया और बोली—वत्स! तुम कुछ वर माँगो! वह मै तुम्हें दूं! मैं तुम्हारे साहस से तुष्ट हुई हूँ! शिष्य ने कहा—संसार में एकमात्र वंद्य मेरे गुरु मुझे सब प्रकार के अभिरुचित अर्थ को देने में समर्थ ही है, इसलिए हे शुभवती! मै आपसे क्या माँगू? ऐसा कह कर और

पुस्तक ले कर वह छात्र अपने आचार्य के पास आ गया। वहाँ का सारा स्वरूप निवेदन कर पुस्तक आचार्य को दे दी। क्षपणक गणाधिपत्ति बोले—भद्र वह स्त्री मात्र नहीं, किन्तु वह भगवती पद्मावती देवी है। इसलिए जाओ और मनोहर पद्य लिखा हुआ यह पत्र उन्हें दिखलाओ।

गुरु के आदेशानुसार वह छात्र शीघ्र ही मठ में लौटा और उस देवी को वह पत्र समर्पण कर आगे खड़ा रहा। देवी ने उस पत्र को पढ़ा। यथा—"आठ हजार हाथी, नव कोटि पदात्ति, इतने ही रथ तथा घोड़े एवं एक लाख मुद्राओं का कोष इसे दीजिये!" भगवती ने भी पद्यार्थ को समझ कर उस शिष्य को एक चतुर घोड़ा दिया और बोली—आप इसके ऊपर चढ़ कर जाओ, जो इस पत्र में लिखा है वह सब तुम्हारे पीछे ही आ जायगा! केवल पहाड़ी मार्ग से तुम जाना और पीछे मत्त देखना।" ऐसा उसका वचन "ऐसा ही होगा" कहते हुए स्वीकार कर कृत्य को समझने वाला वह पहाड़ की गुफा में अश्वसहित्त प्रवेश कर गया और बारह योजन तक चलता रहा। इसके बाद आते हुए हाथियों के समूह की घटाओं से रणत्कार की तुमुल और जोर की ध्वनि सुनकर वह छात्र उतावल से कुतूहलपूर्वक पीछे मुड़कर सिंहावलोकित न्याय से देखने लगा। उसने हाथी, घोड़े आदि समूह से परिपूर्ण सेना को देखा और विस्मय रसमय हृदय वाला होने से वहीं पर बारह योजन बाद जिस घोड़े पर चढ़ा था वह घोड़ा ठहर गया। तदनन्तर परम जैन श्री माधवराज ने सेना से घिरे हुए वहीं नगर बसा कर उसमें देवी का भुवन बनवाया, फिर आमरकुण्ड नगर में आकर भूपालमौलि लालित्य वाली राज्यलक्ष्मी का पालन किया। उसे स्वर्ण-कलश, दण्ड, ध्वज से शोभायमान गगनचुम्बी शिखर वाले प्रासाद का निर्माण कराया और उसमें चित्रीयमान नमस्कार करते हुए मनुष्ययुक्त श्री

पद्मावती देवी को प्रतिष्ठित किया। वह पूर्ण भक्तियुक्त हृदय से त्रिकाल अष्टप्रकारी पूजा करता। आज भी भुवनोदरव्यापी माहात्म्य अमन्द लक्ष्मी वाला भगवती का भव्य मन्दिर, भव्य जनता से पर्युपास्यमान विद्यमान है।

उस पहाड़ी गुफा के द्वार पर चौड़ा शिलापट्ट आज भी लगा हुआ है कि जिससे उस मार्ग से सब लोग नहीं जा सकते क्योंकि वहाँ शिला को उघाड़ कर विस्तारपूर्वक पूजा करके कितनी कला तक लोटते-रेंगते हुए जाय, उससे आगे बैठा-बैठा चले और आगे विशेष चौड़ाई में ऊँचा देवी के मन्दिरपर्यन्त जाना चाहिए। सैकड़ों विघ्नों की सम्भावना और कष्ट के भय से प्रायः कोई उस गुफा के द्वार को चतुरतापूर्वक उघाड़ने का साहस नहीं करता है। शिला से ढँके हुए मुख वाले गुफास्थान में ही सभी श्रद्धालुगण पद्मावती की पूजा करते हैं और सभी प्रकार की अभीष्ट सिद्धियों को प्राप्त करते हैं। माधवराज के वंशज पुरंटिरित्तमराज, पिण्डिकुण्डिमराज, पोल्लराज, रुद्रदेव, गणपतिदेव हुए हैं। गणपति-देव की पुत्री रुद्रमहादेवी ने पैंतीस वर्ष तक राज्य किया, इसके बाद श्री प्रतापरुद्र राजा ने राज्य किया। ये कंकती ग्रामवासी होने से काकतीय नाम से प्रसिद्ध हैं।

इस प्रकार आमरकुण्डा नामक पद्मावती का यह कल्प संक्षेप से श्री जिनप्रभसूरि ने यथाश्रुत कहा।

श्री आमरकुण्ड पद्मावती का कल्प समाप्त हुआ। इनकी श्लोक-संख्या ५९ और २२ अक्षर हैं।

■

५४. चतुर्विंशतिजिनकल्याण-कल्प

अतीत, वर्त्तमान और अनागत चौवीस जिनेश्वरों का उत्स-र्पिणी-अवसर्पिणी में हुए अनुलोम प्रतिलोम से पाँच भरत और पांच ऐरवत में स्वर्गादि से पृथ्वी पर आगमनरूप हुए च्यवन-कल्याणक हैं, पंच महाविदेहों शास्वत क्षेत्रों के नहीं।

एकाशना, नीवी, आयंविल और उपवास से प्रथम और दूसरे पंच कल्याणकों में से प्रथम और दूसरा एकाशना, नीवी, आयंबिल और उपवास आदि करके संक्षेप से पंच कल्याणकों का अपराध करो।

विस्तृत रूप से आराधन करने वाले को च्यवन और जन्म कल्याणक के दिन उपवास करना तथा दीक्षादि तीन कल्याणक जिनेश्वरों द्वारा किए हुए तप से आराधन करना चाहिए।

सुमतिनाथ भगवान नित्यभक्त से दीक्षित हुए और वासुपूज्य स्वामी ने उपवास से दीक्षा ली। पार्श्वनाथ और मल्लिनाथ ने अष्टम तप पूर्वक दीक्षा ली। अवशिष्ट जिनेश्वरों ने छट्ठ भक्त (२ उपवास) से अभिनिष्क्रमण किया।

ऋषभदेव, मल्लिनाथ, नेमिनाथ और पार्श्वनाथ को अष्टम तप से केवलज्ञान हुआ। वासुपुज्य भगवान को चतुर्थ भक्त से एवं शेष तीर्थंकरों को छट्ठ भक्त से केवलज्ञान हुआ।

ऋषभदेव चतुर्थ भक्त से, महावीर स्वामी छट्ठ भक्त से, नित्य-भोजी सुमतिनाथ भी उपवास से सिद्ध हुए।

जिन-पथ के आराधक इस प्रकार कल्याणक तप करके विधि-पूर्वक उद्यापन करते हैं। वे क्रमशः परम पद को प्राप्त करते हैं। जिणपह शब्द से कर्त्ता ने अपना नाम भी दे दिया है।

सभी जिनेश्वरों के च्यवन, जन्म, दीक्षा, केवल और मोक्ष ये पंच कल्याणक हुए हैं, किन्तु भगवान महावीर के गर्भापहारसहित छः कल्याणक हैं।

इन क्षेत्रों में होने वाले जिनेश्वरों के पंचकल्याणक जिसने आराधन किए उसने दश क्षेत्रों में होने वाले तीन काल के अर्हन्तों की उपासना की।

भव्यजनों के मन के अभीष्ट संकल्पों को पूर्ण करने वाले इस पंचकल्याणक तप को जो भव्य पढते सुनते है उन्हे सिद्धिश्री स्वयं वरण करती है।

इसकी ग्रन्थ संख्या १३१ अक्षर १५ है।

५५. तीर्थंकर अतिशय-विचार

पहले चार सहज अतिशय, उसके बाद घाती कर्मो के क्षय से ग्यारह अतिशय और देवकृत १९ अतिशय होते हैं। इस प्रकार कुल ३४ अतिशय हुए। इनमें अपायापगम अतिशय, ज्ञानातिशय, वचनातिशय और पूजातिशय का समावेश हो जाता है।

ग्रंथ-संख्या २ अक्षर ७ है।

५६. पञ्चकल्याणक-स्तवन

जिनेश्वर भगवान को नमस्कार करके उन्हीं के च्यवन-जन्म-दीक्षा-ज्ञान और निर्वाण के पंच कल्याणकों का कीर्त्तन करता हूँ। कार्त्तिक कृष्ण ५ को संभवनाथ का, बारस को नेमिनाथ का च्यवन और पद्मप्रभ का जन्म हुआ।

तेरस को पद्मप्रभ की दीक्षा, अमावस्या को वीर प्रभु का निर्वाण, काती सुदि तीज को सुविधिनाथ का और अरनाथ स्वामी का बारस को निर्वाण हुआ। मार्गशीर्ष कृष्ण पंचमी को सुविधिनाथ का जन्म, छठ के दिन सुविधिनाथ की और दशमी को महावीर स्वामी की दीक्षा हुई।

मार्गशीर्ष बदि ग्यारस को पद्मप्रभ का मोक्ष, सुदि दशमी को अरनाथ का मोक्ष और जन्म हुआ। ग्यारस को अरनाथ की दीक्षा, मल्लिनाथ का जन्म दीक्षा और ज्ञान, नमिनाथ का भी केवल-ज्ञान हुआ।

मार्गशीर्ष शुक्ल १४ जन्म और पूर्णिमा को संभवनाथ की दीक्षा हुई। पोष कृष्ण १० को पार्श्वनाथ का जन्मोत्सव हुआ। ग्यारस को पार्श्वनाथ की दीक्षा, बारस को चन्द्रप्रभ का जन्म और तेरस के दिन दीक्षा हुई।

पौष कृष्ण चतुर्दशी को शीतलनाथ को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। पोष सुदि ६ को विमलनाथ और नवमी के दिन शान्तिनाथ ने दीक्षा ली। सुदि चतुर्दशी को अभिनंदन एवं पूर्णिमा को धर्म-नाथ का मनुष्यों को आनंद देने वाला केवलज्ञान हुआ।

माघ कृष्ण छठ को पद्मप्रभ का च्यवन, बारस को शीतलनाथ का जन्म और दीक्षा दो कल्याणक हुए। ऋषभदेव त्रयोदशी को

निर्वाण प्राप्त हुए। अमावस्या के दिन श्रेयांसनाथ को केवलज्ञान हुआ।

माघ शुक्ल दूज के दिन अभिनंदन का जन्म और वासुपूज्य का केवलज्ञान ये दो कल्याणक हुए। तृतीया के दिन धर्मनाथ और विमलनाथ जिनेश्वर का जन्म हुआ। चतुर्थी के दिन विमलनाथ की दीक्षा हुई और सुदि अष्टमी को अजितनाथ का जन्म हुआ।

अजितनाथ स्वामी ने माघ शुक्ल नवमी को दीक्षा ली और बारस को अभिनंदन स्वामी की दीक्षा एवं धर्मनाथ जिनेश्वर की दीक्षा भी तेरस को प्रसिद्ध है। फाल्गुन कृष्ण छठ को सुपार्श्वनाथ को केवलज्ञान और सप्तमी को निर्वाण हुआ। उसी दिन चन्द्रप्रभ भगवान को केवल ज्ञान हुआ।

फाल्गुन कृष्ण नवमी को सुविधिनाथ का च्यवन और ग्यारस के दिन ऋषभदेव को केवलज्ञान हुआ। श्रेयांसनाथ का जन्म और मुनि सुव्रत का केवलज्ञान बारस के दिन हुआ। त्रयोदशी को श्रेयांसनाथ भगवान ने चारित्र लिया। चतुर्दशी वासुपूज्य का जन्म और अमावस्या के दिन दीक्षाकल्याणक है।

फाल्गुन शुक्ल दूज को अरनाथ जिनेश्वर का च्यवन हुआ। चतुर्थी को मल्लिनाथ और अष्टमी को संभवनाथ जी का च्यवन कल्याणक है। बारस के दिन सुमतिनाथ की दीक्षा और मल्लिनाथ जिनेश्वर का निर्वाण हुआ। चैत्र कृष्ण चतुर्थी को पार्श्वनाथ भगवान का केवलज्ञान और च्यवनकल्याणक है।

चैत्र कृष्ण पंचमी को चन्द्रप्रभ भगवान का च्यवन, अष्टमी के दिन ऋषभदेव प्रभु का जन्म, और दीक्षाकल्याणक है। चैत्र शुक्ल तृतीया को कुन्थुनाथ का केवल ज्ञान, पंचमी को अनंतनाथ का अजितनाथ का और संभवनाथ का भी निर्वाण हुआ।

चैत्र शुक्ल नवमी के दिन सुमतिनाथ का निर्वाण और ग्यारस को केवलज्ञान हुआ। त्रयोदशी के दिन भगवान महावीर का जन्मोत्सव हुआ। पूर्णिमा के दिन पद्मप्रभ को केवलज्ञान हुआ। वैशाख कृष्ण प्रतिपदा के दिन कुन्थुनाथ भगवान का निर्वाण हुआ।

वैशाख कृष्ण द्वितीया को शीतलनाथ का निर्वाण, पंचमी को कुन्थुनाथ की दीक्षा, और छट्ठ के दिन शीतलनाथ का च्यवन हुआ। दशमी के दिन नमिनाथ का मोक्ष, त्रयोदशी को अनन्तनाथ का जन्म और चतुर्दशी को उनकी दीक्षा और केवलज्ञान कल्याणक हुआ।

वैशाख कृष्ण चतुर्दशी के दिन निर्मल चित्त वाले कुन्थुनाथ भगवान का जन्म और शुक्ल चतुर्थी को अभिनन्दन का च्यवन हुआ। सप्तमी के दिन धर्मनाथ तीर्थंकर का च्यवन और अष्टमी के दिन अभिनन्दन स्वामी का निर्वाण हुआ।

वैशाख शुक्ल अष्टमी को सुमतिनाथ का जन्म और नवमी को दीक्षा हुई। दशमी के दिन महावीर स्वामी को केवलज्ञान प्राप्त हुआ। द्वादशी के दिन विमलनाथ का एवं त्रयोदशी को अजितनाथ का च्यवनकल्याणक है। ज्येष्ठ बदि छठ को श्रेयांसनाथ का च्यवन हुआ।

ज्येष्ठ कृष्ण अष्टमी को मुनि सुव्रत का जन्म और नवमी के दिन निर्वाण हुआ। त्रयोदशी के दिन शान्तिनाथ स्वामी का जन्म एवं निर्वाण हुआ एवं चतुर्दशी को उन्हीं का दीक्षा कल्याणक है। शुक्ल पंचमी को धर्मनाथ स्वामी का निर्वाण और नवमी को वासुपूज्य जिनेश्वर का च्यवनकल्याणक है।

ज्येष्ठ शुक्ल द्वादशी को सुपार्श्वनाथ जी का जन्म और त्रयोदशी को दीक्षा हुई। आषाढ कृष्ण चतुर्थी को ऋषभदेव

भगवान का च्यवनकल्याणक है। सप्तमी को विमलनाथ का निर्वाण, नवमी के दिन नमिनाथ प्रभु की दीक्षा हुई। शुक्ल छठ को वीर प्रभु का च्यवन और अष्टमी के दिन श्री नमिनाथ का निर्वाण हुआ।

आषाढ शुक्ल चतुर्दशी के दिन श्री वासुपूज्य स्वामी सिद्ध हुए। श्रावण कृष्ण तृतीया को श्रेयांसनाथ का निर्वाण हुआ। सप्तमी के दिन अनन्तनाथ का च्यवन, अष्टमी को नमिनाथ का जन्म, नवमी को कुन्थुनाथ का च्यवन और शुक्ल द्वितीया को सुमतिनाथ जी की दीक्षा हुई।

श्रावण शुक्ल पंचमी के दिन नेमिनाथ भगवान का जन्म और दीक्षा, अष्टमी को पार्श्वनाथ जी का निर्वाण एवं पूर्णिमा को मुनि सुव्रत भगवान का च्यवन हुआ। भाद्रपद कृष्ण सप्तमी को शांतिनाथ जी का च्यवन और चन्द्रप्रभ का मोक्ष हुआ। अष्टमी के दिन सुपार्श्वनाथ तीर्थंकर का च्यवनकल्याणक है।

भाद्रपद शुक्ल नवमी को सुविधिनाथ जिनेश्वर का निर्वाण हुआ। आश्विन कृष्ण अमावस्या को नेमिनाथ भगवान केवली हुए। पूर्णिमा को नमिनाथ का च्यवन कल्याणक है।

श्री सोमसूरि स्तवना करते हुए कहते है कि वे हमें मंगलकारी हो।

श्री सोमसूरि द्वारा कृत कल्याणकस्तवन समाप्त हुआ। यह २० काव्यों मे है।

●

५७. कुल्पाकमाणिक्यदेवतीर्थ-कल्प

श्री कुल्पाकपुर श्रेष्ठ के मंडन माणिक्यदेव ऋषभ स्वामी का कल्प किञ्चित् संक्षेप से यथाश्रुत लिखूँगा।

पूर्वकाल में भरत चक्रवर्त्ती ने अष्टापद पर्वत पर अपने-अपने वर्ण-प्रमाण-संस्थानयुक्त चौबीस तीर्थङ्करों की सिंहनिषद्या प्रासाद में रत्नमय प्रतिमाएँ बनवाईं। वह मनुष्यों के लिए अगम्य होगा, ऐसा सोचकर एक ऋषभदेव स्वामी की एक प्रतिमा लोकानुग्रहार्थ स्वच्छ मरकत मणिमय, कंधों पर जटायुगल, चिवुक पर सूर्य, भालस्थल में चन्द्र और नाभि पर शिव-लिंग वाली प्रतिमा बनवाई, जो माणिक्यदेव नाम से विख्यात हुए। कालान्तर में यात्रा के लिए आये हुए विद्याधरों ने उसे देखा—वह अपूर्व रूप वाली थी। अतः विस्मित मन से विमान में रखकर वैताढय पर्वत की दक्षिण श्रेणी में ले गए और उसकी हार्दिक भक्तिपूर्वक पूजा करने लगे।

एक बार नारद ऋषि भ्रमण करते हुए वैताढ्य पर्वत पर गए। उन्होंने उस प्रतिमा को देख कर विद्याधरों से पूछा—यह कहाँ से आई? उन्होंने कहा—हम अष्टापद से लाये हैं। जब से हम इनकी पूजा करते हैं तब से हमारी ऋद्धि दिनों-दिन बढ़ती जा रही है। यह सुनकर नारद ने स्वर्ग में इन्द्र को इस प्रतिमा का माहात्म्य कहा। इन्द्र ने स्वर्ग में मँगा कर भक्तिपूर्वक पूजा करनी प्रारम्भ की। उसने मुनि सुव्रत और और नमिनाथ भगवान के अन्तराल यावत् पूजा की। इसके पश्चात् लंका में त्रैलोक्य कण्टक रावण उत्पन्न हुआ। उसकी भार्या मन्दोदरी परम सम्यक्-दृष्टि थी। उसने नारद से इस रत्न-बिम्ब का माहात्म्य श्रवण कर उसकी पूजा करने का गाढ अभिग्रह ले लिया। महाराजा रावण

ने यह वृत्तान्त ज्ञात कर इन्द्र की आराधना की। उसने सन्तुष्ट होकर वह प्रतिमा महादेवी को समर्पित की। वह प्रसन्नतातूर्वक त्रिकाल पूजा करने लगी।

एक बार रावण ने सीतादेवी का अपहरण किया और मंदोदरी के समझाने पर भी उसने उसे नही छोड़ा तो प्रतिमा के अधिष्ठायक ने स्वप्न में मन्दोदरी को लंका का भग और गवण का विनाश बतलाया। उसने उस प्रतिमा को समुद्र में डुवा दिया वहाँ देवों द्वारा पूजा होने लगी।

अब कन्नड़ देश के कल्याणनगर में शंकर नामक जिनेन्द्र-भक्त राजा हुआ। किसी मिथ्यात्वी देव ने उसके राज्य में कुपित होकर महामारि रोग पैदा कर दिया। राजा चिन्तित हुआ। पद्मावती देवी ने उसे दुखी देखकर रात्रि में स्वप्न मे कहा—महाराज! यदि समुद्र में से माणिक्यदेव को अपने नगर में लाकर पूजा करो तो कल्याण हो! तब राजा ने समुद्र तट पर जाकर उपवास किया। सन्तुष्ट लवण-समुद्र के अधिष्ठाता ने प्रकट होकर राजा से कहा—इच्छानुसार रत्न ग्रहण करो! राजा ने कहा—राजा ने कहा—मुझे रत्नादि से प्रयोजन नही, मन्दोदरी की स्थापित प्रतिमा दो! देव ने प्रतिमा निकाल कर राजा को समर्पित की और कहा—तुम्हारे देश के लोग सुखी होंगे, परन्तु मार्ग चलते जहाँ तुम्हे सन्देह हो, वहीं प्रतिमा स्थापित कर देना! राजा ने यह बात मान ली। देवता के प्रभाव से बछड़ों की जोड़ी पर जुते हुए गाडे में विराजमान बिम्ब आने लगा। दुर्गम मार्ग को उल्लघन कर राजा के मन में संशय हुआ कि भगवान आते हैं कि नही? तब शासनदेवी तिलग देश कुल्पाक नगर —जो पण्डितों द्वारा "दक्षिण वाराणसी" नाम से प्रसिद्ध है—में प्रतिमा को स्थापित किया। पहले यह अत्यन्त निर्मल मरकतमणि की थी,

परन्तु चिरकालपर्यन्त क्षारसमुद्र-नीर के संग कठिनाङ्ग हो गई।

भगवान माणिक्यदेव को स्वर्ग से लाये ग्यारह लाख असी हजार नौ सौ पाँच वर्ष बीत गए। राजा ने वहाँ श्रेष्ठ प्रासाद और देव-पूजार्थ बारह गाँव दिए। विक्रम संवत् ६८० पर्यन्त भगवान अन्तरिक्ष स्थित रहे। फिर म्लेच्छों का प्रवेश ज्ञात कर सिंहासन पर विराजमान हुए। यह प्रतिमा अपनी अपूर्व कान्ति से भव्य जीवों के नयनों में अमृत वर्षा करती है।

क्या यह प्रतिमा टंकोत्कीर्णित है या खान से लायी हुई है? क्या नागकुमार ने घड़ी है? यह वज्रमय है या नीलमणिमय है? निश्चय नहीं किया जाता। कदलीस्तम्भ जैसी दिखाई देती है। आज भी भगवान के न्हवण-जल से दीपक जलता है। आज भी न्हवण-जल से मिट्टी को भिगो कर अन्धे की आँखों पर बाँधने से नेत्र ज्योतिसहित हो जाते हैं। आज भी तीर्थानुभाव से चैत्यमण्डप से झरते हुए जल-सीकर यात्री लोगों के वस्त्रादि को सिक्त करता है। प्रभु के आगे से साँप काटा मनुष्य भी उठ खड़ा होता है। इस प्रकार अनेक प्रकार के प्रभाव वाले महातीर्थ का माणिक्यदेव का यात्रा-महोत्सव व पूजा जो करते, कराते हैं, अनुमोदन करते हैं वे लोग इहलोक और पारलौकिक सुखश्री को प्राप्त करते हैं।

श्री जिनप्रभसूरि जी द्वारा संक्षेप से वर्णित यह माणिक्यदेव का कल्प जीवों का कल्याण करे।

श्री माणिक्यदेव तीर्थ-कल्प समाप्त हुआ। इसकी ग्रंथ-संख्या ४४ अक्षर ५ हैं।

●

५८. श्रीपुर-अन्तरिक्षपार्श्वनाथ-कल्प

प्रकट प्रभावशाली श्रीपुर के अलंकार पार्श्वनाथ भगवान को नमस्कार करके अंतरिक्ष स्थित उनकी प्रतिमा का संक्षिप्त कल्प कीर्त्तन करता हूँ।

पूर्वकाल में अर्द्धचक्री प्रतिवासुदेव दशग्रीव रावण ने मालि, सुमालि नामक अपने सेवकों को कहीं किसी कार्य के लिए भेजा। आकाश मार्ग से विमानारूढ़ जाते हुए उनके भोजन का समय हो गया। पुष्प-बटुक ने सोचा—मैंने आज उतावल में जिन-प्रतिमा का करण्डिया घर पर ही भुला दिया, ये दोनों पुण्यात्मा देव-पूजा किए विना कहीं भी भोजन नहीं करेंगे। एवं देवपूजा के समय करण्डिया न देखकर मुझ पर रुष्ट होंगे। उसने विद्यावल से पवित्र वालुका की नवीन भावितीर्थङ्कर पार्श्वनाथ की प्रतिमा तैयार की। मालि-सुमालि ने पूजन करके भोजन किया। पुष्प-बटुक ने प्रतिमा आकाश मार्ग से प्रस्थान करते समय निकटवर्ती सरोवर के जल में डाल दी। देवता के प्रभाव से वह प्रतिमा सरोवर मे अखण्ड रही। कालक्रम से उस तालाव का पानी थोड़ा रह गया और जल से भरे खड्डे की भाँति लगा।

कितने ही काल पश्चात् चिगउल्ल देश के चिंगउल्ल नगर में श्रीपाल नामक राजा हुआ। वह सर्वाङ्ग में कुष्ठ व्याधि से ग्रस्त था। एक बार वह शिकार खेलने के लिए गया, वहाँ प्यास लगने पर क्रमशः उस खड्डे पर पहुँचा। मुंह हाथ धोकर पानी पिया, तव उसका अंग-अवयव कनक-कमलोज्वल नीरोग हो गया। घर आने पर महादेवी ने राजा को देख कर साश्चर्य पूछा—स्वामिन्! आज अपने कहीं स्नानादि किया? राजा के यथास्थित कहने पर

उसने सोचा—अहो ! वह दिव्य जल है। दूसरे दिन वह राजा को वहाँ ले गई, सर्वाङ्ग-प्रक्षालन किया जिससे राजा का सारा शरीर अभिनव हो गया। देवी ने बलि-पूजादि करके कहा—यहाँ जो देवता हों वे अपने को प्रकट करें !

घर आने पर रानी को देवता ने स्वप्न में कहा—यहाँ भावी तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा रखी हुई है, उसी के प्रभाव से राजा को आरोग्यलाभ हुआ है। उस प्रतिमा को गाडे में चढाकर सात दिन के जन्मे बछड़ों को कच्चे सूत तंतु की रस्सी मात्र से जोत कर राजा स्वयं सारथी बन कर अपने स्थान के प्रति ले चलें। जहाँ भी राजा पीछे मुड़ कर देखेंगे वहीं प्रतिमा स्थिर हो जायगी।

राजा ने खड्डे के जल को आलोडित कर प्रतिमा प्राप्त की और उसी प्रकार विधि करके प्रतिमा को लेकर चला। कितनी ही दूर जाने पर राजा ने प्रतिमा आती है कि नहीं ? यह जानने के लिए पीछे सिंहावलोकन किया। प्रतिमा वहीं आकाश में ठहर गई, गाड़ी आगे निकल गई। राजा ने अधृति से प्रतिमा को न देखकर वहीं पर अपने नाम से श्रीपुरनगर बसाया, वहीं मन्दिर निर्माण कराया और बड़े भारी समारोह के साथ प्रतिमा प्रतिष्ठित्त की गई। राजा उसकी त्रिकाल पूजा करने लगा। आज भी वह प्रतिमा उसी प्रकार अंतरिक्ष में ठहरी हुई है। पूर्वकाल में बेहड़े-घड़े सहित सिर पर रखे स्त्री प्रतिमा के सिंहासन के नीचे से निकल जाती थी। कालक्रम से भूमि ऊँच हो जाने से या म्लेच्छादि दूषित कालानुभाव से नीची-नीची होते वर्त्तमान में केवल वस्त्र ही प्रतिमा के नीचे से निकलता है। दीपकप्रभा भी सिंहासन और भूमि के बीच दिखाई देती है।

जब वह प्रतिमा गाडी पर चढ़ाई, तब अम्बा देवी और क्षेत्र-

पाल भी प्रतिमा के साथ थे। उतावलवश अम्बा देवी के सिद्ध-बुद्ध पुत्रों में से एक तो देवी ने लिया और एक पीछे छूट गया। देवी ने क्षेत्रपाल को आज्ञा दी कि लड़के को तुम ले आना! अतिशीघ्रता से चलते हुए वह भी नहीं लाया तो देवी ने ठोले से उसके मस्तक पर प्रहार किया जो आज भी उसी प्रकार क्षेत्रपाल के मस्तक पर दिखाई देता है।

इस प्रकार अम्बा देवी और क्षेत्रपाल द्वारा संसेवित धरणेन्द्र, पद्मावती द्वारा कृतप्रातिहार्य वह प्रतिमा भव्य लोकों द्वारा पूजी जाती है। यात्रीगण यात्रामहोत्सव करते हैं। वहां प्रभु के न्हवण-जल से सींची हुई आरती नहीं बुझती। न्हवण-जल से अभिषिक्त शरीर के दाद, खाज, कुष्ठ रोगादि उपशान्त होते हैं।

श्री अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ का कल्प यथाश्रुत किंचित श्री जिन-प्रभसूरि ने परोपकार के हेतु लिखा है।

श्री अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ-कल्प समाप्त हुआ, इसकी श्लोक-संख्या ४१ और ८ अक्षर हैं।

•

५९. स्तंभन-पार्श्वनाथ-कल्प शिलोञ्छ

स्तम्भन पार्श्वनाथ कल्प में जो बातें विस्तारभय से संगृहीत नहीं की उन्हें श्री जिनप्रभसूरि इस कल्प में अंशमात्र कहते हैं।

ढंक पर्वत पर रणसिंह राजपुत्र की भोपल नामक पुत्री को रूपलावण्यसम्पन्न देख कर अनुराग उत्पन्न होने पर वासुकि ने सेवन किया और उसके नागार्जुन नामक पुत्र हुआ। उसे पिता ने

पुत्र-स्नेहमोहित मन से सभी महौषधियों के फल, मूल और पत्ते खिलाये जिसके प्रभाव से वह महासिद्धियों से अलंकृत सिद्ध पुरुष के रूप में प्रसिद्ध हुआ। वह पृथ्वीमण्डल में घूमता हुआ राजा सालाहण का कलागुरु हुआ। वह पादलिप्तपुर में गगनगामिनी विद्या-अध्ययनार्थ पादलिप्ताचार्य की सेवा करने लगा। एक बार पादलेप के बल से उड़ कर अष्टापदादि तीर्थों की वन्दना कर भोजनावसर में स्वस्थान लौटने पर पादलिप्तसूरि के चरण-प्रक्षा-लन के जल को चख कर वर्ण, रस, गंधादि द्वारा उनके नामादि निश्चय कर गुरु के उपदेश विना ही पादलेप करके कुर्कुट की भाँति उड़ता हुआ कुएँ के तट पर जा गिरा। नागार्जुन के जर्जरित अंग को देख कर गुरु महाराज ने पूछा तो उसने यथास्थित बात कही। सूरिजी ने उसके कौशल से चमत्कृत होकर मस्तक पर हाथ रख कर कहा—उन औषधियों को साठी चावल के पानी के साथ बाँट कर पादलेप करने से आकाश मार्ग में गमन होता है। वह सिद्धि प्राप्त कर परितुष्ट हुआ।

फिर कभी उसने गुरु महाराज के मुख से सुना कि—श्री पार्श्वनाथ भगवान के सामने समस्त सुस्त्रीलक्षणयुक्त महासती द्वारा मर्दन किया हुआ रस कोटिवेधी होता है। यह सुनकर वह पार्श्वनाथ प्रतिमा का अन्वेषण करने में लग गया। द्वारिका में समुद्रविजय दशार्ह ने श्री नेमिनाथ प्रभु के मुख से महान् अतिशय वाली ज्ञात कर रत्नमयी श्री पार्श्वनाथ प्रतिमा को प्रासाद में स्थापित कर पूजी। द्वारिका के दाह के अनन्तर वह प्रतिमा समुद्र में गई और वहीं रही। कालान्तर में कान्तिनगरनिवासी धनपति नामक सेठ का जहाज देवतातिशय से स्खलित हो गया। उसने देववाणी से निश्चय किया कि यहाँ जिन-प्रतिमा विद्यमान है। उसने नौका प्रक्षिप्त कर सात कच्चे सूत के तन्तु से प्रतिमा को वाहर निकाला। उसने अपने नगर में ले जाकर वहाँ प्रासाद में

स्थापित किया। वह चिन्ता दूर कर लाभकारी रूप में प्रतिष्ठित होने से प्रतिदिन पूजी जाती थी। नागार्जुन ने उस प्रतिमा को सर्वातिशयी ज्ञात कर रससिद्धि के लिए अपहरण कर सेढी नदी के तट पर स्थापित किया। और उसके आगे रससिद्धि करने लिए उसने शालिवाहन राजा की रानी महासती चन्द्रलेखादेवी को सिद्ध व्यन्तरदेव के सान्निध्य से वहाँ लाकर प्रतिरात्रि रस-मर्द्दन कराने लगा। इस प्रकार वहाँ बारम्बार जाने-आने से नागार्जुन उसका भाई बन गया। जब उसने उसे औषधियाँ मर्द्दन कराने का कारण पूछा तो उसने कोटिरस वेध का यथास्थित वृत्तान्त कहा।

एक दिन चन्द्रलेखा ने अपने दोनो पुत्रो को बताया कि इससे रससिद्धि होगी! रस के लोभ से वे अपना राज्य छोड़ कर नागार्जुन के पास आए। रस ग्रहण करने की इच्छा से वे प्रच्छन्न वेश में रहते थे। जब नागार्जुन भोजन करने लगा तो उसे रससिद्धि का वृत्तान्त पुछा। वह उनको ज्ञात कराने के हेतु नमक सहित रसोई बनाती है। छः महीने बीतने पर उसने क्षार-दोषपूर्ण रसोई बतलाई। रानी ने इंगिताकार से रससिद्धि पुत्रों को सूचित कर दिया और परम्परा से जाना कि नागार्जुन की मृत्यु वासुकि ने दर्भाङ्कुर से बतलाई है, अतः उन्होने उसी शस्त्र से उसे मार डाला। जहाँ रस स्तम्भित हुआ वहाँ स्तम्भन नामक नगर हुआ। कालान्तर से वह प्रतिमा केवल मुख के सिवाय सारी जमीन के अन्दर चली गई।

अब चन्द्रकुल के श्रीवर्द्धमानसूरि शिष्य जिनेश्वरसूरि शिष्य श्री अभयदेवसूरि गुजरात में सम्भायण स्थान में विचरे। उनके महाव्याधिवश अतिसारादि रोग उत्पन्न होने पर प्रत्यासन्न नगर-गाँवो से पाक्षिक प्रतिक्रमणार्थ आने वाले लोगो को विशेष रूप से मिथ्या दुष्कृत देने के लिए सभी श्रावक संघों को बुलाया। तेरस

की अर्द्धरात्रि में प्रभु को शासनदेवता ने कहा—भगवन् ! जगते हैं या सो रहे हैं ? मन्द्र स्वर में प्रभु ने कहा—मुझे नींद कहाँ ? देवी ने कहा—ये नौ सूत की कुक्कुड़ी सुलझाइये ! प्रभु ने कहा—नहीं सकूँगा ! देवी ने कहा—क्यों नहीं सकेंगे ? अभी तो आप भगवान महावीर के शासन की चिरकाल प्रभावना करेंगे, नौ अंगों की वृत्तियाँ भी करेंगे ! आचार्य भगवान ने कहा—इस प्रकार के शरीर से मैं कैसे करूँगा ? देवी ने कहा—स्तम्भनपुर में सेढी नदी के तीर पर खाखरापलाश के बीच श्री स्वयंभू पार्श्वनाथ हैं ! उनके आगे आप देववन्दन करिये जिससे शरीर स्वस्थ हो जायगा।

दूर से आये हुए श्रावकसंघ ने प्रभु को वन्दन किया। प्रभु ने कहा—स्तम्भन में पार्श्वनाथ प्रभु को हम वन्दन करेंगे ! संघ ने सोचा कि निश्चय ही प्रभु को कोई उपदेश है तभी ऐसा कहते हैं ! संघ ने कहा—हम लोग भी वन्दन करेंगे ! वाहन में जाते हुए प्रभु का शरीर कुछ स्वस्थ हो गया तो धवलका से पादविहार करते हुए स्तम्भनपुर पहुँचे। श्रावक लोग सर्वत्र पार्श्वनाथ भगवान को खोजने लगे तो गुरु महाराज ने कहा—खाखरापलाश में देखो ! उन्होंने श्री पार्श्वनाथ-प्रतिमा का मुख देखा। वहाँ प्रतिदिन एक गाय आकर प्रभु-प्रतिमा के मस्तक पर दूध झार देती थी। श्रावकों ने जैसे देखा गुरु महाराज से निवेदन किया। श्री अभय-देवसूरि ने वहाँ जाकर मुख दर्शन मात्र से "जयतिहुअण वर कप्परुक्ख" आदि तत्काल निर्मित्त काव्य द्वारा स्तुति प्रारम्भ की। इसका सोलहवाँ वृत्त बोलते समय भगवान सर्वाङ्ग से प्रत्यक्ष हो गए। तब "जय पच्चक्ख जिणेसर" सतरहवें वृत्त में कहा। बत्तीस छन्द में स्तवन पूर्ण हुआ। अन्तिम दो वृत्त देवी को अत्यन्त आकृष्ट कर होने से देवता ने प्रार्थना की—भगवन् ! तीस गाथाओं से ही सान्निध्य करूँगी, अन्तिम दोनों को निकाल दें। क्योंकि हमें कलियुग में आगमन दुष्कर होगा। प्रभु ने वैसा ही किया। संघ-

सहित चैत्यवन्दन किया। संघ ने उत्तुंग देवगृह बनवाया। प्रभु का रोग उपशान्त हो गया था, उन्होंने पार्श्वनाथ स्वामी को स्थापित किया। महातीर्थ स्तम्भन प्रसिद्ध हुआ। काल-क्रम से स्थानाङ्गादि नव अंगों पर वृत्ति की। आचाराङ्ग और सूत्रकृताङ्ग पर तो पहले ही शीलांकाचार्य द्वारा की हुई थीं। प्रभु श्री अभयदेवसूरि जी ने उसके बाद चिरकाल तक वीरशासन की प्रभावना की।

श्री स्तम्भनक पार्श्वनाथ का संक्षिप्त-कल्प समाप्त हुआ। इसको ग्रन्थ-संख्या ६७ है।

•

६०. श्री फलवर्द्धिपार्श्वनाथ-कल्प

श्री फलवर्द्धिक चैत्य में विराजमान पार्श्वनाथ स्वामी को प्रमाण कर के उन्हीं का कलिकाल के दर्प को चूर्ण करने वाला कल्प यथाश्रुत कहता हूँ।

सवालक्ष देश में मेड़ता नगर के समीप स्थित वीर-भवनादि नानाविध देवालयों से सुन्दर फलवर्द्धि नामक ग्राम है। वहाँ फलवर्द्धि नामक देवी का भवन उत्तुङ्ग शिखर वाला है। वह नगर ऋद्धिसमृद्ध होते हुए भी कालक्रम से ऊजड़ हो गया। तो भी वहाँ कितने ही वणिक लोग आ कर बस गये। उनमें एक श्री श्रीमाल वंश में मुक्ता के सदृश, धार्मिक लोगों में अग्रणी धंधल नामक श्रावक था। दूसरा वैसे ही गुणों वाला ओसवालकुल-नभस्थल में चन्द्रसदृश शिवंकर नामक था। उन दोनों के प्रचुर

गायें थी। उनमें धंधल की एक प्रतिदिन दूध देनेवाली गाय भी दूध नहीं देती थी तो धंधल ने ग्वाले को पूछा—क्या इस गाय को तुम या अन्य कोई बाहर में दूह लेता है? जिससे यह दूध नहीं देती। ग्वाले ने शपथादि करके अपने को निरपराधी किया।

ग्वाले द्वारा कुछ दिन सम्यक् निरीक्षण करते एक दिन ऊँचे रडे पर बोरड़ी वृक्ष के पास चारों थणों से दूध झरती गाय को देखा। और प्रतिदिन पूछने वाले धंधल को दिखाया। उसने सोचा—अवश्य ही भूमि के अन्दर यहाँ कोई यक्षादि देवताविशेष होगा। घर आने पर उसे रात्रि में सुखपूर्वक सोये हुए एक स्वप्न आया—एक पुरुष ने कहा इस रडे में भगवान पार्श्वनाथ गर्भगृह-देवकुलिका में है, जिन्हें बाहर निकाल कर पूजा करो!

धंधल ने प्रभात के समय शिवंकर को स्वप्न का वृत्तान्त कहा। तब दोनों कौतूहलपूर्ण चित्त से बलि पूजा विधान पूर्वक ओड लोगों से रडय भूमि को खुदवा कर गर्भगृह देवकुलिका सहित पार्श्वनाथ प्रभु की सप्तफणामण्डित प्रतिमा निकली। दोनों श्रावक प्रतिदिन महान् ऋद्धि से पूजा करने लगे। इस प्रकार त्रिभुवननाथ की पूजा होते फिर एक दिन अधिष्ठायक ने स्वप्न में उन्हें आदेश दिया कि इसी प्रदेश में चैत्य कराओ! तब उन दोनों ने प्रसन्न चित्त से अपने वैभव के अनुसार चैत्य कराना प्रारम्भ किया। सुथार लोग कमठाणे में प्रवृत्त हुए। जब अग्रमण्डप निष्पन्न हुआ, धन की कमी से द्रव्य-व्यय में असमर्थ होकर कमठाणा बन्द कर दिया और दोनों परम श्रावकों का धैर्य टूट गया। इसके पश्चात् रात्रि में फिर अधिष्ठायक देव ने स्वप्न में कहा—"उषाकाल में अन्धेरे-अन्धेरे देव के आगे द्रम्म मुद्राओं का स्वस्तिक किया देखोगे! उन द्रम्मों को मन्दिर के कार्य में व्यय करना! उन्होंने उसी प्रकार देख कर द्रम्म ग्रहण कर अवशिष्ट कमठाणा कराना प्रारम्भ किया। इस प्रकार तीनों भुवनों के चित्त को चमत्कृति

उत्पन्न करने वाले पाँचों मण्डप व लघु मण्डप परिपूर्ण हुए। चैत्य के बहुत कुछ निष्पन्न होने पर उनके पुत्र ने सोचा—ये द्रव्य कहाँ से आता है! जिससे अविच्छिन्न रूप से कमठाणा चलता है। एक दिन अति प्रभात में स्तम्भ के पीछे छिप कर देखना प्रारम्भ किया। उस दिन देव ने द्रम्मों का स्वस्तिक नहीं पूरा।

इसके बाद देवता का आराधन करने पर भी निकट भविष्य में म्लेच्छ-राज्य होना ज्ञात कर अधिष्ठाता ने द्रव्य पूरा नहीं, चैत्य-निर्माण कार्य अधूरा ही रहा।

विक्रमादित्य राजा के ११८१ वर्ष बीतने पर राजगच्छ-मण्डन श्री शीलभद्रसूरिपट्टप्रतिष्ठित, महावादी दिगम्बर गुणचन्द्र पर विजय प्राप्त कर प्रतिष्ठा पाने वाले श्री धर्मघोपसूरि ने पार्श्व-नाथ चैत्य शिखर की चतुर्विध संघ समक्ष प्रतिष्ठा की।

कालान्तर में कलिकाल के माहात्म्य से व्यन्तर लोग केलि-प्रिय होते हैं इस लिए अधिष्ठायक देव अस्थिर चित्त व प्रमाद परवश होने से सुलतान साहाबुद्दीन ने मूल बिम्ब भग्न किया, फिर सावधान होकर अधिष्ठायक देव ने म्लेच्छ राजा और म्लेच्छों को अन्धत्व एवं रुधिर वमनादि चमत्कार दिखाया। तब सुलतान ने फरमान दिया कि इस देव-मन्दिर का कोई भंग न करे। अधिष्ठायक देवों को अन्य प्रतिमा असह्य होने से संघ ने बिम्ब दूसरा स्थापित नही किया। विकलाङ्ग प्रतिमा होने पर भी भगवान का बड़ा भारी माहात्म्य है। प्रतिवर्ष पौष कृष्ण-१० को जन्मकल्याणक के दिन चारों दिशाओं से श्रावकसंघ आकर न्हवण-गीत-नाटक-वाजित्र-कुसुम-आभरणारोहण-इन्द्रध्वजादि मनो-हर यात्रामहिमाएँ करते हुए संघ पूजादि कार्यों द्वारा शासन-प्रभावना करके दूषम काल के प्रभाव को निर्दलित कर सुकृत भण्डार भरते हैं। यहाँ मन्दिर में धरणेन्द्र-पद्मावती, क्षेत्रपाल

अधिष्ठायक संघ के विघ्नों को उपशमन करते हैं। और प्रणत लोगों का मनोरथ भी पूर्ण करते हैं। यहाँ हाथ में स्थिर प्रदीप लिए हुए घूमते पुरुष को मन्दिर में शान्त चित्त वाले भव्य जन देखते हैं।

इस महातीर्थभूत पार्श्वनाथ के दर्शन से कलिकुण्ड-कुक्कुटेश्वर-श्रीपर्वत-शंखेश्वर-सैरीसा-मथुरा-वाराणसी-अहिछत्ता-स्तंभन-अजाहर-प्रवरनगर-देवपत्तन-करहेड़ा-नागदा-श्रीपुर-सामिणि-चारूपढिपुरी-उज्जैन-शुद्धदन्ती-हरिकंखी-लिंबोडक आदि स्थानों में विद्यमान पार्श्वनाथ प्रतिमाओं का यात्रा करने का फल होता है ऐसा सम्प्रदाय-पुरुषों का उपदेश है।

फलवर्द्धिपुर स्थित पार्श्वनाथ जिनेश्वर के इस छोटे से कल्प को सुनने वाले भव्यों का कल्याण हो।

आप्त जनों के मुख से कुछ संप्रदायादि उपादानों से श्री जिनप्रभसूरि ने यह फलवर्द्धिपार्श्वनाथ-प्रतिमा का कल्प बनाया है।

यह श्री फलवर्द्धिपार्श्वनाथ-कल्प सम्पूर्ण हुआ। ग्रथसंख्या ५५ अक्षर २ ऊपर है।

■

६१. अम्बिकादेवी-कल्प

श्री उज्जयन्त गिरि शिखर के मण्डन श्री नेमिनाथ भगवान को नमस्कार करके कोहंडिदेवी-कल्प वृद्धोपदेशानुसार लिखता हूँ।

सौराष्ट्र देश में धन धान्य सम्पन्न, जनसमृद्ध कोडीनार नामक नगर है। वहाँ सोम नामक ऋद्धि-समृद्ध षट्कर्मपरायण,

वेदागमपारगामी ब्राह्मण था। उसकी अंविणी नामकी स्त्री अपने शरीर में शीलरूपी मूल्यवान अलंकार को धारण करने वाली थी। उनके विषय-सुखानुभव करते दो पुत्र उत्पन्न हुए, पहला सिद्ध और दूसरा बुद्ध था।

एक वार पितर पक्ष आने पर सोम भट्ट ने श्राद्ध के दिन ब्राह्मणों को निमन्त्रित किया। कहीं वे वेद पाठ करते है, कहीं पिण्डदान प्रारंभ करते है, कहीं अग्नि होम करते हैं। अंविणी ने जीमनवार के लिए खीर-खाँड़, दाल, भात, व्यञ्जन, पक्वान्नादि तैयार किए। उसकी सासू स्नान करने में प्रवृत्त थी। उस समय मासक्षमण के पारने के लिए एक साधु उसके घर में भिक्षार्थ आया। उसे देखकर हर्षपूर्ण पुलकित अंग वाली अम्बिणी उठी और भक्ति-वहुमानपूर्वक उस मुनिराज को भात-पाणी देकर प्रतिलाभा। साधु भिक्षा लेकर चला गया और सासू भी नहा-धोकर रसोई में आई। खाद्य पदार्थ पर शिखा न देखकर क्रोधपूर्वक उसने वहू से पूछा। उसके यथास्थित कहने पर सासू ने उसे फटकारा—पापिनी! यह तुमने क्या किया? अभी तो कुल-देवता की पूजा नहीं की और न अभी तक ब्राह्मणों को भोजन कराया, न पिण्डदान ही हुआ है अतः तुमने अग्रशिखा साधु को किस लिए दी?

सासू ने सोमभट्ट से सारा व्यतिकर कहा। उसने रुष्ट होकर स्वच्छंदी कहते हुए उसे घर से निकाल दिया। पराभव से दुखी होकर अम्बिणी वुद्ध को गोद लेकर सिद्ध की अंगुली पकड़े नगर से वाहर चल पड़ी। मार्ग में प्यासे पुत्रों ने जल माँगा, अम्बिणी अश्रुपूर्ण नेत्रों वाली हुई तो सामने रहा हुआ सूखा सरोवर उसके अमूल्य शील के प्रभाव से तत्काल जलपूर्ण हो गया। दोनों पुत्रों को शीतल जल पिलाया। फिर भूखे बालकों ने भोजन माँगा तो

सामने रहा हुआ आम्र वृक्ष तत्काल फला। अंबिणी ने उन्हें आम्र-फल दिए, वे खाकर स्वस्थ हुए।

जब वे आम्र वृक्ष की छाया में विश्राम करने लगे तब जो हुआ वह सुनें। उसने पहले बालकों को जिमाया था उन पत्तलों के बाहर झूठन पड़ी थी उसे अंबिणी के शील प्रभाव से शासनदेवी ने स्वर्णथाल और कटोरे के रूप में परिणत कर दिया और बाहर भूमि पर गिरे झूठन के कणों को मोती आदि बना दिया। रसोई में उसी प्रकार अग्रशिखा युक्त बर्त्तन भरे देखे। सासू ने यह अत्यद्भुत चमत्कार देखकर सोमभट्ट से कहा—बेटा! यह बहू सुलक्षणी और पतिव्रता है, उसे वापस बुलाकर घर में लाओ।

जननी की प्रेरणा से सोमभट्ट पश्चात्तापाग्नि में जलता हुआ वहू को लाने के लिए गया। अंबिणी ने पीछे आते हुए अपने पति ब्राह्मण को देखकर दिशावलोकन किया तो उसे सामने मार्ग में कूप दिखाई दिया। उसने जिनेश्वर भगवान को मन में धारण कर सुपात्रदान की अनुमोदना करते हुए अपने आपको कुँए में गिरा दिया। शुभ अध्यवसायों से मर कर वह सौधर्म कल्प स्थित चार योजन वाले कोहण्ड विमान में "अम्बिका देवी" नामक महर्द्धिक देवी हुई। विमान के नाम से उसे "कोहंडी" भी कहते है। सोमभट्ट ने उस महासती को कुएँ में गिरते देखा तो वह स्वयं भी कूद पड़ा। वह भी मर के वहीं पर देव हुआ। आभियो-गिक कर्म से सिंह रूप धारण कर उसी अम्बिका देवी का वाहन हो गया। अन्य लोग कहते है—अम्बिणी ने रैवत गिरि शिखर से झम्पापात किया और उसके पीछे सोमभट्ट भी उसी प्रकार मरा—शेष बात एक सी है।

उस भगवती के चार भुजाएँ हैं, दाहिने हाथ में आम्रलुम्ब एवं पाश धारण किया हुआ है। बाँये हाथ में पुत्र और अंकुश

धारण किया हुआ है। उनका शरीर तपे हुए सोने जैसा है। वह श्री नेमिनाथ भगवान की शासनदेवी है और गिरनार शिखर पर उसका निवास है। उसके मुकुट, कुण्डल, मुक्ताहार, रत्नकंकण, नुपूरादि सर्वांगाभरण रमणीक हैं। वह सम्यग्दृष्टियों के मनोरथ पूर्ण करती है, विघ्नसमूह दूर करती है। उस देवी का मन्त्र मण्डलादि रचनापूर्वक आराधन करने वाले भव्यों के अनेक प्रकार की ऋद्धि-समृद्धि देखी जाती है एवं उनका भूत, पिशाच, शाकिनी और दुष्टग्रह पराभव नहीं करते। पुत्र, कलत्र, धन-धान्य, राज्य श्रीसम्पन्न होता है। अम्बिका मंत्र यह है--

वयवीयम कुल कुलजलहरिहय अवकंततत्त पेआइं।
पणइणिवायावसिओ अंविअदेवीइ अहमंतो ॥ १ ॥
धुवभुवण देवि संवुद्धिपास अंकुस तिलोअ पंचसरा।
णहसिहि कुलकल अब्भासिअमाया परपणामपयं ॥ २ ॥
वागुब्भवं तिलोअं पास सिणीहाओतइअवन्नस्स।
कूडं च अंविआए नमुत्ति आराहणा मंतो ॥ ३ ॥

इस प्रकार अम्बिका देवी के वहुत से मंत्र स्वपर की रक्षा करने वाले स्मरणयोग्य मार्ग-क्षेमादि गोचर हैं। उन मन्त्रों को व मण्डल को यहाँ विस्तार भय से नहीं कह रहे, जिज्ञासुओं को गुरुमुख से जानना चाहिए।

यह अम्बिका देवी का कल्प अविकल्पचित्तवृत्ति वाले, वांचने सुनने वाले समीहित अर्थ से पूर्ण होते हैं।

अम्बिका देवी का यह कल्प समाप्त हुआ। इसकी ग्रंथ-संख्या ४७ व अक्षर अधिक है।

■

६२. पंचपरमेष्ठी नमस्कार-कल्प

तीन जगत को पावन करने वाले पुण्यतम मंत्र श्री पंच-परमेष्ठी नमस्कार का योगी चिन्तन करे। वह इस प्रकार है—

ज्ञानीजन आठ दल वाले सफेद कमल की कर्णिका में स्थित प्रथम सात अक्षर का पवित्र मंत्र चिन्तन करे—णमो अरिहंताणं।

चारों दिशाओं के पत्रों में यथाक्रम से सिद्धादि चार पदों का और विदिशा के दलों पर चार चूला पद का चिन्तन करे।

मुनि इसका त्रिशुद्धिपूर्वक एक सौ आठ बार चिन्तन करते हुए भी चतुर्थ तप-उपवास का फल प्राप्त कर लेते हैं।

इस लोक में योगीजन इस महामंत्र का समाराधन करके परम-पद को प्राप्त त्रैलोक्यनिवासी जनों द्वारा पूजे जाते हैं।

हजारों पाप करके सैकड़ों जन्तुओं को मारने वाले तिर्यञ्च भी इस मंत्र का आराधन करके स्वर्ग में गए हैं।

गुरुपंचक नाम से बनी हुई षोडशाक्षरा विद्या होती है। उसको दो सौ बार जपता हुआ प्राणी चतुर्थ तप का फल प्राप्त करता है।

पंचपरमेष्ठि नमस्कार-कल्प समाप्त हुआ।

❂

६३. ग्रन्थ-समाप्ति का कथन

इस ग्रन्थ का आदि से अन्त तक (समस्त कल्पों) का ग्रन्था-ग्रन्थ (श्लोकपरिमाण) अनुष्टुप् मान के अनुसार ३५६० हुआ है ॥ १ ॥

मनुष्य को किस कार्य में सज्जित (उद्यत) होना चाहिए ?

'जि' (अर्थात् जयविषय कार्य)

निषेधार्थक शब्द कौन सा है ?

'न' (अर्थात् नहीं)

प्रथम उपसर्ग कौन सा है ?

'प्र' (यह उपसर्ग सर्वप्रथम परिगणित है)

निशा (रात्रि) कैसी है ?

'भ' (अर्थात् तारों से युक्त)

प्राणियों को प्रिय कौन होता है ?

'सूरि' (अर्थात् विद्वान्)

इस ग्रन्थ का प्रणेता कौन है ?

'जिनप्रभसूरि' ॥ २ ॥

यह ग्रन्थ दिल्ली में वि० सं० १३८९ भाद्रपद कृष्णा १०, वुधवार के दिन भूमण्डल के इन्द्र श्री हम्मीर महम्मद (मुहम्मद तुगलक) के प्रतापी शासन-काल में पूर्ण हुआ ॥ ३ ॥

तीर्थों एवं तीर्थभक्तों के वर्णन से पवित्रीभूत यह 'कल्पप्रदीप' नामक ग्रन्थ चिरकालपर्यन्त प्रतिष्ठा को प्राप्त होता रहे ।

■

परिशिष्ट १

जीरापल्ली तीर्थ

(उपदेशसप्तति से)

आगे संवत् ११०९ अनेक जैन और शैव प्रासादों से रमणीक ब्राह्मण नामक महास्थान में धांधल सेठ नाम का महाश्रावक रहता था। वहाँ एक क्षमाशील वुढिया रहती थी जिसकी गाय प्रतिदिन सेहिली नदी के पार्श्व स्थित देवीत्री पर्वत की गुफा में दूध झार आती थी जिससे सन्ध्या समय घर आने पर वह कुछ भी दूध नहीं देती। कितने ही दिन पश्चात् क्रमशः वह स्थान उस बुढिया के जानने में आया। उसने धांधल आदि मुख्य व्यक्तियों को यह वृत्तान्त बतलाया।

साहूकार लोगों ने निश्चय किया वह चमत्कारिक स्थान है और वे रात्रि में पवित्र हो कर पंचपरमेष्ठी के स्मरणपूर्वक किसी उपाश्रयादि पावन स्थान में सो गये। रात्रि के समय नील वर्ण के अश्व पर किसी दिव्य पुरुष ने उन्हें स्वप्न में कहा कि जहाँ गाय दूध झरती है वहाँ श्री पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा स्थित है, मैं उसका अधिष्ठायक देव हूँ। अतः उस जिनप्रतिमा की पूजा हो वैसा तुम लोग उपाय करो! देव अन्तर्धान हो गया। प्रातःकाल वे साहूकार वहाँ गए और भूमि का उत्खनन कर प्रतिमा को रथ में विराजमान करने लगे, इतने ही में जीरापल्ली के नागरिक वहाँ आ कर कहने लगे हमारी हद में स्थित जिनबिम्ब को तुम लोग क्यों ले जाते हो? विवाद बढ़ने पर किसी वृद्ध ने निर्णय किया एक बैल हमारा और एक बैल आप लोगों का—दोनों को रथ में जोड़ दो, वे जहाँ जाएँ प्रभु इच्छा! विवाद कर्म-बन्ध का हेतु है

अतः उन्होंने इस निर्णय को मान्य किया। भगवान जीरापल्ली नगरी में पधारे, महाजन लोगों ने प्रवेशोत्सव किया। वहाँ के जिनालय की महावीर प्रतिमा को स्थानान्तर कर के संघ ने सर्व-सम्मति पार्श्वनाथ भगवान को मूलनायक रूप में विराजमान किया। वहाँ अनेक अभिग्रह धारण कर आने लगा। अधिष्ठायक देव उनकी मनोकामना पूर्ण करता जिससे जीरावला पार्श्वनाथ तीर्थ रूप में प्रसिद्ध हो गया। धांधल सेठ देव-द्रव्यादि की सार-सम्भाल करता था।

एक बार जावालि नगर से यवनों की सेना आई जिसे अधिष्ठायक देव ने अश्वारूढ हो कर भगा दिया। फिर सेना में से सात सेख—गुरु लोग रुधिर का पात्र भर कर लाए और देव-स्तुति के वहाने मन्दिर में रहे और रात्रि में रुधिर छिड़क कर प्रतिमा को भंग कर दिया। शास्त्रवाक्य है कि रक्तस्पर्श से देवों की प्रभा लुप्त हो जाती है। शेख लोग आशातना कर के भाग गये, प्रातः-काल इस दुर्घटना को ज्ञात कर धांधल सेठ आदि सभी लोग वड़े दुखी हुए। राजा ने अपने सुभट भेज कर सातों सेखों को नष्ट कर दिया।

उपवास कर के वैठने पर अधिष्ठाता देव ने कहा—ऐसी अप-वित्रता के समय मैं भी असमर्थ हूँ। तुम चिन्ता मत करो, अव नौ सेर चन्दन के अन्तर्लेप से ये नवों खण्ड मिला कर रख दो और सात दिन कपाट वन्द रखो। गोष्ठिक ने उसी प्रकार किया पर सातवें दिन एक संघ आया जिसने उत्सुकतावश द्वारोद्घाटन कर दर्शन किये। कुछ अवयव अश्लिष्ट रह गए, आज भी भगवान के नव अंग स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं। अपने नगर में पहुँचने पर उन आततायी लोगों के घरों में ज्वलन, द्रव्यनाश आदि होने लगा तो दैवी उपद्रव ज्ञात कर वहाँ के राजा ने अपना मंत्री भेजा। देव ने उसे स्वप्न में कहा कि जब राजा स्वयं यहाँ आ कर अपना शिर

मुण्डन करायगा तभी कुशल होगा। राजा के स्वयं आ कर भोग-योग कराने पर शान्ति हुई। ऐसा देख कर जनता भी अनुकरण में शिर मुण्डनादि कराने लगी। और यह गतानुगतिक प्रथा चल पड़ी।

इस प्रकार जीरावाला तीर्थ का प्रकर्ष और माहात्म्य बढ़ने लगा। देव ने अधिकारी को स्वप्न ने कहा कि खण्डित मूर्ति मुख्य स्थान में शोभा नहीं देने से इसी नाम से दूसरी प्रतिमा स्थापित्त करो। फिर नव्य प्रतिमा प्रतिष्ठित्त हुई जिसकी इहलोक-परलोक-कल्याणाभिलाषी जन आज भी पूजा करते है। प्राचीन प्रतिमा को दक्षिण भाग में स्थापित्त किया जिसकी पूजा, नमस्कार ध्वजा आदि पहले किया जाता है। अब वह जीर्ण प्रतिमा दादा पार्श्वनाथ नाम से पहिचानी जाती है और उसी के समक्ष शिर मुण्डनादि किये जाते हैं। धांधल सेठ के संतान में आसीहड़ गोष्टिक चौदहवाँ हुआ ऐसा इतिहास है।

इस जीरापल्ली तीर्थ प्रबन्ध को मैने यथाश्रुत कहा है। बहु श्रुतों को आस्थापूर्वक मध्यस्थ भाव से अंतर पट पर उतारने का प्रयत्न करना चाहिए।

फलवर्द्धि तीर्थ

विक्रम संवत् ११७४ में चौरासी वाद-विजेता श्री वादिदेव सूरि हुए। एक वार आचार्य महाराज भव्यजनों को पावन करते हुए मेड़ता चातुर्मास रहे। श्रावक लोगों ने धर्म कृत्यों से अपना जीवन सफल किया। चातुर्मास पूर्णकर आचार्य महाराज मासकल्प करने के लिए फलवर्द्धिपुर पधारे। वहाँ पारस श्रावक बड़ा श्रद्धालु था, वह प्रतिदिन पवित्रता से जिनेश्वर देव की त्रिकाल पूजा किया करता था पर वह निर्धन था। एक बार उसने जंगल

में अम्लान पुष्पों से मण्डित एक ढेर देखा और आश्चर्यपूर्वक गुरु महाराज से निवेदन किया। आचार्य महाराज ने देख कर कहा—इस स्थान में जिन-प्रतिमा होनी चाहिए। उस भूमि का उत्खनन किया गया पुण्योदय से विकसित कमल जैसी पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा प्रगट हुई। सेठ ने उसे उत्सवपूर्वक ले जाकर घास के झौपड़े में विराजमान किया और पूजा करने लगा। रात्रि के समय अधिष्ठायकदेव ने स्वप्न में कहा—भगवान का प्रासाद वनवाओ! सेठ ने कहा—द्रव्य के विना कैसे जिनालय वने? अधिष्ठता ने कहा—भगवान के समक्ष लोगों द्वारा चढ़ाए हुए सभी चावल प्रातःकाल प्रतिदिन सोने के हो जाएँगे। इस प्रकार जिनालय के लिए द्रव्य की प्राप्ति हो जायगी पर यह बात किसी को मत बतलाना! यदि कह दोगे तो स्वर्ण की प्राप्ति वंद हो जायगी! पारस ने वैसा ही किया।

शुभ मुहूर्त्त में शिल्पियों द्वारा चैत्य निर्माण प्रारंभ हुआ। कितने ही अरसे में गर्भगृह के उत्तुंग तीन मण्डप युक्त अनेक स्तंभों सुशोभित विशाल प्रवेश द्वार, मत्त गजेन्द्र युक्त, मेघ मण्डलवत् विभ्राजमान तोरण, उभय पक्ष में शालाओं से मनोहर स्वर्ग-विमान तुल्य चैत्यालय निष्पन्न हुआ। सेठकी भावना थी कि ऐसे और भी तीनों दिशाओं में चैत्य निर्माण हो। परन्तु एक पुत्र के कदाग्रह से द्रव्य-प्राप्ति का रहस्य प्रगट हो गया जिससे धन-प्राप्ति वंद हो गई।

पारस सेठ ने वड़े समारोहपूर्वक सं० १२०४ में श्री देवसूरि के पट्टधर मुनि चन्द्रसूरि से विम्ब व चैत्य की प्रतिष्ठा सम्पन्न करवाई।

वह गगनस्पर्शी चैत्य अनुक्रम से फलवद्धि तीर्थ नाम से प्रख्यात हुआ। आज भी श्रद्धालु संघ अपने पाप-पंक का प्रक्षालन करता है।

आरासण तीर्थ

पासिल नामक श्रद्धालु श्रावक द्वारा आरासण गाँव में निर्मापित और श्री देवसूरि जी के प्रतिष्ठित चैत्य अनुक्रम से तीर्थ रूप में प्रसिद्ध हुआ ।

एक बार श्री मुनि चंद्र गुरु के शिष्य आचार्य देवसूरि भृगुपुर चातुर्मास स्थित थे। उस समय कान्हड़ नामक एक योगी क्रूर साँपों के ८४ अरंडिए ले कर वहाँ आया और कहने लगा—हे सूरीन्द्र ! मेरे साथ विवाद कीजिए नहीं तो इस सिंहासन का त्याग कर दें। आचार्यश्री ने कहा—अरे मूर्ख, तुम्हारे साथ वाद कैसा ? क्या श्वान के साथ सिंह कभी युद्ध होता है ? योगी ने कहा—मैं सर्प-क्रीडा जानता हूँ जिससे राजमहल आदि स्थानों में जा कर दूसरों से अधिक आभरणादि पुरस्कार प्राप्त करता हूँ। आचार्य महाराज ने कहा— हे योगी ! हमें किसी प्रकार के वाद करने की इच्छा नहीं है, क्योंकि मुनि तत्त्वज्ञ होते हैं और जैन मुनि तो विशेष कर तत्त्व-प्राज्ञ होते हैं। फिर भी तुम्हें यह कौतुक हो तो राजा के समक्ष विवाद करें, क्योंकि विजयेच्छुकों को चतुरंग वाद करना चाहिए।

योगी और आचार्य महाराज श्रीसंघ के साथ राजसभा में आये। राजा ने उन्हें सम्मानपूर्वक सिंहासन पर बैठाया। आचार्य महाराज उदयाचल पर आरूढ सूर्य बिम्ब की भाँति सुशोभित थे। योगी ने कहा—राजेन्द्र ! और तो सुखावह वाद होते हैं, यह प्राणान्तिक वाद है अतः मेरी शक्ति को देखिए। आचार्य महाराज ने उसे शेखी बघारते देख कर कहा—अरे वराक, तुम्हें पता नहीं हम लोग सर्वज्ञ-पुत्र है। फिर आचार्य महाराज ने अपने चारों ओर सात रेखाएँ बनाई। योगी द्वारा बहुत से साँप छोडे गये पर

किसी ने रेखा का उल्लंघन नहीं किया। योगी ने उदास हो कर दूसरा प्रयोग प्रारम्भ किया। उसने कदलीपत्र पर नालिका में से एक साँप छोडा जिससे वह पत्र तुरन्त भस्म हो गया। दुष्ट योगी ने कहा—सुनो लोगों, यह रक्ताक्ष पन्नग शीघ्र अन्त करने वाला है! यह कहते हुए महाजनों के देखते-देखते सर्प को छोड़ा। फिर दूसरे सर्प को छोड़ा जो उसका वाहन हो गया। योगी द्वारा प्रेरित वह सिंहासन पर चढने लगा। आचार्य महाराज तो स्वस्थचित्त से ध्यानारूढ हो गए। सब लोग हाहाकार करने लगे और योगी मुस्कुराने लगा। गुरु महाराज के माहात्म्य से वह दृष्टिविष सर्प हतप्रभ हो गया। तप के प्रभाव से एक शकुनिका आई और उसने सर्प युगल को उठा कर तुरन्त नर्मदा-तट पर छोड दिया। योगी दीनतापूर्वक गुरु महाराज के चरणों में गिर कर निरहंकार हो कर चला गया। संघ को अपार हर्ष हुआ। राजा ने महोत्सव-पूर्वक गुरु महाराज को स्वस्थान पहुँचाया।

उसी रात्रि मे एक देवी ने आकर कहा—भगवन् इस सामने वाले वट वृक्ष पर रहने वाली यक्षिणी ने आपकी धर्मदेशना सुनी, वही मै वहाँ से मर के कुरुकुल्ला देवी हुई हूँ। मैंने ही शकुनिका बन कर साँपों को हटाया है! गुरु महाराज ने कुरुकुल्ला-स्तव की नव्य रचना की जिसके पाठ द्वारा भव्यजन साँपों को दूर कर सकते हैं। गुरु महाराज ने पारण की ओर विहार किया।

उस समय आरासण गाँव में गोगा मत्री का पुत्र पासिल नामक श्रावक रहता था जो पवित्र आशय वाला, पर निर्धन था। एक बार वह घृत-तेल आदि विक्रय करने के लिए पाटण गया। जब वह गुरु महाराज को वंदन करने आया तब छाडा की पुत्री हांसी ने उपहासपूर्वक उसे कहा—यह जो ९९ लक्ष स्वर्णमुद्रा के व्यय से राजा ने मन्दिर वनवाया है, वैसा तुम्हें भी बनाने की

स्पृहा है ? पासिल ने कहा—बहिन ! मेरे जैसे से यह कार्य होना कठिन है, क्या बालक में मेरु पर्वत तोलने की शक्ति कभी होती है ? फिर भी यदि मन्दिर बनवाऊँ तो तुम वहाँ अवश्य आना। पासिल अपने स्थान गया और उसने गुरु महाराज की बताई हुई विधि से अम्बा देवी का आराधन किया। दस उपवास होनेपर देवी ने प्रगट होकर कहा—मेरे प्रभाव से सीसे की खान चाँदी की हो जायगी। तुम उसे ग्रहण करके प्रासाद का निर्माण कराओ! उसने देवी के आदेश से नेमिनाथ जिनालय का निर्माण-कार्य प्रारम्भ कर दिया।

एक बार उस गाँव में कोई गुरु महाराज आये। उन्होंने पासिल से पूछा—चैत्य का कार्य निर्विघ्नता से चलता है ? उसने कहा—देव ! गुरु के प्रसाद ठीक से चलता है ! अम्बिका देवी ने सोचा, यह तो कृतघ्न है, मेरा उपकार नहीं मानता ! सीसे की खान की चाँदी से चैत्य शिखर तक काम चला बाद में बन्द हो गया। पाटण से गुरु महाराज और उस बहिन को बुलाकर नेमिनाथ जिनालय की प्रतिष्ठा कराई। उस बहिन ने भाई से वस्त्र याचना-पूर्वक मन्दिर का मण्डप बनवाने की आज्ञा माँगी। सेठ के स्वीकार करने पर उसने नौ लाख रुपये व्यय करके मेघनाद मण्डप बनवाया। फिर दूसरे व्यापारियों ने भी वहाँ मन्दिर बनवाए। इस प्रकार आरासण एक तीर्थरूप में प्रसिद्ध हो गया।

अन्य ग्रन्थ में भी कहा है कि—गोगा मंत्री के चतुर और श्रद्धालु पुत्र पासिल ने श्री नेमिनाथ भगवान का यह उत्तुंग जिनालय निर्माण कराया जिसकी प्रतिष्ठा श्री मुनिचन्द्रसूरि के शिष्य वादीन्द्र श्री देवसूरि ने करवाई।

कलिकुण्ड तीर्थोत्पत्ति

महत्तर माहात्म्य लक्ष्मी से मनोहर श्री पार्श्वनाथ प्रभु को

नमस्कार करके गुरु उपदेश से यथाश्रुत श्री कलिकुण्ड तीर्थ की उत्पत्ति कहता हूँ।

चम्पानगरी के पास श्वापद श्रेणि से भयंकर और विकट कादम्वरी नामक अटवी है। वहाँ कलि नामक एक वड़ा पहाड़ है जिसके नीचे के भू-भाग में कुण्ड नामक सरोवर है। इन उभय नामों को मिलाकर यह स्थान कलिकुण्ड नाम से प्रसिद्ध हो गया और श्री पार्श्वनाथ भगवान के चरणों से पवित्र होकर तीर्थरूप में प्रख्यात हुआ।

आगे कोई नगर में एक वामन व्यक्ति रहता था जिसकी राजा आदि सभी लोग स्थान-स्थान पर हँसी उड़ाते थे। वह उद्विग्न होकर आत्मघात करने की इच्छा से वृक्ष पर लटकने लगा तो सुप्रतिष्ठित नामक मित्र श्रावक ने उसे मना करते हुए कहा—महाभाग ! व्यर्थ मरने से कोई लाभ नहीं, यदि सौभाग्य, आरोग्य और रूप चाहते हो तो अहिंसा-संयम-तप रूप जैनधर्म का आराधन करो ! वह उसे गुरु महाराज के पास ले गया और उनके धर्मोपदेश से शुद्ध श्रावक बनाया। वह अनेक प्रकार के तप करके उच्च देह-धारी वनने का नियाणा करके उस अटवी में महावलवान यूथाधिपति महीधर नामक हाथी हुआ।

एक वार भगवान पार्श्वनाथ छद्मस्थावस्था में विचरते हुए कुण्ड के पास कायोत्सर्ग स्थित रहे। महीधर हाथी भी जलपान करने के लिए सरोवर पर आया और प्रभु को देख कर जातिस्मरण को प्राप्त हुआ। उसने सोचा—मैंने अज्ञान से धर्म की विराधना कर के पशु-योनि प्राप्त की, अव इन देवाधिदेव की पूजा कर अपना जन्म सफल करूँ ! उसने कमलों से पार्श्वनाथ भगवान की पूजा की और अनशन ले कर महर्द्धिक व्यन्तर देव उत्पन्न हुआ। यह वृत्तान्त जव चम्पानगरी के राजा करकण्डु ने सुना तो वह विस्मय

पूर्वक सोत्साह प्रभु वन्दनार्थ आया। भगवान तो विहार कर चुके थे अतः मन में विषाद ला कर जिनदर्शन न पाने पर आत्म-निन्दा व हाथो की प्रशंसा करने लगा। राजा ने वहाँ जिनालय बनवा कर नौ हाथ प्रमाण की पार्श्वनाथ-प्रतिमा स्थापित्त की।

कुछ लोग कहते हैं कि धरणेन्द्र के प्रभाव से वहाँ तत्काल नौ हाथ प्रमाण वाली पार्श्वनाथ प्रतिमा प्रगट हुई, राजा ने प्रमुदित्त चित्त से पूजन कर उस अपने बनवाए हुए मन्दिर में हाथी की प्रतिमा भी स्थापित्त की। वह व्यन्तर देव लोगों के मनोवांछित्त पूर्ण करने लगा जिससे कलिकुण्ड तीर्थ की प्रसिद्धि हुई। राजा करकण्डु भी नानाविध भक्ति द्वारा परमप्रभावक श्रावक के रूप में प्रसिद्ध हुआ। व्यन्तर देव भी प्रभु-भक्तिरत्त रह कर अनुक्रम से सद्गतिभाजन होगा।

श्री अन्तरिक्ष तीर्थ-श्रीपाल राजा

जिनके अंग स्पर्श से पवित्र जल का पान करने से श्रीपाल राजा कुष्ठरोगरहित हुआ, वे श्री पार्श्वनाथ भगवान भव्य प्राणियों के लिए कल्याणकारी हों।

एक बार रावण द्वारा अपने निजी कार्य के लिए नियुक्त मालि और सुमालि विद्याधर विमान में आरूढ हो कर कहीं जा रहे थे। उन्हें जिनपूजा किए बिना भोजन न करने का दृढ नियम था किन्तु जिन-प्रतिमा घर पर भूल गए। भोजन का समय होने पर पवित्र बालुका के कणों से पार्श्वनाथ-प्रतिमा निर्माण कर पूजा की और जाते समय उस प्रतिमा को सरोवर में स्थापित कर दी। दिव्य प्रभाव से वह प्रतिमा स्थिर हो गई और उसके प्रभाव से उस तालाब का जल सर्वदा निर्मल और अखूट रहने लगा।

एक बार बिंगिल्लपुर में श्रीपाल नामक राजा हुआ जिसका

सर्वाङ्ग कुष्ठव्याधिपीड़ित था। राजवैद्यों ने सैकड़ों औषधि-प्रयोग किए पर उसके कोई लाभ नहीं हुआ। एक वार राजा उस सरोवर पर क्रीडा करने लगा और थक कर तृषातुर होने से जल-पान कर के विश्राम करने लगा। उसने हाथ-पैर धोये और अपने को स्वस्थ अनुभव कर अपने नगर आया राजा के शरीर के अव-यव एकदम कंचन जैसे हुए देख कर प्रातःकाल रानी ने साश्चर्य इसका कारण पूछा तो राजा ने सरोवर के जल से प्रक्षालन करने और जलपान करने का वृत्तान्त कहा। रानी ने कहा—यहाँ अवश्य कुछ सप्रभाव है! राजा ने विस्मयपूर्वक उस सरोवर में स्नान किया जिससे राजा बिल्कुल निरोग हो गया। तदनन्तर धूप-दीप नैवेद्यादि चढा कर प्रार्थना की कि जो देव हों वे प्रगट हों। राजा रात्रि में वहीं सो गया। ब्राह्ममुहूर्त्त में अधिष्ठाता देव ने आ कर कहा--यहाँ भावि तीर्थङ्कर श्री पार्श्वनाथ की प्रतिमा है, जिसके प्रभाव से तुम्हारा कुष्ठ रोग नष्ट हो गया है! इसलिए अब सात दिन पूर्व जन्मे हुए बछड़ों को रथ में जोत कर भगवान को विराजमान कर स्वयं सारथी बन कर शीघ्र ले जाओ। जहाँ भी पीछा मुँह कर के देखोगे वहीं भगवान स्थिर हो जायँगे।

राजा ने उठकर देव के निर्देशानुसार किया। कुछ दूर जाने पर राजा के मन में सन्देह हुआ कि भगवान आते हैं कि नहीं? उसने मुड़कर देखा तो प्रतिमा वहीं आकाश में स्थिर हो गई, रथ आगे निकल गया। राजा ने सविस्मय वहीं पर श्रीपुर नामक नगर बसाकर विशाल चैत्यालय में प्रतिष्ठित की। स्थविर कहते है कि आगे घटयुगलयुक्त पनिहारी उसके नीचे से निकल सकती थी। राजा श्रीपाल ने चिरकाल उस प्रतिमा की पूजा कर अभीष्ट प्राप्त किया और क्रमशः मोक्ष आवेगा। आज भी भगवान की प्रतिमा और पृथ्वी के बीच कुछ अन्तर है, ऐसा वहाँ के अधिवासी एवं अन्य लोग कहते हैं।

इस प्रकार जैसे श्रीपाल राजा अंतरिक्ष पार्श्वनाथ की पूजा करके निरोग हुआ वैसे ही हे भव्य जीवो ! तुम लोग भी जिनेश्वर की आराधना करके परम सुखी बनो।

माणिक्यदेव (कुल्पाक)

माणिक्य की जिनेन्द्र-प्रतिमा का पूजन करने से शंकर राजा की भाँति श्री देवाधिदेव का अर्चन करने से दुर्वार महामारि आदि उपसर्ग नष्ट होते हैं।

भरत महाराजा ने अष्टापद के चैत्य में वर्णादि युक्त सर्व तीर्थंकरों की प्रतिमाएँ स्थापित की। वहाँ उदीयमान किरणों से युक्त एक नीलरत्न की आदिनाथप्रतिमा भी उसने पृथक् स्थापित की थी इसलिए उस प्रतिमा को लोग माणिक्यदेव नाम से पहिचानते हैं वह अत्यन्त प्रभावशाली है। कुछ लोग ऐसा भी कहते हैं कि— "भरतेश्वर की मुद्रिका में स्थित पाचिरत्न की यह प्रतिमा वनाई हुई हैं इस प्रतिमा की पूजा वहाँ चिरकाल पर्यन्त हुई।

एक बार कितने ही विद्याधर वहाँ यात्रार्थ आये और इस अपूर्व प्रतिमा को प्रसन्नतापूर्वक दक्षिण श्रेणी में ले गए। वे वहाँ प्रतिदिन पूजा करने लगे। एक बार नारद ऋषि वहाँ अतिथि रूप में आये और प्रतिमा को देखकर पूछा—यह प्रतिमा तुम्हारे यहाँ कैसे ? उन्होंने कहा—हम इस प्रतिमा को वैताढ्य पर्वत से लाए हैं, इनके शुभागमन से हमारे राज्य-राष्ट्रादि से हमारी वृद्धि हुई है। मेरु पर्वत पर शास्वत चैत्यों को वन्दनार्थ आने पर नारद ने इन्द्र से इस प्रतिमा का माहात्म्य बतलाया, उसने देवों द्वारा उसे देवलोक में मंगवा ली और अत्यन्त भक्तिपूर्वक वहाँ कई सागरोपम पर्यन्त इन्द्रादि देवों ने उसकी पूजा की।

भरतक्षेत्र में जब त्रैलोक्यकंटक राक्षसराज रावण हुआ,

उसके मन्दोदरी रानी थी। एक बार नारद के मुँह से उस प्रतिमा का माहात्म्य सुनकर उसने रावण को प्रेरित किया। रावण ने शक्रेन्द्र की आराधना की। शक्रेन्द्र ने प्रसन्न होकर मन्दोदरी को वह प्रतिमा दी जो उसकी त्रिकालपूजा करने लगी।

एक वार रावण ने सीता का अपहंरण किया और भ्राता-पुत्रादि के निवारण करने पर भी उसे न छोड़ा तो उस प्रतिमा के अधिष्ठायकं देव ने कहा—लंका और लंकापति का नाश होगा। यह ज्ञात कर मन्दोदरी ने उस जिन-प्रतिमा को समुद्र में स्थापन कर दी।

अब कर्णाटक देश के कल्याणनगर में जिनेश्वर के चरण-कमल में अनुरक्त मधुकर की भाँति अभंग भाग्यशाली राजा शंकर हुआ। एक बार किसी मिथ्यादृष्टि देव ने वहाँ महामारी फैला दी। राजा और मंत्री आदि को चिन्तित देखकर पद्मावती देवी ने स्वप्न में कहा कि—समुद्र में स्थित माणिक्य स्वामी की प्रतिमा यदि यहाँ नगर में आवे तो शीघ्र उपद्रव शान्त हो जाय। उपाय हस्तगत होने से शंकर राजा ने भक्ति युक्ति से लवणसमुद्र के अधिष्ठाता देव को प्रसन्न किया उसने मन्दोदरी से सम्बन्धित उस प्रतिमा को राजा को सर्मपित्त कर दिया। उसने कहा—तुम अपनी पीठ पर भगवान को लेकर सानंद जाओ, परन्तु जहाँ भी सन्देह करोगे भगवान वहीं स्थिर हो जाएँगे।

देव के अदृश्य हो जाने पर राजा शंकर अपनी पीठ पर भगवान को विराजमान कर सैन्यसहित चला। जब वह तिलंग देश के कुल्पाक नगर में पहुंचा तो प्रतिमा का भार अनुभव नहीं होने से मन में सन्देह हो गया कि भगवान आते है कि नहीं? माणिक्य स्वामी वहीं स्थिर हो गए। राजा ने कुल्पाक नगर में एक सुन्दर जिनालय बनवाकर निर्मल मरकतमणिमय बिम्ब को

वहाँ स्थापित कर दिया। यह प्रतिमा ६८० वर्ष पर्यन्त गगन में अधर रही और पूजन के प्रभाव से सर्व प्रकार के रोगों की उपशान्ति हुई। राजा ने पुजारियों को पूजा के निमित्त बारह गाँव भेंट किए। राजा ने स्वयं भी चिरकाल पूजा की।

स्वर्ग में से मनुष्य लोक में आए भगवान को ११८१००० वर्ष हुए। उनके नाम का माहात्म्य लोक में अतिशयवंत हैं ऐसे माणिक्य देव श्री आदिनाथ भगवान चिरकालपर्यन्त आपके श्रेय-कल्याणकारी हों।

श्री स्तंभनतीर्थ

पृथ्वी के अन्दर रही हुई जिनकी देदीप्यमान प्रतिमा को श्री अभयदेव सूरि ने प्रगट की वे सर्वप्रभावनासमूह से विराजमान श्री स्तंभन पार्श्वनाथ जयवन्त हों।

पूर्वकाल में जब पाटण में भीम राजा राज्य करता था, उस समय श्री जिनेश्वर सूरि जी भूमंडल में विराजमान थे। उनके पट्ट पर श्री अभयदेव सूरि जगद्विख्यात हुए कि जिनसे खरतर गच्छ प्रतिष्ठा पाया। पूर्व कर्मोदय से उन राजमान्य आचार्य महाराज को कुष्ठ रोग हो गया और शारीरिक शक्ति क्षीण हो जाने पर भी गुजरात के शंभाणक नगर की ओर विहार किया। रोग की बहुलता से अपना आयुष्य अल्प ज्ञात कर मिथ्या दुष्कृत देने के लिए उन्होंने संघ को बुलाया। उसी रात्रि में शासनदेवी ने स्वप्न में आकर कहा—प्रभो! निद्रित हैं या जागृत? सूरिजी ने कहा—व्याधिग्रस्त को निद्रा कहाँ? देवी ने कहा—सूत की इन नौ कोकड़ी को सुलझाइये! गुरु महाराज ने कहा—शक्ति के अभाव में कैसे हो? देवी ने कहा—प्रभो! ऐसा न कहें, अभी तो आप नौ अंगों पर वृत्ति की रचना करेंगे। सूरिजी ने कहा—गण-

धर भगवंतों के ग्रन्थों पर मै विवरण कैसे लिखूँ ? पंगु व्यक्ति कभी मेरु पर्वत पर चढने में कुशल हो सकता है ? देवी ने कहा—जहाँ सन्देह लगे वहाँ मुझे स्मरण करना, मै सीमंधर स्वामी से पूछ कर सभी सन्देह दूर करूँगी ! सूरिजी ने कहा—परन्तु माता, मै रोगग्रस्त व्यक्ति कैसे वृत्ति करूँगा ? देवी ने कहा—ऐसा न कहें, रोगप्रतिकार का उपाय बताती हूँ !—स्तंभनक गाँव में सेढी नामक महानदी है, वहाँ श्री पार्श्वनाथ भगवान की सातिशय प्रतिमा है ! जहाँ कपिला गाय प्रतिदिन दूध झरती है, उसके खुर के नीचे की जमीन खोदने पर प्रभु का मुख दिखाई देगा। उस प्रभु-बिम्ब का आप भावपूर्वक वन्दन करें जिससे शरीर स्वस्थ हो जायगा !

देवी के संकेतानुसार आचार्य महाराज संघसहित स्तम्भनक गाँव की ओर चले। निर्दिष्ट स्थान पर जाकर पार्श्वनाथ भगवान के दर्शन कर वे सोल्लास रोमांचित होकर भक्तिपूर्वक स्तुति करने लगे—"तीन लोक में उत्कृष्ट कल्प-वृक्ष के सदृश, जिनों में धन्वन्तरि के सदृश, जगत के कल्याण के भण्डार और दुरितरूपी हाथी को नाश करने में केशरी सिंह के समान हे नाथ आपकी जय हो ! आपकी आज्ञा तीन लोक में अनुल्लंघनीय है। आप तीन भुवन के स्वामी है, हे स्तम्भनकपुर में विराजमान पार्श्वनाथ जिनेश्वर मेरा कल्याण करो !" इस प्रकार स्तुति करते सोलहवें श्लोक के बाद वह प्रतिमा सर्वाङ्गतः प्रगट हो गई ! सत्तरहवें श्लोक में कहा हैं कि—पार्श्वनाथ भगवान ने कमठ नामक असुर के उपसर्ग सहे। उस समय धरणेन्द्र के फणों पर लगे मणियों के प्रकाश में प्रियंगुलत्ता के, तमालपत्र के व नीलोत्पल कमल के सदृश वर्ण वाले स्तम्भनपुर में प्रत्यक्षीभूत पार्श्वनाथ भगवान आप जयवन्त रहें।

इस प्रकार बत्तीस श्लोकों द्वारा सूरिजो ने भगवान की स्तुति

की। श्री संघ ने महापूजन आदि उत्सव किये। देवी के अनुरोध से अन्तिम दो श्लोक बाद देकर "जय तिहुअण" स्तोत्र की ३० गाथाएँ रखी। आचार्य महाराज तत्काल रोगमुक्त हुए और नवनिर्मित जिनालय में भगवान को स्थापित किया। तत्पश्चात् क्रमशः स्थानांग आदि नौ अंगों पर वृत्तियाँ रचीं। महाराजा भीम ने नव अंगों की प्रामाणिक सटीक प्रतियाँ देखकर तीन लाख रुपये व्यय करके स्वगच्छ-परगच्छ के आचार्यों से प्रतियाँ लिखवा कर प्रचारित की। इस प्रकार उदीयमान आचार्य महाराज ने चिर-काल तक वीरशासन की प्रभावना की।

इस प्रकार अज्ञात आदिकाल वाले भगवन्त इन्द्र, श्रीराम, कृष्ण, धरणेन्द्र और समुद्राधिष्ठायक आदि द्वारा विविध स्थानों में चिरकाल पूजित हुए, वे श्री पार्श्वनाथ (स्तम्भन) संसार से भव्य-जनों का रक्षण करें। कितने ही ऐसा कहते हैं कि—श्री कुंथुनाथ स्वामी से मम्मण व्यवहारी ने पूछा—भगवन्! मै मोक्ष कब प्राप्त करूँगा? स्वामी ने कहा—श्री पार्श्वनाथ के तीर्थ में तुम्हें सिद्धि प्राप्त होगी! उसने यह प्रतिमा निर्माण करवाई थी।

मालवदेश में मंगलपुर नगर के समीप एक भील लोगों की पल्ली थी। वहाँ आगे किसी का बनवाया हुआ एक जिनालय था जिसमें चौथे तीर्थङ्कर श्री अभिनन्दन भगवान की प्रभावशाली प्रतिमा थी। एक बार अकस्मात म्लेच्छ सेना ने आकर जिनायतन का भंग कर डाला और अधिष्ठाता देव के प्रमाद के कारण चैत्य के अलंकारस्वरूप जिन-प्रतिमा के सात टुकड़े कर डाले। यद्यपि भील लोग तत्त्वज्ञान से रहित थे, फिर भी उन्होंने खेदपूर्वक उन सात टुकड़ों को बराबर मिलाकर एक स्थान में रखा।

धारली गाँव से एक वणिक वहाँ प्रतिदिन माल की खरीद-बिक्री करने के लिए आता था। वह श्रावक था इसलिए भोजन

के समय अपने गाँव जाकर ही भोजन करता, क्योंकि उसे जिनेश्वर भगवान की पूजा करने पर ही भोजन करने का नियम था। एक बार पल्लीनिवासी भीलों ने उसे कहा—आपको प्रतिदिन जाने-आने में बडी कठिनाई होती है तो यहीं भोजन व निवास क्यों नहीं कर लेते, क्योंकि हम सब आपके सेवक तुल्य हैं। सेठ ने कहा—देवपूजा किये बिना मैं भोजन नहीं करता इसीलिए घर जाता हूं! और वहाँ पूजा करके भोजन करता हूं! भीलों ने प्रसन्नतापूर्वक कहा—यहाँ भी एक देव हैं! उन्होंने उसे उस सात खण्डों को बराबर मिलाई हुई प्रतिमा बतलाई! सेठ सरल था, उसने शुद्ध आरस पाषाण की अखण्ड प्रतिमा मान कर भक्तिपूर्वक वन्दन किया और पुष्पादि से पूजा करके स्तोत्रों से स्तुति कर प्रतिदिन वहीं भोजन करने लगा।

एक दिन भील लोगों ने उससे कुछ माँगा जिसे न देने पर उन लोगों ने क्रुद्ध होकर जिन-प्रतिमा को खण्डित रूप में पुनः करके कहीं छिपा दिया। पूजा के समय प्रतिमा को न पा कर सेठ बड़ा खिन्न हुआ और उस दिन उसने भोजन नहीं किया, इस प्रकार उसके तीन उपवास हो गए। भीलों ने उसे भोजन न करने का कारण पूछा। सेठ ने कहा—तुम लोग मेरा निश्चय नहीं जानते? मै देव-पूजा किए बिना भोजन नहीं करता चाहे प्राण चले जाँय। भीलो ने कहा—आप हमें गुड़ दें तो हम वह देवप्रतिमा आपको बतावें! सेठ की स्वीकृति पर प्रसन्न होकर भीलों ने उसके सामने ही सातों टुकड़ों को व्यवस्थित लगा कर यथावत् दर्शन कराए। सत्वशील पुण्यात्मा सेठ के चित्त में अत्यन्त खेद हुआ और उसने अभिग्रह ले लिया कि जब तक यह बिम्ब अखण्ड न हो जाय, सर्वथा भोजन नहीं करूँगा! अधिष्ठायक देव ने उसे स्वप्न में कहा—चन्दन के विलेपन द्वारा सातों खण्डों को मिलाने से वे अखण्ड हो जाएँगे! प्रातःकाल सेठ ने वैसा ही किया। इस

प्रकार अभिनन्दन भगवान की प्रतिमा को अखण्डाकार वाली बना कर भील लोगों को गुड़ादि बाँटा। उस प्रतिमा को मनोज्ञ स्थान में विराजमान कर पूजा करने लगा, कुछ दिनों में प्रभु की महिमा सर्वत्र फैली और वह स्थान तीर्थ रूप में प्रसिद्ध हो गया। चारों दिशाओं से संघ आने लगे। प्राग्वाट वंश में मुकुट के समान हालासाह के पुत्र ने वहाँ जिनालय निर्माण कराया। तीर्थ का माहात्म्य सुन कर मालवनरेश भी प्रतिदिन वहाँ पूजा, ध्वजारोप और स्नात्र-महोत्सवादि कराने लगा।

द्वादश उपदेश में रावण की कथा है। जिसमें लिखा है कि वह एक बार अपनी रानी मन्दोदरी के साथ अष्टापद तीर्थ पर आया और चौबीस तीर्थङ्करों की पूजा की। धरणेन्द्र ने उसे अष्टापद तीर्थ का माहात्म्य बतलाया जिसके सन्दर्भ में श्री जिनप्रभसूरिकृत अष्टापदतीर्थ-कल्प की गाथाएँ दी है जिसका अर्थ उपदेशसप्तति में छपा है।

■

एक तीर्थयात्रा विवरण

श्री सारदाय नमो नमः। श्री ऋषभदेव नमः। नीमीवणमी वाहुवल जी 'मूल **कोटनी संख्या**। देहरां देहरी आलिया ४५८ मोटी नानी प्रतिमा २३४७ संख्या जिन गणधर मुनि पगला संख्या ८७५।

● मोटा नाना देहरा देहरी आलिया २३४ सरवाले मली ने प्रतिमानी संख्या ७९७ पगलाँ की संख्या ६५ ए संख्या हाथी पोल वाहरनी छै।

● **अदबद बाबा** को मंदर १ प्रतिमा १ पासे देहरी ३ प्रतिमा ३ एवं देवल ४ प्रतिमा ४।

● **पेमावसी** माँ देवल प्रतिमा पगलां॥ देहरा देहरी ४० प्रतिमा ३८२ पगला ८६ त्रिकाल नमस्कार होज्यो।

● अथ **छीपावसीनि** सख्या लखीयें छें॥ देहरा देहरी १३ प्रतिमा ५२ पगला २ एहो नै नमस्कार होज्यो।

● अथ **खडतरवसीनि** संख्या लख्यते। देहरा देहरी आलिया १०५ प्रतिमा १५०५ पगलां १०८४ ए तिहु टुंकने तिहु काल नमस्कार होज्यो।

[प्रथम आदीश्वर जिनालय में मध्य बैठो पद्मासनस्थ प्रतिमा के दोनों ओर काउसग्गिए खड़े है। वृषभ लांछन है। नीचे। रतनपोल-लिखा है। दूसरी पोलमें दोनो ओर दो हाथी व तीसरी में २ वाघ है। उपरोक्त वर्णन बीच में लिखा हुआ है।]

श्री तीर्थ जात्रा करी तेहनी वगत लखी छै। प्रथम श्री **सिद्धा-**

चल जी नी भमती, ते मद्धे १०८ फरती डेरी छे। अनें भमती मांहि डेरांछे प्रथम सेहश्रकोट जी तथा समोसरण जी तथा अष्टापद जी तथा मेरुपर्वत जी तथा समत सीखर जी तथा नेमनाथ जी डेरो छे, तथा श्री महावीर जी को तथा चोमुख जी की डेरी चोवीस छे, तथा एक रायण नो झाड़ छे, ते हेठलें पगलां श्री ऋषभदेव जी नां छे। पगला नि डेरी २७ वीश छे तथा गणधर नां पगला छे। तथा। सहश्र कुट नां पगलां १००० १० पगलां छे। तेहनें पाशें श्री शान्तिजी को देवल छे तथा दरवाजो पासें साहम सांमांबे डेरां श्री ऋखभदेव जी नां छै।

एक चोमुख जी को देवरो छे एक **जीवत** स्वामी को। एक श्री मंदोर स्वामी जी को छे। तथा एक श्री गोडी पार्श्वनाथ जी का एक श्री अमीझरा पार्श्वनाथ जी को छे तथा दरवाजा पर श्री पुंडरीक गणधर जी को देवल छे। पाशें एक चौबीसी को देवरो छे, एक पचतीर्थी धात की छे।

अथ हवे दरवाजा बाहरें वामादेवो छे तथा दरवाजा बाहरें बभननाथ जी को देवरो छे अनें अजीतनाथ जी अनें श्री शांतिनाथ जी को अनें सहस्त्रफणा पार्श्वनाथ जी छे। तिहांथी छेटे आवत्तां जमणी को रेंशामलीया पार्श्वनाथ जी अनें श्री चिंतामण पार्श्वनाथ जी ओर डेरा १०१५१ छे हवे श्री नेमनाथ जी की चोरी छेते मद्धे भमती छे तेहने बाहरें मोक्ष बारी छे तेहनें बाहरे केसरी चकेसरी छे तेहनें साहमू श्री शांतिनाथ जो को देवरो छे ते साहमा कवड़ यक्ष बेठा छे तेहनें माथे श्री चउमुखी जी नो देरो छे अनें दरवाजा त्रीजा बार हडूमान जो छे तथा खेत्रपाल छे तथा गणेश जी छे तथा वामादेवी के साहमी शासन देवी छे तिहाँ जक्ष नी चोकी छे। [श्री देवकी जी ना ६ पुत्र छे सी पाछे] ॥ तेहने साहमी छत्री छे मुनीश्वर की तिहां थी गउ दो जइयें एतले गुपा गुप्त छे तीहां ते

मध्ये रत्न नी प्रतिमा छे। ते प्रतिमा नी देवता सेवा करे छे तहांथी पखाल वहे छे ते पखाल नूं पाणी कुड मां आवे छे ते कुंड उपरें पगलां छे तीहांथी आगले जाता सिद्धशल्ल तलाव अने पगलां छे तिहांथी आगले जाता सिद्धशल्ला तलाव अने पगलां छे तिहांथी आगलें जाता माडवा नो डूंगर छे ते डूंगर पर श्री अजितनाथ जी शांतिनाथ जी चोमासो रया छे तिहां अनंत साधु सिद्ध थया छे। तिहांथी सिद्धवड़ आवीयें। वड नुँ झाड छे ते हेठल पगल्या छे ते वावड़ी छे तहांथी छेटी नी पायग छे। ·

तेह थी गाउ १ गामछे ताहां थी शेतुंजी नही छे ए गाम ऊपर ऋषभदेव जी ना पगल्या छे। ते ऊपर गाउ १ चोबीसी जन ना पगलां छें ते पासे कुंड छे ते उपर गायो १ दरवजों छों अदव जी जी दरवजों छे। हाथी पोल वारें सूरजकुंड छें तेरनी जोड़ें भेंमकुंड छें भेमकुंड उपर महादेवजी नो डेरूँ छें तेहने पाखतो वाडो छें अदवुद जी ना पावडीया १०८ ते ऊपर देरू तेहनो बाजूए कुंड छें देवी खाडोयर बेठा छें। प्रेमचंद मोदीनी टुक श्री ऋषभदेवजी नुं देरूँ छौ। तेनी भमती म देरी २४ चोबीस तेम देवल सहसफणा पार्श्वनाथजी ना २ सामाला पारसनाथजी नुंछे अमीझर पार्श्वनाथ श्री शांतिनाथजी तेने आगल पगल्या छे श्री जिनां छे ते आगल सिद्धचक्र जी ना पगलां छे आगल दरवाजा बारे गोतमस्वामी ना पगलां छे। ते आगल फूल नी वाड़ी छे ते हेठल कुंड छे ते आगल चौउमुख जि छे ते आगल पांच पांडव रो देवल छे ते पछी सेहेस को देवल छे ते देवल मद्धे नेमनाथ की चोउरी छे ते पछी खडतर वसी छे ते मद्धे देवल रिषभदेवजी नो चोमुख छे तेनी भमती नी देरी ५१ छे ते मद्धे देवल २ संतनाथजी ना छे देवल १ सामलीया पार्श्वनाथजी रो छ देवल १ मंदिर स्वामी रो छे देवल १ अजित-नाथ जी रो छे देवल १ धरमनाथजी रो छे ते पासे चोरासी गणधर ना पगला छे ते पासे दादाजी जिनचंदसूर दादा कुशलसूर ना

पगुला छे ते सामे शीतलनाथजी रो देरो छे ते आगल चउमुखजी को देरो छे ते आगल दरवाजो छे दरवाजा उपर पुंडरीकजी रो देरो छे ते हेठे चक्केसरी माता छे दरवाजा मद्धे खेत्रपाल छे दरवाजा सामे चोमुख छे ते पासे जालि मयाली उबीयाली तिहां जक्ष नी चोकि छे ते सामां मरुदेवी माताना देवल छे ते पासे संतिनाथ जो रो देवल छे ते नी जमगी बाजु सीपावसी छे ते मद्धे देवल रीषभदेव रो छे देवली नेमनाथजी रो छे देवल १ शांतिनाथजी रो छे भमती मां देरो ७ ते मद्धे पगला नि छत्रि १ शांतिनाथजी का देरा आगले दरवाजो १ ते सामी पीर की दरघा तेनो नीकास की वाडी री हेठे जक्षनी चोकी ते हेठे हडुमान की चोकी छत्री मां फर हट्ठे पार्श्वनाथजी रा पगल्या ते हेठे मुनीसर का पगल्या ते पासे कुंड, कुंड के सामने तलाई कुंड के हट्ठे पांच पांड की छत्री ते हेट्ठे साधुजी की छत्री ते हेठे श्रावक तपछी की छत्री ते सामने सरीजी की टुक ते मद्धे कुंड १ ते ऊपर देरी ४ पार्श्वनाथ रीषभदेव जी रा पगलां छे ते सामां जी रा पगलां ऊपर देरी छे ते सामा माणभद्र जी रो चबूतरो छे ते हेट्ठे पार्श्वनाथजी रा पगला ते उपर देरी छे ते पास कुंड छे ते हेठे मुनीश्वर ना पगल्यां छे ते उपर देरी छे ते हट्ठ कुडुर पार्श्वनाथ नां पगला ऊपर देरी छे ते हेठे हीगलाज माता नो थानक छे ते हेठे कुंड छे तिहां मुनीसर ना पगला ते ऊपर देरी छे ते सामी धर्मशाला छे ते ऊपर नेमनाथ जी रू पगल्यां छे ते उपर देरी छे ते हेठे कुंड छे कुंड के पा धर्मशाला छे ते सामने खेत्रपाल छे ते हेट्टे रषबदेवजी रू पगल्या छे उपर देरी छे ते सामनां पार्श्वनाथजी रा पगल्या छे ते उपर देरी छे ते पासे गौतमस्वामी रू पगल्या छें उपर देरी छे ते हेठे गौड़ी पार्श्वनाथजी रा पगल्या ते उपर देरी छे ते हेठे वर वाड़ी ते सामने वड़ वड़ निचे पोयानि की ते सामनिं मुनीसर का पगल्या ते ऊपर देरी ते पासे वाड़ी मां आसो पालव ना वृक्ष तिहां साधु ल्योच करै पंच महाव्रत उचरै जात्रु

दरशन करी उतर सरवत्त लेवै आर पाणी करै तिहांथी भूषण सानी वावड़ी है ते उपर ९ साधुनी देरी छे ते मध्ये पगल्या छे ते हेठे देरी पांच मध्ये पगल्या छे ते पास वाड़ी मध्ये माहादेवजी को देवल छें सामे वावड़ी छे मारग में ते सामने **दादाजी** की खत्री छे ते पासे कुओ छे कुआ पास फुलवाड़ी छे ते हेट्ठ तरकाई छे माथे दो देरी छे ते माथे गाम पालीताणु छे ते मद्धे रीखवदेवजी रो देवल १ सीखरबद्ध छे। ते पासे **उपासरो** छे विजेदेवसूरि नो मद्धे माणभद्रजि छे। बिजोषड्तर नो उपासरो छे, त्रीजो अंचलगछ ना छे। **आणंदजी कल्याणजी** नो भंडार छे। वीजु धरमशाला ५ वरंडो १ संघ उतरवाने पांजरापोल १ सदावृत ८।

ऐतनी **जात्रा धर्मचंदजी करमचंदजी मुक्षदावादका** संघ की सादे आआ सा **सीवलाल** जात्रा करवा रहा, चउमुखजी को काम बनायो, महीना सवा चार रहा, जात्रा १२१ करी ने **उपडा। मवे महावीर** की जातरा करवा गया। देवल १ महावीरजी को भोआरा मद्धे उपर पदमावती देवी, पछे **गाम उनो** तिहां देवरा ५ रखवदेवजी की अमीझरा पार्श्वनाथजी को १ संतनाथजी को १ नेमनाथजी को १ सीताउनाथजी को तिहांथी कोस १ आचारज उपाध्यानी देरी ७ मद्धे पगल्या छे। तिहांथी गाउ १ गाम छे त्यां अझारा पार्श्वनाथजी को देवल छे, गाम मध्ये सिखरवद्ध त्यांथी गाउ १ गाम छे त्याहां देवलचिंतामणि पार्श्वनाथजी छे। त्याहां थी गाउ २ **दरियाउ** छे ते मध्ये **दीवसेरे** छे। ते मध्ये देवल त्रण छे। देवल १ नवखंडा पार्श्वनाथजी को १ नेमनाथजी को १ सुपार्श्वनाथजी १ महावीर स्वामी छे।

त्यांथी वाण में बैठा सा **वीरचंद** बेसाड्या, पोताना भाई नी वउ साथे, बेठी ने पाट्ण उतरया। **पाटण** मध्ये ओली करी, त्यां देवल १० छे ऋषभदेवजी को अजीतनाथजी को महावीरजी को

संभवनाथजी को चन्द्रप्रभुजी को दादा पार्श्वनाथजी को सांतनाथ जी को नेमना (थ) जी को सासनदेवी को राजन देवी को त्यांथी **वेरावल** बंदीर छे ते मध्ये देवल त्रण छे १ चिंतामणी पार्श्व-नाथजी को सीतलनाथजी को एक चंद्राप्रभु जी को त्यांथी गाउ सात **चोरवाड़** गाम छे त्यां चिंतामण पार्श्वनाथजी को देवल छे सीखरबधु त्यांथी गउ ४ **मांगरोल** बदीर छे। ते मध्ये डेरा ४ छे नवपात्रव पार्श्वनाथजी एक चिन्तामण पार्श्र्वनाथजी एक सुपार्श्र्वनाथजी एक चौमुख जी छे। उपर, त्यांथी गउ १० **बनथली** छे डेरो १ सीखरबद्ध छे, मनमोहन पार्श्र्वनाथजी छे। त्यांथी गउ ५, **जीर्णगढ** गाम छे, ते गाम हेठलें देवल २ छे। १ नेमनाथ जी, १ चोमुखजी ते उपर गउ ३, चढ़ीये त्यार **गिरनार** जी आवे त्यां नेमनाथ जी का चरण हे, एक वावड़ी हे। त्यांथी गउ २ उपर चढीये, त्यां दरवाजे जक्ष जक्षणी नी चोकी छे, ते आगलें सीपाई की डोढी है, ते आगलें **रतनपोल है** तेमां नेमनाथ जी के देरो छे, भमती छे केसरी चकेसरी देवी छे, चोवीसी छे, सिद्धचक्र जी ना पगला छे, सासनदेवी छे ति आगले अदबद जी को डेरो छे, सामने चौरासी गणधर का पगला छे, ते अगले क्षेमंधर स्वामी को देवल छे, तीन अष्टापद जी को देवल छे, बाहूबल जी की देरो, जीवत स्वामी जी को देरो, रिषभनाथ जी को देरो, अमीझरा पार्श्वनाथ जी को देरो छे। गोड़ी पार्श्वनाथ जी को देवल छे, संतनाथ जी को २ बंभनाथ जी को छे, चोमुख जी नेमी मनमी धर्मनाथ जी को राजुल की गुफा, सामलिया पार्श्व-नाथ जी को सहस्त्र फण। पार्श्वनाथ जी को, सुधर्मा स्वामी, मेरु पर्वत, सहस्त्र कोट, त्यांथो सेहसा वन मध्ये दीक्षा कल्याणक, केवल कल्याणक पगला, ते ऊपर छत्री छे, हेठल कुंड छे, तेमां नीझरण आवे छे, ते ऊपर गउमुखी छे, त्यां गणधर जी का पगलां छे, हेठें हनुमान छे, ऊपर चढ्यां मां अम्बिका को देवल छे, ने

आगल चाल्यां त्यां मुनीसर का पगला छे, खेत्रपाल छे। ते आगल गउ १ पांचमी टुंक छे। पाँच हजार त्रण से सतरे पावढोया छे, ते ऊपरे पांचमी टुंक छे त्यां पगलां छे मोक्षकल्याणक थयुं छे।

तिहांथी गाउ ७, **धाराजि** गाम छे। देरा त्रण एक ऊपर छे ऋषभदेव नो १, शांतिनाथनो १, सुपार्श्वनाथ चोमक जि, तिहांथी ७, गाऊ **अमरेली** देरी १, ऋषभदेव को, तिहांथी १८, गाऊ **नवुंनगर** देरा ९, ऋषभदेवजो चन्द्रप्रभु जि संतीनाथ जि सामलीया पार्श्वनाथ जी संतिनाथ जी वासपूज जी नेमनाथ जी सीतलनाथ जी ऊपर गोड़ी पार्श्वनाथ जी ८। नवानगर थकि गाऊ १२ गांम **भाड़व्रण** देवल २, गोड़ी पार्श्वनाथ जी सतिनाथ जि, वासे गाम **पोरबंदर** गाउ १२ तेमें देरा ३, संतिनाथ को रिषभदेव जो चन्द्रप्रभु जि उपासरा मध्ये पद्मप्रभु जी वासुपूज्य जी, तिहसे विरचन्द्र जी का बाण में चडा, दिन ४ मां उतरा, सेर **मुंबाई बन्दर** देवरा ३, गोड़ि पार्श्वनाथ जो, संतीनाथ जी का २।

तिहांथी चाल्या गांम **पालड़ी** मद्धे देवल १, चन्दाप्रभु जी को, तिहांथी गांम १, **द्धनोइयो** ते मद्धे देरो १, चंतामण पास को, तिहा थो**सूरत** आव्या। ते मद्धे देवल १, संखेसर जी को ते मद्धे भमति ते ऊपर माहावीर जी का देवल २, अजितनाथ जी का देवल ३, गौड़ी पारसनाथ जी का देवल ३ फेर पार्श्वनाथ जी का ३, मन मोहननाथ जी का देवल १, अनंतनाथ जी का देवल १, अनंतनाथ जी का देवल १, श्री रीहंस रो देवल १, समतिनाथ रो देवल १, पद्मप्रभु रो देवल १, अभिनंदन जी रो देवल १, सुपार्श्वनाथ जी रो देवल १, संतनाथ जी को देवल ७, संभवनाथ जी का देवल २, बंभवनाथ जी का देवरा २, धरमनाथ जी का देवरा २, वासपूज जी का देवरा ३, ऋषभदेव जी का देवरा छे ३, सहसफणा पार्श्वनाथ जी का देवल २, मुनिसुव्रत जी का २, वीलोकि

पार्श्वनाथ जी का देवल १, दादा पार्श्वनाथ जी को **दादाजी का पगल्यां** उपर देरी जिनचन्दसूर, कुसलगुर थूलभद्र। फेर **कतार गाम** देवरो पार्श्वनाथ जी को शिखरबद्ध, तिहांथीं तापीं पार **गाम रानेर** देवरां ४ रिखबदेव जी रा २, संतिनाथ जी रो १, नेमनाथ जी रो अभिनन्दन जी का देवल २।

तिहाति गाम **भरुअच्च** आव्या, गाउ १०, तिहां देवरा ९ शंखेसर जी को १, उपर गोरी पार्श्वनाथ जी को, हेठे सामलीआ पार्श्वनाथ को, ते उपर मनमोहन पार्श्वनाथ जी को एक रीखव-देव जी को पुरा में ४, सेर मां रीखवदेव जी रो १, सांतिनाथ जी रो १, पार्श्वनाथजी रो १, सैसफणा पार्श्वनाथ जी रो, तिहां से **मीयागाम** तीहां देवरा ४, शांतिनाथ जि रा २, रीखभदेवजी रो १, चन्दाप्रभुजी चोवीसी भांयरा मां, तिहां से **पाद्वरो** ते मद्धे देवल २, सांतिनाथ जी को १, चन्दाप्रभुजी रो १, तिहांथी चाल्या गाम **पदसरोत** मद्धे देवल २ संतनाथ जी रा, तिहा से **बरोदडो** ते मद्धे देवरा १३, दादा पार्श्वनाथ को १, उपर समेतशिखर जी को चौमुख धातु का संतनाथ जी का २, रोखभ देवल १, गोरी पार्श्वनाथ जी को १, मन मनोर पार्श्वनाथ रो १, सहसफणा पार्श्वनाथ जी रो, देवल १, चिंतामण पार्श्वनाथ जी रा देवल २, संभवनाथ रो १. चन्द्राप्रभु जी रो १, वासपूज जी रो १, सीतल नाथ जि रा १, तिहांथी गाऊ १, गाऊ ३ **नाथपुरो** तिहां देवरा २ संतनाथ जी का १, करला पार्श्वनाथ जी रो १, तिहांथी गाउ ९, **डाभोई** तिहां देवरा ९, वेदुका पार्श्वनाथ जी १, संतनाथ जी को १, अजितनाथ जी का २, रखवदेव जी का १, गोरी पार्श्व-नाथ जी का १, सामलिया पार्श्वनाथ जी को १, शीतलनाथ जी का १, `चोउमुखजि धातु को १, तिहांथी चाल्या गाउ गाम १, पर **बादर** तिहां देवरा ७, सांतनाथ जी रो १, रखबदेव जी रो १,

चन्द्राप्रभु जी रो १, वासपूज जी को १, मुनिसुव्रत स्वामी को १, सुपार्श्वनाथ जी को १, सहमफणा पार्श्वनाथ जी को १, **गाम नंदनां** वीदर मां देवरा ४, ऋषभदेव जी का २, नेमनाथ जी का १, शातनाथ जी का १, गाम १ पूरो तेमा देवरा २, गोड़ी पार्श्वनाथ जी को ऋषभदेव जी को, सेर **खंभात** देवरा ६५ छे, तेनी पूजा करी, सर्वमली ८४ छे। थंभन पार्श्वनाथ मुनीसुव्रत, पदमप्रभु, खेरा पार्श्वनाथजी, चोमुखजी, कंकीन सुपार्श्वनाथ, रत्न पार्श्वनाथ, संखेश्वरा पार्श्वनाथ, अठारमा अरनाथ जी का २, सहसफणा-पार्श्वनाथ जी का २, देवरा कुंथनाथ जी का ४, मल्लिनाथ नू १, सम्भवनाथ जी को २, सीतलनाथना ९, ऋषभदेव जी का ७, मुनीसुव्रत जी का वे चन्द्रप्रभु जी का ५, सुमतिनाथ जी का ३, सामलीया पार्श्वनाथ जी का २, नेमनाथ जी को १, सुमतिनाथ जी का २, चामुख महावीर जी को १, हसनाथ जी को १, वासपूज जी को १, वंभननाथ जी को १, धर्मनाथ जी को १, मन्दीर स्वामी का १, नामीनाथ को १, सामलीया चन्तामण ३, जीराउला पार्श्वनाथ जी को १, अभिनन्दन जी को २, अनन्तनाथ २, गांम सूनेद मां देवरा ४, शन्तनाथ जी को सहसफणा पार्श्वनाथ जी को सामलीया पार्श्वनाथ जी को श्रीयांस जी को। गांम **सीयोर** मां देवरो १, वासपूज जी को। गाम १, **बीरूँ** तेमां कुन्थनाथ जी को देवरो १, गाम १, **सुटनगर** में देहरा ३, अजितनाथ जी को १, ऋषभदेव जी का २, गांम **सुराई** चन्द्राप्रभु जी को देहरी १।

गाम १ **सोपर** जीरावला पार्श्वनाथ जी रो देहरो १, गाम १, **बकायण** सम्भवनाथ जी रो देहरो, गाम १, **साचोर**, तेहमें सन्तनाथ जी रा देहरा २, महावीर जी ना देहरा ३ पारसनाथ जी रो १ गाम १ **मरेट** नवाव की, तेहमे देहरा १८, ऋषभदेव जी को १, सन्तनाथ जी का २, अजितनाथ जी का १, सम्भवनाथ जी को १, अभिनन्दन जी को १, सुमतिनाथ जी को १, पदमप्रभु

जी को १, सुपार्श्वनाथ जी को १, चन्दाप्रभु जी को २, सीतलनाथ जी का २, नेमनाथ जी को १, वासपूज जी को १, विमलनाथ जी का २, गोड़ी पार्श्वनाथ जी का १, सेहर १, **अहमदाबाद** गुजरात-तिण में देहरा १२१, ऋषभदेव जी का १६, देहरा सम्भवनाथ जी का ५, अजितनाथ जी का ५, धर्मनाथ जी का २, पञ्चासर पार्श्वनाथ जी को १, जीरावला पार्श्वनाथ जी को १, सांतनाथ जी का देहरा २५, सुवधनाथ जी रा देहरा ५, सीतलनाथ जी रा ४, गौड़ी पार्श्वनाथ जो का ३, महावोर जी का ७, सहसफणा पार्श्वनाथ जी का ५, संखेश्वरा जी को १, सीमंधर जी को १, चिंतामण पार्श्वनाथ जी का ३, नाकोड़ा पार्श्वनाथ जी को १, जगचिंतामणि पार्श्वनाथ १, मुनिसुव्रत पार्श्वनाथ २, रतन् पार्श्वनाथ २, चन्दाप्रभु जी का ४, चिंतामणि पार्श्वनाथ जी का ५, सांवलिया पार्श्वनाथ का ३, डण्डा पार्श्वनाथ का १, कोका पार्श्वनाथ जी को १, जीरावला पार्श्वनाथ जी का २, चोमुख जी ३, सीमंधर स्वामी १, नेमनाथ जी को १, अमरनाथ जी को १, विमलनाथ जी का ३, पदमप्रभू जी का ३, मुनिसुव्रत जी को १, कल्याण पार्श्वनाथ जी का २, जमले देहरा १२१, **अहमदाबाद** में छै।

गाम १, **मेसाणा** तिण में देहरा १०, नेमनाथ जी को १, पार्श्वनाथ जी को १, चन्दाप्रभु जी का १, ऋषभदेव जी का २, सांतनाथ जी को १, सीतलनाथ जी को १, चोमुख जी को १, नन्दीश्वर द्वीप को १, **दादाजी** का पादुका १। तिहांथी गांम १ **बटादरो** ते मद्धे देवल १, जीरावला पार्श्वनाथ जी रो तिहांथी गाम **सोजतरा**, ते मद्धे देवल ३, सन्तनाथजी को १, अजितनाथ जी को १, महावीर जी को १, तिहां थी आदेसर जी का पादुका पद्मावती माता।

तिहाँ थी गाम **मातर** ते मद्धे साचादेव देवरा चार ४, सुमति-

नाथ जी पांचमा चारां मां संतिनाथ चन्दाप्रभु सामलिया पार्श्वनाथ तिहा थी गाम **खेडा**, ते मद्धे देवरा १०, पलवीया पार्श्वनाथ को देवल १, अमीझरा पार्श्वनाथ जी को १, भोंअरा मां चन्दाप्रभु जी चोमुख जी १, अरनाथ जी १, समोसरण को दरा १, अष्टापद जी को देवल १, संभवनाथ जी को देवल १, सन्तनाथ जी को देवली परा मां देवल ऋषभदेव जी को ।

तिहाँ से **ग्राम पाटण** मद्धे देवल ११, सहसकोट जी १, सहस-फणा पार्श्वनाथ जी का देवल २, ऋषभदेव जी का देवल ९, मेरु-पर्वत १, अष्टापद जी १, समोशरण १, महावीर जी २, सुपार्श्व-नाथ का २, चन्दाप्रभु जी का ३, चिन्तामणि पार्श्वनाथ जी का ७, पञ्चासरा जी को १, भमत्ति मुनीसर को १, अजितनाथ जी का देवल ४, शम्भुनाथ जी ३, गोरी पार्श्वनाथ जी २, वाडि पार्श्वनाथ जी को चोमुख १, नारगा पार्श्वनाथ जी को १, वासपूज्य जी का २, मन्दर स्वामी को १, संखेश्वर पार्श्वनाथ जो को कोका पार्श्वनाथ जी को १, जिरावला पार्श्वनाथ जी को १, अभिनन्दन जी को २, सुमतिनाथ जी को २, सुवधिनाथ जी को १, शीतलनाथ जी को ३, कुन्थुनाथ जी को १, नेमनाथ जी को १, नमिनाथ जी को १, मल्लिनाथ जी को १, सन्तिनाथ जी को ९, मुनि सुव्रत जी का २, धरमनाथ जी का २, विमलनाथ जी का २, अनन्तनाथ जी का १, पद्मचन्द्रप्रभु जी को ३, रतनपार्श्वनाथ जी का २, कल्याण पार्श्वनाथ १, मानमोहन पार्श्वनाथजी को १, भांडमोहन पार्श्वनाथजी को १, मुनि पार्श्वनाथ जी को १, भाद्रवा पार्श्वनाथ जी १, वास-पूज्य जी का १, टीका पार्श्वनाथ जी को १, सन्तिनाथजी को २।

तिहांति चाल्या गाउ ५, **ग्राम भटेवा** मद्धे देवल २, भटेरा पारापार्श्वनाथ जी रो १, ऋषभदेव जी उपर ।

तिहांथी **वीसनगर** आव्या ते मद्धे देवरा ४, कल्याण पार्श्वनाथ

जी को १, ते ऊपर सहसफणा पार्श्वनाथ जी, तीसरे मालगोड़ी पार्श्वनाथ जी तिहां से पुर ७ में शांतिनाथ जी, तिहां से चाटक गाउ ३, गाम **बड़नगर** ते मद्धे देवरा ६, ऋषभदेव जी रा २, महावीर जी का १, कुन्थुनाथ ज़ी का १, सहसफणा पार्श्वनाथ जी का १, ते सामा पवप्रमेश्री १, तिहां थी चाल्या गाउ ७, गाम **श्रीपुर** मद्धे देवल १, मुनि सुव्रत वीसमा को, तिहां थी चाल्या गाउ ७, गाम **तारंगाजी** ने मद्धे देवल ७, धर्मशाला २, कुंड २, तालाब १, देवल १, अजितनाथ जी को सहसकोट १, मेरु पर्वत १, समवशरण १, अष्टापद जी १, नन्दीश्वर बावन चोमुख गिरवर जी का पगल्या, तिहां दस हजार साधु समोसर्या, चोरासी गणधर का पगल्या, चोमुख। शान्तिनाथ जी को देवल १, सामलिया पार्श्वनाथ जी १, शासनदेवी १, आचारज उपाध्याय ता पगल्या जक्षदेवी की चोकी मुनीसर की टकरी ते ऊपर देरी छे मध्ये पगल्या छे, अनन्ता साधु सिद्धी गया। हेठे हड़ुमान जी छे।

तिहां से गाउ वारे गाम १, **जसोरात** मद्धे देवल १ सन्तिनाथ जी को, तिहां से गाउ ३ गा **पालाणपुर** सेर १ ते मद्धे देवल ८ पालविया पारसनाथ जी को, ऋषभदेव जी को २, भमत्ति माँ गवड़ी पारसनाथ जी को १, शांतिनाथ जी को ३, सम्भवनाथ जी को १, नेमनाथ जी को १, महालक्ष्मी को १, तिहांथी चाल्या गाम **आबुजी** आवया ते मद्धे देवल १३, ऋषभदेव जी का ३, नेमनाथ जी को १, भमति माँ मुनिसुव्रत स्वामी को देवल १, तहाँ चौबीसी है। पार्श्वनाथ जी का चौमुख ३, तीजे खण्ड केसरी चकेसरी शासनदेवी चेतरपाल १, देवरानी-जेठानी गोखला २, जीके ऊपर चौमुख २, मिडल ऊपर देवल १, सन्तनाथ जी को नेमनाथ जी की भमति माँ १२, पातशाह सामलिया पारसनाथ जी को चौमुख दरवाजा बाहर क्षेत्रपाल से हेठै नागजी दूदमजी ते

सामने **विमलशाह** पोतानो सर्व परिवार लेई ऊभा छैः। खजानों समा साथै धर्मशाला मा छः, ते सामे अजितनाथ जी को डेरो छः, ते सामे सन्तनाथ जी को देरो छः। ते ऊपर सामलिया पारसनाथ जी रो देवल, ते ऊपर सिद्धाचल जी की चौवीसी, दरवाजा ४, धर्मशाला ४, फूल की बाड़ी कुण्ड १, देह (च) हुम्बड़ को १।

तिहाँ से चाल्या गौउ तीन **अचलगढ़**—तिहाँ देवरा ७, हेठे चौमुख जी १, नेमनाथ जी १, पारसनाथ जी को १, कुन्थुनाथ जी को १, ऋषभदेव जी को १, फिर हेठे गाम सामने सन्तनाथ जी को देरो १, गाम हेठे कुंड १ धीनो, चाडाबे घी पी गया। जरणना चौमुख जी कंचन का, ते ऊपर चौमुख जी रो दोहरो बन्यौ छः। तिसे गाऊ दो महावीर जी देरो १ गाम भा छः।

तिहाँ से गाम **सिरोई** गाऊ २५ ते मद्धे देवल १४, देवरा जिरावला पारसनाथ जी को १ ऋषभदेव जी का चौमुख सुधा २ अचल पारसनाथ को १ मुनि सुव्रत को १ नेमनाथ जी को १ संभवनाथ जी को १, चिन्तामण पारसनाथ जी को १, शीतलनाथ जी को १ चन्द्रप्रभु जी को १ नन्दीसरद्वीपा १ महावीर जी १ श्रेयांसनाथ जी १, गोड़ी पारसनाथ जी १ शान्तिनाथ जी को।

तिहाँथि चाल्य गाम गऊ ४०, **बरकाना जी** देवरो १, **बरकाना**-पारसनाथ जी का १, तीन मति ५२ देरी, सामि चौवीसी, बाहर जागदेव नो कुंड केसर को हेठे कुंड १, धर्मशाला २, दरवाजा बार।

तिहाँ से गाम **सादरी** गाऊ १२ ते मद्धे देवरो १, शान्तिनाथ जी को भमति देवरो १, ऋषभदेव जी १।

तिहाँ से गऊ ३, **राणपुर** भछे देवल १, मद्धे ऋषभदेव जी ना चौमुख ३, तीसरा माल तांई, ते हेठे महावीर जी, समोशरण जी मोक्ष बसि सांवलिया पारसनाथ, नेमनाथ जी, भुवॅरा १४, अने छः ८४, मेरु पर्वत, नन्दीसरद्वीप सिद्धचक्र ८४, गधरना-

पगला, शेषफणा पारसनाथ जी, ते मा थम्भ ८४, ते मा थम्भ बे लाख ना बे तिने साहमां **धनौ पोरवाड़** हाथ जोड़ि **उभा** छैः सम्मेद-शिखर जी धरकोट स्वर्ग पाताल मृत्युलोक को छैः अष्टापद जी, गरबर जी, क्षेत्रपाल जी, माता भवानी, २९ तामा छैः। कोठी १, सोना रूपा की भरी तीन बार लुटाई सुपना १४, नो आकार छै। मुरादेवी माता धर्मशाला १, दरवाजा बारह दरवाजा ४ छैः। कुंड १ मंडल ८, अजीतनाथ जी को, गौड़ि पारसनाथ जी, वासपूज जी, चौमुख जी, सहसकूट, सहसदेव, णिद्धाचल जी, **दादाजी का** पगला, जमले सर्व मिली ४९, दर्शन करया छैः।

तिहाँ थी चाल्या **नंडालि मा** देरा ५, सन्तनाथ जी, पद्मप्रभु जी, नेमनाथ जी, जगवाल पारसनाथ जी, शीतलनाथ। **नाडलाइ** मा देरा ११ छैः ऋषभदेव जी ना देरा २, १, देवरो अपासरा मा अजीतनाथ जी को सुपार्श्वनाथ जी ऊपर जादवा जी को वासपूज जी को नेमनाथ जी को।

तिहाँ थी गाऊ ३, **धानोरा** छै ते माय देवरा ७, छै—गौड़ि पारसनाथ, ऋषभनाथ जी, धर्मनाथ जी, कुन्थुनाथ जी, देरासर १, उपासरा मा जिरावला पारसनाथ। तिहाँथि गाम **टालिऊ** ७, ते मद्धे देवल १, सन्तनाथ जी रो। तिहाँ मे गऊ ५ **हिलोद**—ते मद्धे देवल ५, उपासरामा देवल १, ऋषभदेव जी रो १, शान्तिनाथ जी रो १, पारसनाथ जी को १, गौड़ी पारसनाथ जी को १।

तिहाँ से १ उदयपुर गऊ ७, ते मद्धे देवल २४, ऋषभदेव जी रा ४, शेषफना पारसनाथ जी रा ?, गौड़ी पारसनाथ रा २, शीतलनाथ जी का ३, चंदाप्रभु जी का ३, सामलिया पारसनाथ जी का १, सुपार्श्वनाथ जी का १, दादा पारसनाथ जी का १, पद्मप्रभु जी को १, सन्तनाथ जी को २, चौमुख जो २, पारसनाथ जी को। तिहाँ से **पुरा** में देवरा २, सन्तनाथ जी को १, पदमनाथ जी को १।

तिहाँ से २, **सिहोर**—तिहाँ देवल ३, ऋषभदेव जी रो १, सन्तनाथ जी रो १, नागेसर जी रो देरी। तिहाँ से गऊ १८, गाम **धुलेव जी**—तिहाँ देवल १, केसरियानाथ जी, ऋषभदेव जी, भमति १, ते मद्धे नेमनाथ जी, सन्तनाथ जी, शासनदेवी १, मानभद्र जी, महाराज, सामे ८४, गणधरना पगल्या, धर्मशाला ३, बावड़ी १।

तिहांथि गाऊ ७, **डूंगरपुर** छै ते मद्धे डेरा ४, छैः ऋषभदेव जी रो १, कल्याण पारसनाथ जी, चिन्तामन, पारसनाथ जी को ३, सामलिया पारसनाथ जी को। तिहाँथि गाम १, **सरडार**, देवरो १, ऋषभदेव जी को। तिहाँथी गाम १, **सपदी** सन्तनाथ जी को देवरो १, गाम १, **अपेनगर** देवरो १, महावीर जी को, तिहांथि गाम **बीजापुर** मा देवरा ७, ऋषभदेव जी को चौमुख जी असनाथ जी, चिन्तामन पारसनाथ, नेमनाथ पदमावती को गाम १, **अटवाड़ो** देवरो १, शान्तिनाथ जी को गाम १, **बआन** ऋषभ-देव जी को १।

तिहाँमि गाम १ **वर्द्धंज्यो** (वदरज्यो) देवल १, संभवनाथ का, तिहाँथि गाम १, **रतनपुर** ते मद्धे देवल १, ऋषभदेव जी को, तियाथि गाम १, **सुरो** ते मद्धे देवल १, सन्तनाथ जी को, गाम १, **बरावन** देवरो १, ऋषभदेव जी को, गाम १, **पाटरी** देरो १, शान्तिनाथ जी को गाम **बढ़वान** देरो १ सन्तनाथ जी को, गाम १ **दामरो** ते मद्धे देरो १, ऋषभदेव जी रो तिहाँ से गाम १, **पंचासरा** ते मद्धे देवल १, महावीर जी को, तिहाँ से शहर १, गाँऊ **राधनपुर** ते मद्धे देवल १८, अजीतनाथ जी को २, चिन्ता-मणि जी को २, प.रसनाथ.जी को १, ऋषभदेव जी का २, सन्त-नाथ जी ३, पारसनाथ जी का २, महावीर जी का २, सामलिया पारसनाथ जी को १, शैषफणा पारसनाथ जी को १, वासपूज जी को १, धर्मनाथ जी को चौमुखीड़िया पारासनाथ जी को १, ऋषभ-

देव जी को चौमुख **भूंरा** मा धर्मनाथ जी १, तियासे गाम **मोरवाड़ो** सन्तनाथ जी को देवल १।

तिहांसे **संघपलो** संघवीनाथु यात्राकरि, ७ संघ १, **पाटन** को गाड़ी ३५०, संघ १, **अहमदाबाद** को गाड़ी २५० संघ १, **पलि** को गाड़ी ६०, संघ १ **राधनपुर** को गाड़ी १५०, संघ १ **बीसनगर** को गाड़ी २७, संघ १ **पालनपुर** गाड़ी १२५. संघ १ बीजापुर को गाड़ी ४६, संघ १ **इडर** गाड़ी ६०, संघ १ **सूरत** को गाड़ी ८० संघ १ **भावनगर** गाड़ी १५, संघ १ बड़नगर नो गाड़ी २१, संघ १ **बड़ोदरा**नो गाड़ी ७, संघ १ एकाखंमातको गाड़ी ५५, संघ १ **मांडवी** को गाड़ी ९००, श्री पूज्य **तपेगच्छ** को ठानु २५० (२॥) साथै, संघ १ **अजमेर** को गाड़ी १५०, **खरतरगच्छना** ठाणा ३५ संवेगी १७, संघ १ **समि**को गाड़ी ५०, संघ सर्वे श्रावक श्राविका साधू साध्वी मलीने संघ यात्रा ७१००० ग्राम मोरवाड़े **बरखड़ी** हेठ यात्राकरि छैः। संघ बीजो गाम **भांडिविनो** संगती पानाचन्द कच्छघुजये गाड़ी ५५० घोडा १०० नगाहा निशान समेत। संघ १ राघन-पुर को गाड़ी ७५ संघ १ **पाटन** को गाड़ी ६०, संघ १ **बीसल**नगर गाड़ी ७, संघ १ समिको गाड़ी १७ संघ १ गामड़ा सर्वेगाड़ी ४०० साधूका था चाला **कीर्तिविजय लक्ष्मीविजय** रूपविजय आसकरण जी कुॅवर विजय यात्रा ७ **बरखड़ी** यात्रा सर्वमलि हजार पन्द्रह १५००० यात्रा करिछे तिहांथि गाँव **घारसों** देवरो १ ते मद्धे धातुनो चौबीस सात, गाँव १ **काप्लमा** पारसनाथ थम्म ८४ तियासे गाम १ **पालि** ते मद्धे देवल ४ नौलखा पारसनाथ जी को १, शान्तिनाथ जी सुपार्श्वनाथ जी १ गौड़िपारसनाथ जी को १, तिहांसे गाँव १, **फलौदी** पारसनाथ जी को देवल १ धर्मशाला ४ तिहांसे शहर १ **मेड़तो** देवरो १८ ऋषभदेवजीरा २ शान्तिनाथजीरा ३ चिन्तामणि पारसनाथजी २ गौड़ि पारसनाथ जी को १ पदमप्रभुजी १ साव-लिया पारसनाथ जी का २ शैषफणा पारसनाथजी का २ महावीर

स्वामी को व्रीसवां मुनिसुव्रत स्वामी को १, नेमनाथ जी का १। तिहांसे गाम १, किशनगढ़ ते मद्धे देवल १ ते मधे चिन्तामणि पारसनाथ जी गाम १, **जांगानेर** देवल २ चंद्राप्रभु जी १ महावीर जी १ **दादाजी** की छत्री १, धर्मशाला ३। तियांथि **सवाई जयपुर** देवरा २ सुपार्श्वनाथ जी को १ सुमतिनाथ जी को १ मून (मोहन) वाड़ी १ ऋषभदेवजी रा पगलया छैः।

श्री **भावनगर** का देहरा ४ ऋषभदेव जी को १ जिण में बिम्व १४२, दुजो देहरो कुंथनाथ जी को जिनमें विव ६२, तीजी देहरो शान्तिनाथ जी को जिण में बिम्ब ५८, चोथो देहरो गौड़ी पार्श्व-नाथ जी को जिण में बिब २६ **गोगा** विन्दर में देहरा ४ नवखंडा-पार्‍स्मनाथ जी को देहरो १ तिण में विव ७३, शान्तनाथ जी को देहरो दुजो तिण में बिव ३३, तीजो देहरो चंद्रप्रभु जी को तिण में बिव २१, चोथो देहरो जीरावला पारसनाथ जी को बिंव ३१।

तलाजो गांव तिण में देहरा ३ सावला पारसनाथ जो रो देहरो १ तिण में विंव ३४ उपर चोमुख जी देहरो १ बिम्व ८, उपासरा ऊपर देहरो १ शान्तनाथ जी को बिम्व ३४। गाँव १ **टाणो** देहरो १ ऋषभदेव जी को १ बिम्व ७। **मंदिर** जी देहरो १ बिम्व १५८, गाँव १ **पडमो** देहरो १ ऋषभदेव जी को विम्व ७२, देहरो शान्तनाथ जी को बिम्ब ५१, देहरो १ अजितनाथ जी को विम्व ३६, देहरो १ गोड़ी पार्श्वनाथ जी का विम्व ६३। गॉव १, **सुखेडो** देहरो १ पदमप्रभुजी का विम्व ४२ गॉव १ **रामसिरपुर** देहरो १ पारसन थ जी को बिम्ब ८२, देहरो १ सम्भवनाथ जी को विम्व १९ गाँव १ **समनपुर** देहरो १ वासपूज्य जी को विम्व ११६, भुहरा १ माहे प्रतिमा २२, देहरो १ पदमप्रभु जी को विम्त्र ६७। **गांवनीबड़ी** तिण में देहरा ३ एक तो शान्तनाथजी को विम्ब १२१, सांवलीया पारसनाथ जी को बिम्ब ६४, सुपारसनाथ जी रो देहरो तिण में बिम्व ३९, **पाणी** में सेहर का पुरा में देहरो १

शान्तनाथजीको बिम्ब ५१। गाँव १ **गंडारी** देहरा २ तिण में बिम्ब ५८। गाँव १ **तालरो** देहरो १ ऋषभदेव जी को बिम्ब ३। गाँव १ **नांदीयो** देहरा ३ **जीवतस्वामी** को बिम्ब ४७, पगल्या महावीर जी का १ काउसग रह्या डुंगर को पथर हेठे पडतोथो, ओ पगल्यो १ काउसग्गऊभा था। उपवास मां हे देहरासर शान्तनाथ जी को, उहाँ से गाउ ३ देहरो १ गाँव **लोटाणो** श्रो ऋषभदेवजी बिम्ब ११। **बाभण** वाडदेहरो १ श्रीमहावीर जी को बिम्ब ७५, पगल्या २ उहाँ श्री भगवान पोते का उसग्ग रह्या **खरचेद**, उहाँ कांसी नीखीली भगवान काढी, पाहाड़फाटो, समुद्र जलफलीया, वेद रो जीव देवलोक गया, देहरा का दरवाजा ४ भमनी की देहरी ५२, मोटी सीखरबन्ध धरमशाला ३, पानड़ी २, एहको मोटो देहरो छै वरसो वरसी मेलो भरीजे छै, लोक जात्रा करण नै घणा आवै छै। गाँव **पडवाड** देहरा ३ एक तो महावीर स्वामी, एक पारसनाथ जी, एक गोड़ी पारसनाथ जी। उपासरा मोहे सर्वसंख्या बिम्ब १७ देवी ३। गाँव १ **माकड़ो** देहरो १ बिम्ब ३। गाँव १ **नांडोत** देहरो १, महावीर जी को बिम्ब ६७। गाँव १ **बीजापुर** देहरा २ महावीर जो राता **मुहडर** में गाउ ३ देहरो १ पारसनाथ जी को पगल्या २४। गाँव १, **साहवाड़ो** देहरा २। १ रीखभदेव जी को दुजो १ उपासरा मांहे बिम्ब संख्या २८। गाँव १, **वाली** देहरा ३ एक महावीर जी को एक सान्तनाथजी को एक धरमनाथजी को, उपासरा माँहे बिम्ब ४१। गांव १ **खीमाणदी** देहरो १ शान्तनाथजी को बिम्ब ३।

जोधपुर का देहरा ५ श्री सम्भवनाथजी को देहरो बिम्ब १९, श्रीमहावीरजी को बिम्ब २१, पाषाण का धातु का ४३। देहरो १, शान्तिनाथजी को पाषाण का ११, धातु का ३ बिम्ब। **मंडोवर** में देहरो चिन्तामण पारसनाथजी का धातु का बिम्ब ९, पाषाण का बिम्ब १८ ऋषभदेवजी को देहरो बिम्ब २४ पाषाण का।

गांवतिवरी देहरो १, दादा पारसनाथजी को बिम्ब ६ धातु का पाषाण का २ देहरो १ टीका पारसनाथजी को बिम्ब २१ पाषाण का। गाँव १ **पोहकरण** देहरो श्री गौड़ी पारसनाथजी को बिम्ब ४५। १५ पाषाण का धातु का ३० देहरो १ ऋषभदेव जी को बिम्ब १२ पाषाण का धातु का ५०।

जेसलमेर चिन्तामणि पार्श्वनाथ जी मुरत ८५, दरवाजा बारे १७, फीरती ४३१, गणधर की मूरत १७ पाट १००८४ पाट सीद्धाचल जी कौ, १०८ प्रातमा पाट २, १०।१७० वीस वीस २० सब संख्या ५७७ पाट ४ सख्या ७३२ संख्या चिंतामणि जी की १३०९ **शीतलनाथ जी** को मिंदर १ देहरां मांहे विंव २७ गुबारा वारे १०२ पाट १।१०८। संख्या २३७ **संभूनाथ** गुंभारा में तो नव दरवाजा वार ९६ भवंती में ८४ पाट २।५१ एक ६४ संख्या २९५। दरवाजा बार पाट १७०।१७० सब संख्या ६३५ देहरो १ **शांतिनाथ जी** को १९६ बिंब पाट ३२१७० तीर्थंकरा रो सेतुंजा की जी रौ चौबीसी रो पाट पादुका २, **आचार्य** रो **श्री पुजकरायौ**, हाथो २, उपरै शांतिनाथ जी की माता पिता छै बेठा छै, देहरो १ नीचो **अष्टापद** जी रौ भमती मांहे ५४ विंव, पाट १।१७०। २, पाट १७० पाट ३।२४ तीन रा छै। बाहिरी भमती में १३० विंव छै देहरो १, **आदीसर जी** को धात का बिंव ५, पाषाण का ९, सिद्धचक सूधा मूल गंभारा में माहीला भमती में विंव छोट मोट १८२ वाहरला भमती में विंव ८१० पाट ३ चोवीसी का पाट २, भारी १७०।१७० तीर्थंकर सिद्धाचल जी रो पाट एक १०८ विंव। देहरो १, **चंदाप्रभु जी** को चोमुखो विंव २८, विंव मांहेली माही भमता वारला भमत्ती ५१ विंव पाट ६ देवी रा पाट २, चौवीसी पाट ४, शासन देवी रखवाली सासन जिन रो रखवाला पाट २। दूजी भूम १८० बिंब चौमुखा चंदाप्रभु जी को मूल नायक छै, भमती २०, विंव छै चौमुखा में चंदाप्रभु जी छै।

देहरो १, **माहावीर स्वामी** रो छै जीन से बिंब ३८, सर्वधात पाषाण का ८४ बिंब, पाट २४, देवी को छै।

सैहर में देह रो १, सुपारसनाथ जी को छै। **जेसलमेर** सैर में तपा रा उपासरा कनै सुपार्श्वनाथ जी बिंव ४५, गौड़ीपार्श्वनाथ जी को देहरो १, बिंब ५, छै। तपा रो छै दे हुदो है **देहरो थेरासा** रो बिंव २१ छै। **सुपार्श्वनाथ जी** का देहरा में भोमीयोजी रा पगलिया छै। **सुपार्श्वनाथ जी** का देहरा में **माणभद्र जी हीर-विजयसूर जी** प्रतिभा छै।

कोस १, गंगासागर तलाब छै, जठे माणभद्र जी छै, गौड़ी जो रा पगलीया छै, गोरा जक्ष पाषाण छै, सांवलीयो छै, **दादा** पग-लीया छै, **कुसलगुर गटीसर** भायैं, गौड़ी जी रा पगलिया छै छत्री मांहे धरमशाला छै। **दादा** रा पगलिया छै, क्षत्री छै कोस १, क्षत्री ३ **दादा** री छै मांहे पगला छै, तलाव छै फूल की वाड़ी छै।

उपासरा तपा रा २, **खरतरां** रा ७, **आंचलीया** उपासरो १, **वेगडां** रो १ छै लुंकड़ी नो उपासरो १ छै।

लोद्रवे देहरा ५, तपारा ३ छै. चिंतामण पारसनाथ जी का देहरा में बिंब ७ पाषाण का छै, धात का बिंब १४, देवी ३ छै। सिद्धचक्र जी १ सहस्रफणो पारसनाथ बिंब ३ पगल्या ८८ गणधरना ऋषभदेव जी रो देहरो १, बिंब ., धातरी प्रतभा १, पगल्या सित्रुंजा का २४, देहरो १, अजितनाथ जी को मूलनायक १, सिं नाथ जी को १, देहरो १, मूलनायक १, अष्टापद जी को देहरो १, बिव २४। **दादा रा पगला तपा** रो उपासरो १, **खरतरा** १, धर्म-शाला ५ क्षेत्रपाल १।

गांव फलोधी देवरा ३, ऋषभदेव जी रो १, बिंब २१, पाषाण का धात की ७, श्री शांतिनाथ जो को बिंव २१, धात की ६३, शीतलनाथ जी को बिंब ३, पाषाण की धातु की ४। **बीकानेर देवरा** १३, **श्रीचिंतामण पार्श्वनाथ** बिंव ३६, पाषाण की धातु की

३६, **शांतनाथ जी** बिंब ८०, **ऋषभदेव जी** बिंब ३१, धात की ४०, **गौड़ी पार्श्वनाथ जी** बिंब धातु का ९। **चौमुख जी भांडासाह** बिंब २८, पाषाण का धात ४, **अजितनाथ जी** बिंब २५, पाषाण का धात का ५२। सांवलिया पार्श्वनाथ बिम्ब ७, पाषाण धात का १०। **वासपूज जी** बिंब ५, पाषाण धात का ९, **महावीर जी** बिंब ४, पाषाण का धात का ११, चौंदास **सुपार्श्वनाथ जी** महावीर जी रै देवरौ भेलो बिंब १, **गौड़ी पार्श्वनाथ जी** बिंब १, धातु की ८७, पगल्या गणधर दादा जी ८४, दादा **जिनदत्त** सूरजी, जिनकुशल सूरजी का पगल्या ८४, **महावीर** जी बिंब ३१, पाषाण धात ११, चंदाप्रभुजी बिंब ४, धात का २१।

गांव देशमोरु देवरा २, संभवनाथ जी बिंब ३, धात की ११, उपासरै खरतरा रै ऋषभदेव जी बिंब १, धात का ७। **नागोर देवरा**—ऋषभदेव जी बिंब २२५ (पाषाण २१२ धात का १३), ऋषभदेव जी बिंब ५२, अजितनाथ जी बिंब ५, शांतिनाथ जी सांवलिया पार्श्वनाथ जी बिंब १६, गोड़ी पार्श्वनाथ जी बिंब ३ उपासरै में **खरतरारै** बिंब १४, **पायचंद्यां** रै उपाश्रय २१, खरतरै फेर दूजै उपाश्रै बिंब २२।

मेडतै देवरा १३, महावीर जी बिंब ४, धात १०, पाषाण का चिंतामण पार्श्वनाथ जी बिंब १५, पाषाण धात ९, वासपूज जी बिंब ७, अजितनाथ जी बिंब ७, धात ४, अजितनाथ जी बिंब ११, शांतिनाथ जी बिंब १७, पा० ऋषभदेव जी बिंब ७, पा० धा० २०, नवो देवरो ऋषभदेव जी रो बिंब ११, वाड़ी पार्श्वनाथ जी बिंब ३, पाषाण धात ४५, शांतिनाथ जी बिंब १५, पाषाण धा० १३, धर्मनाथ जी बिंब ७, पा० देरासर बिंब ५, धात का वासपूज्य जी बिंब २, **कवला** रै उपाश्रै बिंब ४, पा० धा० की ७ देरासरा में।

अजमेर में देहरा २, एक संभवनाथ जी जिसमें धात की

प्रतिमा ३४, पाषाण की ५, उपासरै **खरतरां** कै मांहि देहरा ऋषभदेव जी का पाषाण की प्रतिमा ७, धात की ७।

श्री **किशनगढ़** में देहरा ३, पंचायती श्री चिंतामण जी का धात की प्रतिमा ३१, पाषाण की ७, जिमणी तरफ मनमोहन पार्श्वनाथ जी के बिंब धात ११, पाषाण ९, बांबी तरफ गौड़ी जी जिसमें बिंब धात के १३, पाषाण ७, पाषाण की चौबीसी, **खरतर** गच्छ का देहर श्री ऋषभदेव जी बिंब पाषाण के ७, धात के ३२, चरण श्री **दादाजी** के है। **बीजामतियों** के देहरा श्री ऋषभदेव जी बिंब पाषाण के २२, धात के २५ है जी।

श्री याददासती

श्री सिद्धाचल जी महीना ४। सवाच्यार रह्या। श्री मवो महावीर जी कोस १०। **सवाई जैनगर** सूं सिद्धाचल जी कोष ४५५ साढाच्यार मै। गाँव **उन्द** मवा सूं कोस पचीस २५ दिन पनरा रह्या। गाँव **ऊना** सै **दिप** बंदर कोस पाँच ५। गाँव **दीप** से **वेरावल** पाटण कोस बैयालीस दिन। बारा रह्या १२। **मांगरोल** बंदर कोस दस १० दिन पनरा रह्या १५। श्री **गिरनार** जी कोस सतरा दिन ५ रह्या। श्री **नवैनगर** कोस पैंतीस ३५ दिन तेरा रह्या। **पोरबंदर** कोस बावीस २२ दिन च्यार रह्या। **ममई** बंदर कास साठि ६० दिन पनरा रह्या १५। **सूरत** आया कोस इक्याणवै ९१, दिन पचीस रह्या। **भुंरच** कोस दस, दिन च्यार रह्या। **बडोदडो** कोस १० दिन तीस रह्या ३०। गाँव **डबोई** कोस १०, दिन च्यार रह्या। **खमाच** बंदर कोस बीस २० दिन बीस रह्या। **अंबदाबाद** कोस पच्यासी ८५ दिन पैंतीस रह्या ३५। गाँव **मुसानो** कोस १३ दिन पैंतीस ३५ रह्या। **पीरपापहन** कोस बतीस ३२ दिन बावीस रह्या। **वीसनगर** कोस १० दिन च्यार ४ रह्या।

श्री **तारंगा** जी कोस १२ वारा दिन पाँच ५ रह्या। **पालनपुर** कोस पचीस २५ दिन रह्या १२। श्री **आबू** जी कोस वतीस ३२ दिन वारा रह्या १२। **सिरोही** कोस पचीस २५ दिन छ ६। गाँव **घणैरो** कोस पचीस २५ दिन आठ रह्या। **उदैपुर** कोस २० दिन वतीस रह्या। श्री धुलेवा केसरयानाथ कोस १६ दिन आठ ८। श्री **सोडवासो** कोस पच्याणवें ९५ दिन ५२ वावन। **भावनगर** बंदर कोस पंच्याणवें ९५ दिन वावीस रह्या। **सिद्धाचलजी** कोस वावीस २२ दिन २० रह्या। **पीरपाहण** कोस १२५ एक सौ पचोस, मास साडा ३॥ तीन रह्या। **पालनपुर** कोस पनरा १५ दिन तोस रह्या। गाँव **नांदियो सीरोई** पासि पाली आया १०१ एक सौ एक दिन वतीस। **जोधपुर** कोस १८ अठारा दिन सात ७ रह्या। **जेसलमेर** कोस ९५ पंच्याणवें, मास १। सवा एक। **बीकानेर** कोस ९० निवे दिन १५ पनरा। **सवाई जैपुर** कोस पंच्याणवें ९५, दिन तीस रह्या ३०।

सवाई जैपुर की देहरा की याददास्ती—

१. प्रथम पंचायती ७ मूलनायक सुपार्श्वनाथ जी धात के विंव १९ पाषाण के विंव ५, २ श्री महावीर जी के देहरा में पाषाण के विंव ५, धातके विंव २, चूंतरी ३ में, ३. गौड़ीपार्श्वनाथ, च्यार पाषाण के धात के २०, चरवरी १ नेमनाथ पाषण की चौवीसी ५ विंव ९ धातु के विंव १५, **जमली विंब** ७९, क्षेत्रपाल १, काठ का नंदीश्वर देहरै ५२, देहरा १ आसवाल का **तपैगछ** मूलनायक ५ सुमतिनाथ विंव पाषाण के ४, धातु के १८, धात के चौमुख २ चव ी १, ऋषभदेवजी की पाषाण के विंव ४, धात के विंव ११, पट १ का धात को सेत्रुंजै जी को, परमेष्ठी नवकार को, सिंघासण १ तिस ऊपर पगलें उपासरा **विजामती** का देहरासर मूलनायक ऋपभदेव जी पाषाण के विंव ६ धात के विंव १७। उपासरा

पायचंदया मूलनायक पार्श्वनाथ पाषाण के बिंव ३ धात के बिंब १०। उपासरा **खरतरा जिन सूरि** का, सिंघासण दादाजी का, पगला ७२। उपासरा **खरतर** का १ उपासरा १, **तपा** का उपासरा **जिस विजै** का १, सिंघासण १ जिसके ऊपर **दादाजी** का पगला २। उपासरा **लोकागछ** का १, **मोहन** वाड़ी में पगलै ऋषभदेव जी का १ पगल्या दादाजी का।

१. **सांगानेर** में देहरा चंदाप्रभु जी का बिंब ६ पाषाण के धात के ११। श्री महावीर जी बिंब ७, पाषाण के धात के ७, परमेष्ठी नवकार का सिंघासण १ **दादाजी** का पगल्यै २, भाई दोय देर कै सामनै हाथ जोड़ सामनै उभा छै।

गावै १ **आमेर** पुर चंदाप्रभु मूलनायक बिंब पाषाण के ४ धात के ८, **आखोह** में देहरो १ सुपार्श्वनाथ जी को पाषाणे बिंब १ धात के ३।

आगरो (१) चिंतामण पार्श्वनाथ बिंब १, पाषाण के धात के ७, चौमुखो पाषाण के १ बिंब पाषाण के २१। देहरा १ (२) सीमंधर स्वामी जी का बिंब पाषाण के १० धात के ६।

भरतपुर देहरा १ धरमनाथ जी मूलनायक बिंब पाषाण के ८ धात के ११।

मथुरा में देहरो १ पार्श्वनाथ चिंतामण बिंब पाषाण के ४ धात के ११, पगल्यां जंबू स्वामी का सिंघासण ऊपर छत्री।

कंपल्यानगरी पारसनाथ का कल्याण ४ बिंब पाषाण के ७ धातु के ५।

फरकाबाद में देहरो एक मूलनायक धर्मनाथजी बिंब पाषाण के ७ धात के सिद्धचक्र १७ घात के बिंब ११ दादाजी का पगल्या ४।

नखलेऊ में देहरा ४ पार्श्वनाथ जी का मूलनायक बिंब पाषाण के १२ धात के बिंब २७। ऊपर चौमुख जी बिंब पाषाण के

१३ धात के १, माता चक्रेश्वरी पाषाण १ **दादाजी** का पगल्या १ क्षेत्रपाल १। **तपा को** उपासरो मूलनायक पदमप्रभु जी बिंब पाषाण १५ धात के १२ **रतन** की प्रतिमा १ संभूनाथ जी, बिंब पाषाण के ७ धात के २, (रस) उपरा **विजामती** का मूलनायक ऋषभदेव जी धात के बिंब १, धात की देवी १ श्री शांतिनाथ जी देहरा में बिंब पाषाण के ३१ धात के ३५. **रतन** की प्रतिमा ३ सिद्धचक्र जी ३ उपर बीस तीर्थंकर के पगल्ये, ऋषभदेव जी के पगले चौबीसी के पगले **दादाजी** के पगल्ये १७ कुंथुनाथ बिंब **पाषाण** के ६ धात के ३।

गाँव **नोलाई** देवरो १ चरण ५, आदी सरजी पारसनाथ जी माहावीर जी **दादाजी** गौतम स्वामी का ॥९०॥ **बंगलोसर** १ देहरो १ बिंब पाषाणको १ छै धात का बिंब ७।

बगलक से कोस १ **अयोध्या** छै। देहरो १ आदिनाथ जी रो छै नामै चरण १० आदि सर जी का १ पार्श्वनाथ जी का, महावीर स्वामी का ३, गौतम स्वामी का ४, श्रीमन्धर स्वामी का, गर्भ कल्याण जन्म कल्याण, तप कल्याण, ज्ञान कल्याण। **दादाजी** का चरण।

बनारस में देवरो १ **भेलुपुर** में नेमनाथ जी को, पाषाण का बिंब ११ धात का बिंब ९।

भदाणी जी रो देवरो १ बिंब ३ पाषाण का धात का ७।

सिंगपुरी में देवरो १ चरण ५ ऋषभदेव जी का गरभ कलाण जनम कल्याण चवदे सुपना केवल ज्ञान, देवरो **कुशलाजी** रो वणायो, पंच तीरथ का सहस्त्रफणा पार्श्वनाथ पाट १ बिंब ९६। पार्श्वनाथ बिंब २७ सांवला पार्श्वनाथ बिंब ५ सुपार्श्वनाथ जी बिंब ५ चितामण पार्श्वनाथ जी बिंब १७, **मुनीलाल** क देवरो १, चितामण पार्श्वनाथ जी बिंब १ पाषाण का धात का ११।

उपासरे **तपंगछ** के बिंब धातु का ३ चोवीसी १ उपसारु **खरतरगछक रंगविजै** बिंब ३ पाषाण धातु का ५ ।

देवरा १ **केसरी** बजार में पाषाण को बिंब १ धात की प्रतिमा १३ ।

सेरपटणा मध्ये सेठ सुदरसण, थूलभद्र जी, **दादा जी**, देवरो १, शांतिनाथ जी को पारसनाथ जी को पाषाण का बिंब ११ धातु का २७, ब्रिंब ३२, देवरो दिगम्बरी १, को ।

ब्यार व्हार शरीफ में देव ३, कुन्थुनाथ जो को बिंब ७, चंद्र-प्रभ जी ने विंब २१ धात का अजितनाथ जी विंब, पाषाण का ३, चरण ३ ।

पावापुर में देवराजल में चरण महावीर स्वामी का ।

नवरतन १, कलन ३, कुण्डी तलाब्र २, गाम बगीचो १, कुण्ड १ ।

जूनो समसरण जी, नवा सेमासरण जी, मुखर-उपर हेदेहरो महावीर जी को, गाम में है। उस देहरो में चरण महावीर का है। प्रतिमा तीन गौड़ी पार्श्वनाथ जी की है ।

खत्रीकुंड का पगल्य, **दादा जी** का चरण हो उर चरण तेरे भमत्ती का है ।

उर गाम **राजग्रही** में मदर तीन १, पार्श्वनाथ जी को विंब पाषाण का ५, धात्त की चौबीसी १, देवरो १, शांतिनाथ जो को पाषाण बिंब ७, सिद्धचक्र जी १, **दिगंबरी** देहरो ५, धर्मशाला दो, संघ उतरणे कुन्ड बगीची १; कुओ १, पर्वत नीचे महावीर स्वामी का भंडार पर्वत के ऊपर धना सालभद्र का क्षत्री है **स्राटकखेली** समोशरण चरणमुनीसर का क्षत्री १ । वीर का चरण देहरो १, महा-वीर स्वामी को बन १, पाषाण को चरण च्यार मेंदर १, पार्श्वनाथ जी ब्रतमा ३, चरण ४, **रतनगिर** टुक दोसरी सेहसफणा पार्श्वनाथ

को देहरो १, चोवीसी १, माहा स्वामी चरणा १, भमती में च्यार चरण टुक तीसरी **वीपचल** (विपुलाचल) तदेहरो १, चरण ५, वीरचरन को देहरो १, टुक ४, **वीभारगिरि** देहरा २, प्रतमा ११ चोवीसी २, चरण ९ कोष १, गणधर ११, प्रतमा ११, चरण २७, **उदीयाचल** देवरो १, ऋषभदेव जी चरण महावीर का कुंड २२, **बड़गाम** पाषाण की प्रतिमा ७, गोतम गणधर का पगल्या २, **दादा जी** का पगल्या २, मंदर १, **क्षत्री कुंड** गाम १, मंदर ३, महावीर जी रो १, पार्श्वनाथ जी रो १, वासपूज्य जी रो १, धर्मशाला २, नदी २, तालाब २, गौ १२, **काकंदी** गाम मंदर १, पार्श्वनाथ जी को फूल की वारी ६।

शिखरजी मध्ये **मधुवन** में देहरो १, विंव पाषाण ७, धातु का ३ सिद्धचक्र जी १, खाल १, कुंड १, कूवो १, पाट १, वीस महाराज को, धर्मशाला १५, पक्की २, फूस की ३, भंडार १, सिंघ प्रोष १, नोवतखानो १, फूल की वागी ३, खेत्रपाल ४, **दादा जी** रो मंदर १, चोक मासो १, मंदर सामणै गाऊ १, क्षेत्रपाल गाऊ पीछे १, गंधर्वनालो गाऊ १, सीतानालो क्षेत्रपाल हरूमान गाऊ १, पहिली टुंक कुन्थुनाथ जी की, दूसरी टुंकु शांतिनाथ जी की, तीसरी टुंक अजितनाथ जी की, चउथी टुंक पदमप्रभु जी का ४, पांचमी टुंक सुपार्श्वनाथ जी को, छट्ठी टुंक विमलनाथ जी की ६, सातमी टुंक धर्मनाथ जी की, ८ मी टुंक मल्लिनाथ जी की, ९ मी टुंक मुनिसुव्रत जी की, १० मी टुंक अनन्तनाथ जी की, ११ मी टुंक पारसनाथ जी, १२ मी टुंक श्रीयांसनाथ जी, १३ मी टुंक अरनाथ जी, १४ मी टुंक नमीनाथ जी, १५ मी टुंक सुमतिनाथ जी, १६ मी टुंक संभूनाथ जी, १७ वीं टुंक अभिनन्दन जी, १८ मी टुंक चंदाप्रभु जी, १९ मी टुंक सुविधनाथ जी की, २० मी टुंक श्री शीतलनाथ जी की, २१ वीं टुंक सांवलिया जी को देहरो है।

(बिंब ५ पगल्या २०) ते मध्ये २, गुसारा १ में बिंब १७ और एक म चउबीसी ४, देवी ६, प्रतिमा ११, कुंड १, झरणो १; धर्मशाला २, खेतपाल १, **दिगंबरी** का मंदर २१, **दिगंबरी का तेरा पंथी** का धर्मशाला २, नोवतखानो १, तलाब १।

पालगंज सेहर १, जिसमें राज **सुवर्ण सिंघ** जिसका कुंवर **डकेत सिंघ** जिणके पास प्रतिमा १, सांवलिया पार्श्वनाथ जी की रहती है, धातु की प्रतिमा ४, पुरा ३, तालाब १, धर्मशाला २।

चंपानगर देहरा ३, वासुपूज्य जी का १, पार्श्वनाथ को १, चौमुख को १, फेर १, **दादाजी** को खेत्रपाल ४, सासनदेवी १, दिगम्बरी को १।

मगसुदाबाद अजीमगंज मध्ये देहरा ३, शिखरबन्ध देहरो १, नेमिनाथ जी को पाषाण का बिंब ११, धातु का २१, सिद्धचक्र जी ३, बिलोड की प्रतिमा २। वासुपूज्य रो मंदर १, प्रतिमा ६, नवपद जी सिद्धचक्र जी १, देवी ४, ऊपर चौमुख च्यार प्रतिमा **दादाजी** का चरण २, खेत्रपाल ४, रामदेव १, हरुमान १, बगीचा २ फूल का, ते मध्ये कूयो १, रथगर १, घडीखाणो १, पोसाल बृहत् **खरतरगच्छ** की गंगा किनारै है। चिन्तामणि पार्श्वनाथ प्रतिमा पाषाण की ७, धातु की १५, देवी १, माणभद्र १, उपर चोमुख १, सीमन्धर जी का पदमप्रभु ना मन्दर १, प्रतिमा पाषाण की ३, धातु की ७, देवी १, खेत्रपाल १, **दादाजी** रा पगल्या १, उपासरै **रंग विजयां** को पहिलै पार।

बालोचर मन्दर २, संभूनाथजी रो देहरो १, प्रतिमा पाषाण की ७, धातु की १८, सिद्धचक्र जी १, देवी २, दादाजी का पगल्या २, खेत्रपाल ३, नन्दर १, पार्श्वनाथ जी को पाषाण का बिंब धातु का ११, देवी १, खेत्रपाल १, दादा जी रा पगल्या १।

माजनटोली देहरो १, विलोक की प्रतिमा ३, सिद्धचक्र जी १,

धातु की प्रतिमा ५, खेत्रपाल २, भदी कतरेखा। **कीरतबाग** को देहरो १, पारसनाथ जी १, वासुपूज्य जी चरण ४, खेत्रपाल ३, समोशरण जी **महाजन टोली** में **कीर्त्तचन्द धोकलचन्द जी** उ। **क्षमाकल्याण जी** के उपदेश से शास्त्र में कही विध तिण वध है। पहलो गढ रूपै को सोनै रा कांगरा, दूसरो गढ सोने रो रतन का का कांगरा, तीसरो गढ रतन कौ रतन का कांगरा, च्यार प्रतिमा पूर्व, पछम, दक्षण, उत्तर तीन छत्र, इकेक प्रतिमा के ऊपर अशोक वृक्ष, बारे परषदा को सरूप, पावड़ी बीस हजार को सरूप बावड़ी, प्रोलीया दरवाजा ४ इत्यादिक सरूप शास्त्र प्रमाणे छै। आठ प्रातिहारज सब सरूप छै। पहलै गढ में असवारी रखै देवता मनुष्य दूसरै गढ में, तिर्यंच सर्व सर्प गरुड, पास में रहै, वेर-भाव नहीं, तीसरै गढ में बार पर्षदा वाणी सुणै, देवता, देवी, मनुष्य, मनुष्यणी, साधु-साध्वी ए बारे पर्षदा।

जगत सेठजी रै देहरै में ११ बिंब, ६ धात का दोय **दादेजी** बगीचा।

[यह ५ इञ्च चौड़े, १९ फुट लम्बे वस्त्र पट पर लिखे हुए पिप्पणक Seroll की नकल है, एक तरफ चित्र से प्रारम्भ होकर पूरा अभिलेख है और दूसरी तरफ आंशिक लिखित है, संभवतः अपूर्ण लिखा गया है, लेखक का नाम व लेखन संवतादि नहीं है।]

[श्री जैन श्वे० पंचायती मन्दिर कलकत्ता]

परिशिष्ट ३

तित्थकप्प का सार

भगवान् महावीर एक बार सोरठ देश पधार कर विमलगिरि पर समौसरे। उन्होंने पुडरीक गिरि की महिमा बतलाते हुए कहा कि यहाँ अनंत सिद्ध हुए हैं। भगवान् ऋषभदेव से अजितनाथ तीर्थङ्कर के पिता जितशत्रु तक असंख्य सिद्ध हुए और असंख्य उद्धार हुए। इक्ष्वाकु वंश के कोटा-कोटि नरेश्वर सिद्ध हुए और 'सगर चक्र-वर्त्ती' का उद्धार संपन्न हुआ। अर्हन्त सुविधिनाथ के अन्तरकाल में तीर्थोच्छेद हुआ। चक्रवर्ती तीर्थंकर शान्तिनाथ ने स्वय उद्धार करा के ऋषभादि तीर्थङ्कर व पुण्डरीक प्रतिमा प्रतिष्ठापित कराने के साथ चैत्यगृह, जीवित स्वामी प्रतिमा व अमृत कुण्ड कराया। अरिष्टनेमि तीर्थंकर के निर्वाणकाल में बीस कोटि मुनियों के साथ पाँच पाण्डव एवं नौ लाख श्रमणियों सहित कुन्तीदेवी सिद्ध हुई। यहाँ शक्रादेश से वैशाखी पूर्णिमा के दिन पाण्डुपुत्र-गंधार ने काष्ठमय जिनालय व लेप्यमय बिम्ब स्थापन किए थे।

काल क्रम से पाँच सौ (५००) वर्ष बाद मुरुण्ड देश निवासी के अभिषेक समय प्रतिमा गलित हो जाने से संघ के कोई ढ़ढर नामक श्रावक ने चारों दिशाओं में बारह योजन दीखने वाली ऋषभदेव प्रतिमा, शान्तिनाथ प्रतिमा व चैत्य वृक्ष के नीचे पुंडरीक पादु-काएँ विराजमान कीं जो देवपूजित रहीं। कालान्तर में महेश्वर नगर से दशपूर्वधर वज्रस्वामी आकर बहुतों को प्रतिबोध देंगे। माहात्म्य श्रवणकर जावड़ सेठ का पुत्र भावड़ उपवास तप पूर्वक अभिग्रह लेगा। छ. मास ताम्रलिप्ति में आवास कर पर्वत शिखर

दर्शन से अष्टम करने पर वैश्रमण के आदेश से अम्बिकादेवी प्रत्यक्ष होगी । आदेश यह है—

दो मास भक्तोपवास से सहसाम्र वन में जीवितस्वामी-इच्छा से ऋषभ प्रतिमा ग्रहण करेगा। विमलपुर के गाथापति की पुत्री ऋषभ-देव की अम्बधातृ विमलमती जो ऋषभतीर्थ में मरुदेवी के निर्वाण-समय चक्रेश्वरी हुई थी, तुम्हे प्रतिमा देगी, उसे इस शिखर पर स्थापित करो ! यह सुन कर वह प्रतिमा प्राप्त करने गया। चक्रे-श्वरी ने उसे वज्रस्वामी के कायोत्सर्ग पूर्वक ऋषभ-प्रतिमा अर्पित की । दो हजार यान के साथ चतुर्विध संघ सह उत्सव पूर्वक सर्व चैत्यों की पूजा करते हुए पैठानपुर से भरोंच आवेगा, ताम्रलिप्ति में भी अठाइ (महोत्सव) करेगा । विधि पूर्वक उत्सवादि के साथ संघ निकालेगा और मेरे निर्वाण से ५७८ वर्ष वाद श्री वज्रस्वामी प्रतिष्ठा करेंगे । चैत वदी ८ को विमलगिरि पर प्रतिष्ठा होगी ।

मेरे निर्वाण से ५८४ वर्ष (वि० सं० ११४) पश्चात् चैत्र वदी ८ को आर्यरक्षित आकर ध्वजारोहण करेंगे। प्रभास क्षेत्र के मिथ्या दृष्टि यक्ष द्वारा जावड़ सेठ को उसकी पत्नी सीता सहित क्षीर-समुद्र के गंगाहृद में फेंकने पर वह काल करके महाविदेह के पुष्क-लावती विजय में विमल नरेन्द्र के पुत्र जिनपालित रूप मे उत्पन्न हो तेरहवें वर्ष में सीमधर स्वामी के पास दीक्षित हो क्रमशः केवल-ज्ञान पाकर विचरेगा । सीता भी धातकीखण्ड के अचलपुर में दमघोष पुत्र कनककेतु ८३ लाख पूर्व तक चक्रवर्ती तुल्य राज्य करके निर्वाण प्राप्त करेगी ।

इस प्रकार उद्धारों के प्रवर्त्तमान होने से १६९२ में (वि० सं० १२२२) बाहड़ का उद्धार होगा (प्रथम अध्ययन) तीर्थपति प्रतिमा अवसर्पिणी काल के छट्ठे आरे और उत्सर्पिणी के पहले आरे के ४२००० वर्ष-दमघोष विमल के यहाँ ४००० वर्ष, २००० वर्ष भानु,

१६००० विष्णु और २०००० वर्ष इन्द्रपूजित रहेगी। फिर यह पुण्डरीक तीर्थ उत्सर्पिणी में क्षीरधारा, अमृतधारा, पुष्प फलोत्पत्ति, मेघ वृष्टि आदि से विकसित होकर पद्मोत्तर पुत्र पद्मनाभ तीर्थङ्कर के समय अनेक वनस्पति शोभित विमलगिरि तीर्थ होगा। रायण वन में केवलज्ञानोत्पन्न आदिनाथ व २२ तीर्थङ्करों की यहाँ प्रतिमा स्थापित होगी।

यह पुण्डरीक अध्ययन का दूसरा उद्देश हुआ।

हे गौतम! तीर्थरक्षकों के प्रमाद दोष से जावड़ को घोर उपसर्ग हुआ, पर विमलगिरि के जीर्णोद्धार से तीर्थङ्करत्व प्राप्त करता है या तृतीय भव में मोक्षगामी होता है। यह सुनकर गौतम स्वामी ने चार-चार स्तुति—"युगादि पुरुषेन्द्राय" श्लोको से वन्दन किया, सौधर्माधिपति ने भी तीर्थ वन्दन और अनुमोदन किया।

फिर पूछने पर प्रभु ने कहा—जावड़ के उद्धार के पश्चात् इस तीर्थ के दाहिनी ओर केदार गाँव का कवड्डि गाथापति जो मद्यपानरत रहता था, अपना आसन्न मरण ज्ञात कर नवकार पूर्वक गठसी-मुट्ठिसी पच्चक्खाण कर तीर्थाभिमुख हुआ और मरके कुबेर यक्ष के सामाजिक 'कवड़ यक्ष' हुआ, उसकी भार्या भी मरके उसका वाहन हुई, इनकी पल्योपम की आयु है। इसके प्रभाव से सौराष्ट्र में धर्म का उदय होगा। यह पुण्डरीक अध्ययन का तीसरा उद्देश हुआ।

हे देवानुप्रिय! इस विमलगिरि का उज्ज्वल शिखर भी अति पवित्र है। अनन्त काल की अपेक्षा से यह अनन्त तीर्थंकरों का दीक्षा, ज्ञान व निर्वाण स्थल है। अन्य स्थलों की अपेक्षा यहाँ की तपश्चर्यादि का परिणाम विशेष से अनन्तफल है। नमीश्वर, अनिल, यशोधर, कृतार्थ, शुद्धमति, जिनेश्वर, शिवंकर और सुदर्शन—इन आठों के कल्याण सम्पन्न होने पर इस अवसर्पिणी में जिस समय

केवलज्ञानी तीर्थंकर के पास ब्रह्मेन्द्र ने पूछा- मेरा निर्वाण कब होगा ? उन्होंने कहा भावी अरिष्टनेमि तीर्थंकर के समय वरदिन्न गणधर होकर मोक्ष जाओगे ! यह सुनकर उसने अरिष्ट रत्नमयी प्रभु-प्रतिमा वना कर ब्रह्मदेवलोक में १९ कोड़ा-कोड़ि सागर पूजी और फिर भरतेश्वर को समर्पित की। उसने उज्ज्वलगिरि शिखर पर स्वर्ण-रौप्य मय अनेक चैत्यों के उद्धार कराये। २६-२०-१६-१०-२ योजन धनुष प्रमाणे अवसर्पिणी में नेमिनाथ प्रभु की अरिष्टरत्न-मय प्रतिमा असंख्य उद्धारों में विराजमान हुई।

इस महातीर्थ के स्मरण मात्र से भव दुख से छुटकारा होता है। तीर्थवन्दन-स्तुति का महाफल है। देवता लोग भी पूजते हैं। 'गंठसहिय' आदि साधारण तप का भी महान् तप अठाई-पक्षक्षमण मासक्षमण यावत् ८ मासक्षमण तक का फल पाता है। यहाँ काल करने वाला आराधक व निकटमेक होता है।

प्रतिष्ठानपुर से बलमित्र-भानुमित्र भिन्न-भिन्न उद्देश्य से निकले मार्ग में पुलिंद द्वारा लूटे जाकर भी तीर्थ भक्ति के प्रभाव से सर्वार्थसिद्धि विमान एकावतारित्व.सीमंधर-युगमंधरत्व प्राप्त किया।

जो पुण्डरीक (गिरि) को वन्दन करता है, आराधना करता है, वैमानिक होता है और चतुर्विध सघ सहित वन्दना करने वाला इन्द्र-चक्रवर्ती व तीसरे भव मोक्ष जाता है। इस पुण्डरीक अध्ययन में रैवतगिरि का जो ऊपर २६-२०-१६-१०-२ योजन-धनुप प्रमाण कहा है, वहाँ अनन्त तीर्थंकर सेवित-स्पर्शित उज्ज्वलगिरि का चतुर्थ उद्देश में भगवान् अरिष्टनेमि के चरित्र सम्बन्धी बातें गौतम स्वामी के पूछने पर भगवान् ने इस प्रकार बतलाईं।

अरिष्टनेमिमोक्ष—रेवतगिरि

धन धनवती के भव से लेकर नौ भवों तक संबंध कहते हुए तीर्थंकर नेमिनाथ राजिमती दशवें भव में हुए। सौरीपुर में हरिवंश

मुक्ताफल समुद्रविजय की रानी शिवादेवी के पुत्र रूप में भगवान् अरिष्टनेमि अपराजित विमान से कातीक वदी १२ को चतुर्दश स्वप्न सूचित सर्वारिष्ट नाशक अवतरित हुए। श्रावण सुदि ५ को चित्रा नक्षत्र में भगवान् का जन्म हुआ। छप्पन दिशि कुमारियों ने आकर सूतिकर्म किया। चौसठ इन्द्रोंने मेरुशिखर ले जाकर अभिषेक किया। दिव्य चंदन, वस्त्र, पुष्प, धूप, बलि, अष्टमंगल आरती-दीपक-मंगल गीत नाटक युक्त उत्सव कर माता जी के गोद में छोड़ा। उज्ज्वल गिरि पर भी नेमिनाथ प्रतिमा को वन्दन अट्ठाई महोत्सव किया और नन्दीश्वर द्वीप गए। सौरीपुर में राजा के घर उत्सव हुए। दशवें दिन अरिष्टनेमि नामकरण हुआ।

अन्यदा कृष्ण बलभद्र ने नंद गोकुल से मथुरा आकर मल्लादि को मार कर कंस का विध्वंस कर डाला और उग्रसेन को राज्याभिषिक्त किया। जरासंध के भय से १८ कुल कोटि यादव सौराष्ट्र आ गए। अष्टम तप पूर्वक लवण समुद्र के ७ योजन भूमि प्राप्त की। रैवत वन में एक भील त्रिकाल रैवत शिखर को वंदन करता था वह मर के वैश्रमण हुआ, जो त्रिकाल पूजा करता है और भगवान् अरिष्टनेमि के दर्शन कर हर्षित होता है। जहाँ समवशरण स्थान–पर्वत है और यादव-यादवियां क्रीड़ा करते, वहां सत्यभामा के पुत्र युगल उत्पन्न हुआ। शक्रादेश से वैश्रमण ने स्वर्णमय १२ × ९ योजन विस्तार वाली १८ धनुष ऊँचे प्राकार की द्वारिका बसाई, जिसमें अठारह और बत्तीस भूमि वाले विमान जैसे प्रासाद, नंदन-वन, वापी युक्त नगर में यादव लोग रहने लगे। पूर्व में अरिष्ट रत्नमय नेमिनाथ प्रतिमा युक्त रैवत शिखर, उत्तर में वेणुवंत, पश्चिम में गधमादन और दक्षिण में तुंग शिखरी था इस प्रकार की द्वारिका में जरासंध का वध करके वासुदेव बलदेव आनंद पूर्वक रहने लगे। वसुदेव के ७२ हजार रानियां थीं। दस दसार्हों का

विपुल परिवार युक्त छप्पन कुल कोटि यादव पुत्र पौत्रों के साथ क्रीड़ा करते थे। भगवान् अरिष्टनेमि विषय विरक्त थे, एक वार उन्होंने शंख वजा दिया तो लवणसमुद्र पर्यन्त तरंगित हो गया, प्रति शब्द से द्वारिका भयभीत हो गई, त्रिभुवन विस्मित हो गया। कृष्णादि सोचने लगे क्या नया वासुदेव होगा ? जव अरिष्ट-नेमि आये तो वल परीक्षा के हेतु पसारी हुई वाँह को उन्होंने मोड़ दिया। जब भगवान् ने बांह पसारी तो कृष्ण उस पर लटक गए पर मोड़ न सके। भगवंत को वसंतक्रीडा में ले जाकर सत्यभामा, रुक्मिणी आदि ने विवाह प्रश्नादि से निरुत्तर—मौन स्वीकृति मान कर द्वारिका के उग्रसेन को पुत्री राजिमती की मांग की।

विवाहोत्सव प्रारभ हुआ। भगवान् को वस्त्रालंकार से सुसज्जित किया गया। श्रावणसुदि ६ के दिन इन्द्र प्रेषित मातली सारथी युक्त रथपर विराजमान कोरटक छत्र चामर धारण किए वड़े समारोह से वरातसह उग्रसेन-धारिणी के यहां तोरण पर पहुंचे। राजिमती विवाह की प्रतीक्षा में खड़ी थी। भगवान् ने जव पशु-वाटक के दीन शब्द सुने और सारथी से वारात के भोजनार्थ होने वाले विनाश की वार्ता ज्ञात कर वैराग्य रस रंजित प्रभु ने रथ को लौटा लिया और सभी पशुपक्षियों को मुक्त करा के संवत्सरी दान पूर्वक यादवों को सबोधित किया। शुभमुहूर्त्त में अभिषेक पूर्वक देवासुर मानव वाहक शिविका में विराजमान होकर हजार राजाओं के साथ द्वारिका से रैवत गिरि की छत्र शिला पर आकर दीक्षित हुए। छट्ठ का पारणा द्वारिका में राजा वरदिन्न के घर हुआ। उसने जातिस्मरण से अपना पूर्वभव जाना कि मैंने अरिष्ट-नेमि प्रतिमा का पूजन किया था। सभी यादव प्रतिमा की पूजा करने लगे, कृष्ण ने चैत्योद्धार किया। बीस कोड़ा कोड़ी वर्ष प्रतिमा को हो गए। राजिमती के इच्छुक रथनेमि को उसने क्षीर पान कर

वमन ग्रहण करने का आदेश देकर प्रतिबोध दिया, उसने भी भगवान् के साथ दीक्षा ली। यह पांचवाँ उद्देश हुआ।

भगवान् को केवलज्ञान होनेपर इन्द्र ने उज्ज्वलगिरि शिखर को वज्र से संस्कारित किया। दश धनुष परिमाण की अरिष्ट रत्नमय नेमि प्रतिमा बना कर स्थापित की। आसन्न मण्डप में रत्नाभरण विभूषित हजारों देवियां नृत्य करती है। नीचे गजेन्द्र कुण्ड बनाया जिसका जल बड़ा प्रभावशाली है। वहां पर्वतिथि आदि में नहाकर देव देवियां नृत्य गीत पूर्वक आराधना करती हैं। इन्द्र (निर्मापित) प्रतिमा शक्रादेश से दुप्पसह पर्यन्त वैश्रमण पूजेगा।

गजेन्द्र कुण्ड के स्पर्श से भूत प्रेत वैताल आदि दुष्ट व्यंतर वाधाएं नही होतीं। बहुत सी सिद्ध प्रतिमाएं स्थापित की गईं। सिद्ध यक्ष और कुबेरादेश से देवार्चन में कुसुम-कमलारोहण होता है। 'उज्जित' आदि गाथा त्रय गौतम ऋषि निर्मित है। यह कंचनवालानक उद्देश हुआ।

जिस समय अर्हन्त अरिष्टनेमि के उज्र्जयंत पर केवलज्ञान हुआ, कोडी नगर में सिसिरभट्ट की पुत्री सोमभट्ट की भार्या अंबा कोहिंडी ने अष्टम का पारणा कराया था। अन्यदा वरदिन्न के पारणे से प्रताड़ित वह अपने पुत्रों के साथ अरिष्टनेमि के ध्यान में जहाँ १६ विद्यादेवियां हैं, भुवनपति में जम्बूद्वीप प्रमाण भुवन में देवी हुई। अवधि ज्ञान से रैवतशिखर पर प्रभु को ज्ञात कर वंदन किया। कृष्ण ने उसकी रौप्य हेममय प्रतिमा बनवाई, जिसे वरदिन्न स्वामी ने प्रतिष्ठा की। अम्बिका शासनदेवी हुई। ब्रह्मेन्द्र ने रत्नमय प्रभु प्रतिमा कराई। चैत्यवंदनावसर में चार (४) थुई प्रवृत्त हुई। महा प्रभावी अम्बिका तीसरे भव मोक्षगामिनी है, बीस हजार लक्ष वर्षायु है।

भगवान् को दीक्षा के ५४ दिन बाद आश्विन अमावस्या को केवलज्ञान हुआ। प्रभु ने रैवत गिरि के सहस्राम्रवन में बहुतों को प्रतिबोध दिया। प्रभु के वरदत्तादि ११ गणधर, अठारह हजार साधु, राजिमती आदि ४४००० साध्वियां हुई। बहुत से जीव प्रतिबोध पाए।

ढंढणकुमार ने दीक्षा ली, अंतराय के उदय से उन्हें आठ मास तक द्वारिका मे भ्रमण करते आहार नहीं मिला। किसी सेठ के यहाँ प्रशसा से मोदक मिले, जिनकी आलोचना करते भगवान् के द्वारा कृष्ण की लब्धि बताने पर मोदक चूरते केवलज्ञान पाया। उस दिन रैवत शिखर पर लाखों प्रतिबोध पाये। भगवान् जब उज्ज्वल गिरि पर समवसरे दसों दसार युक्त सभी यादव दिव्य वाहनों में भवत्यर्थ आए। कनकवती आदि आठ हजार केवल पाई, तीन लाख यादवियां दीक्षित हुईं। राजीमती लाखों के साथ निर्वाण प्राप्त हुई। गजसुकुमाल दीक्षित होकर सोमिल के द्वारा मस्तक पर पाल बाँधकर अगारे डालने से अन्तःकृत केवली हो मोक्ष गए। नौ दसार्ह प्रतिबोध पाए।

मद्यपान से क्रुद्ध द्वीपायन द्वारा द्वारिका विनाश प्रसंग ज्ञात कर धर्म करने की घोषणा से बहत्तर करोड़ सड़सठ लाख छः हजार यादव मुक्त हुए। उससे २७ गुणी यादवियाँ सिद्ध हुईं। यादव लोग प्रतिदिन अरिष्टनेमि प्रभु की पूजा करते थे। सांब प्रद्युम्नादि रैवत गिरिशिखर पर अर्द्धमासोपवास पूर्वक मोक्ष गए। अनिरुद्ध नवकोटि के साथ सिद्ध हुआ, पाण्डव प्रतिबोध पाए।

हे गौतम! अठारह अक्षोहिणी और कौरवों के संहार के पश्चात् हस्तिनापुर में राज्य करते हुए पाण्डवों ने जब द्वारिका दाह और जराकुमार के प्रसंग से बलभद्र द्वारा कृष्ण को छः मास वहन करने आदि प्रसंग ज्ञात कर वैराग रंग से अभिभूत होकर

आत्म शुद्धि के लिए नारद मुनि से पृच्छा की और शत्रुंजय तीर्थ गए। **'सारावली सूत्र'** से प्रतिबोध पा, मोक्ष गए। भगवान् नेमिनाथ आषाढ़ सुदी ८ पूर्वह्लि में उज्ज्वलगिरि शिखर पर निर्माण प्राप्त हुए। शाश्वत अशाश्वत्त चैत्य युक्त गिरनार महातीर्थ हुआ। यहाँ पंच शक्रस्तवचारस्तुति पूर्वक चैत्यवदन करने से तीसरे भव मोक्ष होता है। यह **नेमिनाथ का छट्ठा उदेश है।**

'सारावली गंडिका' की बात सुनकर गौतम स्वामी ने शत्रुजय पधार कर मास कल्प किया। रैवत शिखर को वन्दन किया। द्वारिका के प्रलयकाल व भगवान् के निर्वाण के ३०० वर्ष बाद काष्ठसंदीपनादि मिथ्यादृष्टियों द्वारा उपसर्ग हुआ। कचंन गुफा में भरत स्थापित ब्रह्मेन्द्र वाली प्रतिमा चार हजार वर्ष पूजी गई। भगवान् नेमिनाथ के निर्वाण के वाद पाण्डवों ने निर्वाण शिला पर चैत्य बनवा कर लेप्यमय प्रतिमा स्थापित की।

चार हजार वर्ष बाद गंधार जनपद सरस्वती पत्तन में मदन सार्थवाह उज्ज्वल गिरि का माहात्म्य सुन कर यात्रार्थ गया। मार्ग में देवी ने रुदन करती हुई स्त्री के रूप में हुताशन प्रवेश कराया। अग्नि का जल हो गया। देवी ने स्तुति-महिमा की। आगे अम्बा के वर से भील को जीत कर मथुरा स्तूप और चम्पा में वासुपूज्य स्वामी की वंदना पूजा की। सौराष्ट्र के मार्ग में मिथ्यादृष्टि देवता ने स्त्री रूप में मांस की याचना की। सघपति छुरी लेकर स्वमांस देने लगा। संघ रक्षक का पुत्र अपना मांस देने को प्रस्तुत हुआ, माता भी देने लगी तो देवी ने संतुष्ट होकर जय-जयकार पूर्वक निर्विघ्न यात्रा करने को कहा। अठाई करके क्रमशः रत्नपुर आये। कहीं फले हुए शालि क्षेत्र, कहीं अमृतयय नदियाँ और घड़ों दूध झरती गायें, सेना योद्धादि देखे। कम्पिलपुर आकर अट्ठाई की। शक्रादेश से वैश्रमण निर्दिष्ट अम्बिका ने अहोरात्र में

८४ योजन दूर सौराष्ट्र देश पहुँचा दिया। पक्षोपवासी मयण ने गिरिराज पर चढ़ कर गजेन्द्र कुण्ड में नहाया और हर्ष पूर्वक प्रभु का अभिषेक किया। प्रतिमा गलित होने के उपसर्ग से संघ ने आहार का त्याग किया। अम्बिका ने वैश्रमण के निर्देश से प्रगट होकर पारणा कराया। हेम गुफा में कपास बोकर एक प्रहर में पुष्पित-फलित किया। कुमारी कन्या से कते हुए सूत की वतलाई विधि के अनुसार मयण बंधुओं के साथ गजेन्द्र कुण्ड में नहाया और संकेतानुसार जाते हुए २१ अष्टमंगल मंडप, २१ तोरण युक्त छत्र शिला के अधोद्वार में अरिष्टनेमि समवशरणों में तीन प्रदक्षिणा पूर्वक कान्ति पूर्ण सुन्दर अरिष्टनेमि प्रतिमात्रय को वंदना किया। भरत की प्रतिमा उदित सूर्य जैसी पुष्पारोहित दिव्य कुण्डलादि भूषित एवं शत्रु की अरिष्टरत्न की सातिशय प्रतिमा के दर्शन से पाप बधन दूर हुए। "णमो भगवओ अरिट्ठनेमिस्सणं" बोलते हुए जयजयकार पूर्वक आया, अगुली से तंतु स्पर्शमात्र था। एक ने छत्र, दूसरे ने चामर और तीसरे ने धूपदान लिया। चैत्यके ऊपर लाकर दुंदुभि बजाई, स्वर्ण-पुष्पों की वृष्टि की। मणिरत्नमय चैत्य बनवाया गया चारों प्रकार के देव मनुष्यों से युक्त यह **सोरठ देश का तीर्थ** हुआ। क्रमशः अश्वसेन क्षत्रिय व नन्दिवर्द्धन ने उद्धार कराया। अस्सी हजार वर्ष पर्यन्त यह मणि रत्नमय चैत्य रहा, जिसका उद्धार जितशत्रु (२०००), दमघोष (६०००) नयवाहन (८०००), पद्म (१२०००), पुण्डरीक (१८०००), विमलवाहन (२००००) आदि निकट सिद्ध होने वालों ने कराया था।

मेरे निर्वाण के ८४५ वर्ष (वि० ३७५) बाद भुवनपति इन्द्र उद्धार करा देगा। दुषम काल प्रभाव से अधार्मिक लोगों के अपवित्र-आशातना से देवताओं का आवागमन कम हो जायगा। प्रतिष्ठान पति शालिवाहन सं० १३६० (८९०) में कन्नौजपति आम् सं० १६५० (११८०) में गूर्जराधिपति का उद्धार 'सज्जन' करावेगा।

इक्कीस हजार वर्ष बाद १००० धनुष ऊँचा गिरिराज रहेगा और अणपत्री-पणपत्री देव चिरकाल पूजा करेंगे। यह **पुंडरीक अध्ययन** है।

यह विमलगिरि शाश्वत्त सिद्ध क्षेत्र है। इसका नाम सिद्ध तीर्थ, भगीरथ, पुंडरीक, शत्रुञ्जयादि अनेक नाम अवसर्पिणी में हैं। यहाँ ५ कोड़ि से पुंडरीक, दो-दो कोड़ि से नमि विनमि, ८ कोड़ि से द्राविड़-वारिखिल्ल, १० कोड़ी से भरत, सागर प्रमुख, असंख्य कोड़ा कोड़ी से, हरिवंश के असंख्य कोड़ा कोड़ी राम-सुग्रीव-विभीषणादि २० कोड़ी, वाली पाँच लाख से, सेलगाचार्य सिद्ध हुए। साम्व प्रद्युम्नकोड़ी से, **राजमति** प्रमुख ९ करोड़ ७ लाख सात सौ यादव उज्ज्वलगिरि से सिद्ध हुए। इस प्रकार दिव्य प्रभाव वाला पुंडरीक तीर्थ उज्ज्वल शिखर है।

पुंडरीक अध्ययन का छट्ठा उद्देश पूर्ण हुआ।

अश्वावबोध भृगुपुर तीर्थ

दक्षिण के नर्मदा प्रदेश के श्रीपुर में पहले अजितनाथ तीर्थंकर समौसरे। चातुर्मास करने से तीर्थ हुआ। फिर सरस्वती पीठ में चन्द्रपुर है जहाँ चन्द्रप्रभ तीर्थ हुआ।

फिर भृगुपुर (भरौंच) के राजा जितशत्रु के अश्वरत्न को हनन करने के लिए नर्मदा में स्नान कराया गया, वह जाति स्मरण से आर्त्तध्यान करने लगा। उसकी अनुकंपा वश भगवान् मुनिसुव्रत स्वामी प्रतिष्ठानपुर से चलकर माघ सुदी १ को भरौंच के कोरिंट वन में सहकार वृक्ष के नीचे समौसरे। भगवान् ने अश्व और जितशत्रु राजा का पूर्वभव तथा अपना सबध बतलाकर प्रतिबोध दिया। अश्वरत्न अनशन करके सात अहोरात्र बाद मर के महर्द्धिक देव हुआ। उसने प्रत्यक्ष होकर तेरह कोटि उज्ज्वल रत्नों की वृष्टि की, सारा नगर प्रतिबोध पाया। स्वर्ण-रत्न मणि विभूषित हजार स्तंभों वाला **मुनिसुव्रत** स्वामी का चैत्य निर्माण

कराया। माही पूर्णिमा को स्थापना हुई। उस समय तीन करोड़ पाँच लाख मनुष्य प्रतिबोध पाये। जितशत्रु ने माघ सुदी १५ को अपरान्ह में **लेप्यमय** प्रतिमा स्थापित की जिसका रक्षक शक्र है। राजा अनशन पूर्वक नवहल्लपत्तन में विद्याधर रूप में उत्पन्न हुआ। अजित अपराजित सह रैवतगिरिशिखर पर बिम्ब स्थापना की। केवली होकर सिद्ध हुआ। अन्य भी स्नानादि करते हुए क्रमशः सिद्ध हुए।

अश्वदेव जो इन्द्र का सामानिक देव हुआ, प्रतिदिन तीर्थ प्रभावना करने लगा। **भृगुपुर महातीर्थ** हो गया। स्वामी के निर्वाण के बारह हजार वर्ष पश्चात् **अश्वावबोध तीर्थ** का पद्मचक्री ने, फिर हरिषेण चक्री ने उद्धार किया। कृष्ण-बलदेव नरेन्द्र व ईश्वर सार्थवाह भी उद्धार कराया। इक्ष्वाकु वंशी दशरथ, राम आदि तथा हरिवंश के दशार यादव प्रतिवर्ष उद्धार करते थे। बारह हजार के परिवार से सूर राजा तथा तीन लाख से परिवृत पांडु राजा सिद्ध हुए। भ० अरिष्टनेमि भी यहाँ समवसरे। द्वारिका-दाह के समय प्रत्यासन्न जलधि में मूर्च्छागत हरिवंशोद्भव का उद्धार हुआ।

ग्यारह लाख (छ सौ) चौरासी हजार दो सौ वर्ष बाद **अश्वाव-बोध** क्षेत्र में भाद्रव महीने में सात अहोरात्रवर्ती वर्षा हुई, जिसमें रक्षा के लिए उड़ती हुई एक शकुनिका बाण विद्ध होकर गिरी। श्रमण चारुचन्द्र ने नवकार मंत्र सुनाकर चैत्य के आगे रख दी। दो प्रहर के पश्चात् वह मर के सिंहलद्वीप के राजा विजयबाहु की रानी सुमंगला के यहाँ 'सुदर्शना कुमारी' रूप में जन्मी। यौवन प्राप्त होने पर स्वयंवर की आयोजना हुई, बहुत से राजा आये। भृगुपुर के सार्थवाह के "णमो अरिहंताणं" शब्दोच्चारण से राज-कुमारी मूर्च्छित होकर जातिस्मरण को प्राप्त हुई। राजकुमारी

सुदर्शना ने वैराग्य प्राप्त होकर **अश्वावबोध तीर्थ** में श्री मुनिसुव्रत स्वामी को वंदनार्थ अभिग्रह किया। विवाह और राज्य से निष्प्रयोजन हो दृढ़प्रतिज्ञ राजकुमारी अपनी सखियों व १६ राजपुत्रों-अंगरक्षकों के साथ १८ जहाजों में आरूढ़ होकर भृगुपुर की ओर चली। मार्ग में शील प्रभाव से दानवराज का हनन किया। नवकार मंत्र का जप करते भृगुपुर पहुँच कर प्रभु के दर्शन किए। अठाईमहोत्सवपूर्वक अश्वदेव का आराधन किया। **'शकुनिका विहार'** नामक नया मंदिर निर्माण कराया, जो १००८ ध्वजाओं से विभूषित था। सुदर्शना महादेवी ने बारह वर्ष तक तीर्थभक्ति करके अनशनपूर्वक १६ विद्यादेवियों के पास हजारों देवों और बाण व्यंतरों की स्वामिनी, जंबूद्वीप प्रमाण धवलगृह में उत्पन्न हुई।

अपना पूर्वभव स्मरण कर स्नानपूर्वक भद्रसाल, नदन वन, पद्मद्रह से पद्मकमल और गोशीर्ष चन्दनादि ले जाकर अठाई महोत्सव किया फिर नंदीश्वरादि में चैत्यवन्दना कर भगवान् महावीर को वंदन किया, नाटक किया। शक्रेन्द्र के प्रश्न पर प्रभु ने कहा—यह शकुनिका है, तीसरे भव में सिद्ध होगी।

आर्य सुहस्तिसूरि के शिष्य संप्रति राजा ने इसका उद्धार कराया। कालिकाचार्य ने चातुर्मास कर उपसर्ग को दूर किया। सिद्धसेन सूरि प्रतिबोधित विक्रम राजा ने जीर्णोद्धार कराया। कालिकाचार्य के समय बनवायी हुई गोशीर्ष चन्दनमय सुदर्शना-प्रतिमा को सिद्धसेन ने प्रतिष्ठापित की। यहाँ भद्रगुप्ताचार्य के पास वज्रस्वामी ने दशपूर्व पूर्ण किये। आकाशगामिनी विद्या (**महापरिज्ञा अध्ययन से**) उद्धृत की। जृंभक देवों ने महिमा की।

भगवान् ने गौतम स्वामी के पूछने पर कहा कि मेरे निर्वाण से ४८४ (वि० सं० १४) में आर्य खपुटाचार्य मिथ्यादृष्टि देवों द्वारा की हुई रजवृष्टि बंद करेंगे।

सं० ८४५ में वल्लभी भंग कर आते हुए अनार्यो को सुदर्शना निवारण करेगी।

सं० ८४० में मल्लवादी आचार्य मिथ्यात्वी देवों का उपद्रव दूर कर एक हजार आचार्यो सहित प्रभावना करेंगे। प्रतिष्ठानपुर का राजा शालिवाहन उद्धार करावेगा। एवं कृष्ण, नरवाहन, शिलादित्य चारों राजा महोत्सव करेंगे। कालकाचार्य और पादलिप्ताचार्य के समय सुदर्शना प्रत्यक्ष होकर नृत्यादि करेगी। इस प्रकार ११ लाख ८५ हजार ९८० वर्ष अनेक राजा सार्थवाहादि से पूजित व्यतीत होंगे।

अंवड़, पाटलिपुत्र के दत्त कनक रत्न विभूपित करेंगे। दमघोष जितशत्रु, सुदर्शनादि से उद्धार होगा। वारह लाख पाँच हजार से अधिक वर्ष पूजित रहने वाले इस तीर्थ की दो हजार वर्ष वाद नर्मदा जल कल्लोल और घोरांधकार का मिथ्यादृष्टि देवियों का उपद्रव अश्वदेव दूर करेगा। भगवान् के अठारह हजार वर्ष बाद मुनिसुव्रत प्रतिमा को सुदर्शना स्वस्थान ले जाकर पूजेगी। वह आयु पूर्ण कर धातकी खंड की विजयकेतु राजा होगी फिर सर्वार्थसिद्धि जाकर सर्वानुभूति तीर्थंकर (के समय मुक्त) होगी!

इस तीर्थ की बड़ी महिमा है। कल्याणक पर्वादि में पूजा का असंख्यगुण फल है। इस प्रकार अश्वावबोध तीर्थ के १३२ उद्धार वज्रस्वामी ने बतलाया। पाँच हजार के परिवार से पांडुराजा और हरिवंश के कोटि-सहस्र सिद्ध हुए।

चंदेरी-चन्द्रप्रभास

उस काल में चन्द्रप्रभ स्वामी अनेकशः चन्देरी नगरी में समौसरे। ज्वालामालिनी देवी ने वहाँ सिंहकीर्ति राजा को अपने चैत्य की प्रतिमा दी, जिसे वहाँ स्थापित की। वह चन्द्रकान्त मणि की शशिभूषण नामक निरालंब प्रतिमा है। प्रभास यक्ष नित्य नाटक

पूजा आदि करता था। दश चक्रवर्ती, प्रतिवासुदेव, कृष्ण बलराम आदि नरेन्द्रों ने इसको पूजा की। इनकी आराधना से कुन्ती के पाँच पुत्र—पांडव हुए जिन्होंने चैत्योद्धार कराया। 'सदाशिव' कहलाये। शिवरात्रि प्रतिष्ठादिवस है। चौरासी हजार वर्ष बाद सिद्धार्थ नरेन्द्र ने उद्धार कराया। कालसंदीप व पेढालपुत्र सुव्रत ने नित्य आराधना की। त्रैलोक्य स्वामिनी विद्या सिद्ध हुई।

भगवान् के निर्वाण के ६०० (वि० १३०) वर्ष बाद चंदेरी में वज्रसेन के शिष्य चन्दार्य शि० समन्तभद्र ने प्रतिष्ठा की। मिथ्यादृष्टियों का प्रभाव फैलने पर अतिशय से ईश्वर लिंग की प्रसिद्धि अधिक हुई। सिंहमण्डलाधिप ने द्वार स्थापित कर सिंहासन पर नागराज आरक्षक स्थापन किये। वसुमित्राचार्य अनशन करके काल प्राप्त हुए। इसके बाद ग्राम्य जनों से पूजित सोमलिंग कहलाए। वोटिकदृष्टि वालों ने सीता विहार ग्रहण किया। शालिवाहन को प्रतिबोध देकर पादलिप्ताचार्य ने गिरनार पर रहे दो क्षुल्लकों को नागार्जुन प्रभावित चंदेरी भेजकर बाद में जीता। दुषमानुभाव से १४०० वर्ष बाद भस्मग्रह उतरने पर दत्त राजा के समय सम्यग्दृष्टि जन के अधीन हो दस हजार वर्ष श्रमण संघ वंदित रह कर फिर **रैवतगिरि** शिखर पर पूजे जाएंगे, बीस हजार वर्ष त्रिभुवन स्वामिनी मनुष्योत्तर पर्वत पर पूजेगी।

भगवान् महावीर के ज्येष्ठ भ्राता नन्दिवर्द्धन ने पित्तलमय २२ प्रतिमाएँ बनवाईं। ५८१ वर्ष पश्चात् अंबादेवी ने उठाकर **चंदेरी** के **सिद्धमठ** में रखी। मिथ्यादृष्टि देवों ने चंद्रप्रभ प्रतिमा को अक्षुब्ध भाव से पूजा। 'ज्वालामालिनी' आदि देवियाँ पूजन करती हैं। विक्रम से ३७५ वर्ष अनार्यों ने तथा १०८१-१३८४-१४२९ यावत् दस हजार वर्ष और फिर उज्ज्वल शिखर पर पूजी जायगी। यह चतुर्दशां-पाँचवें **चंदेरी अध्ययन का हुआ।**

उस काल उस समय में भगवान् चन्द्रप्रभ चंदेरी में समवसरे। लवणाधिपति ने उस स्थान पर संयमचद राजा के लिए तिलकपुर नगर बसाया। यह वारह योजन विस्तृत था। अरिहदत्त गणधर कोटि परिवृत माघ वदि १४ को निर्वाण प्राप्त हुए; जिससे **शिवरात्रि** प्रसिद्ध हुई। चंद्रविमानोद्योत से **चन्द्रप्रभास** कहलाया। त्रिभुवन स्वामिनी देवी ने इस सिद्ध क्षेत्र पर भगवान् की प्रतिमा स्थापित की। यहाँ पशु-पक्षी आदि के भी कर्म निर्जरा होती है। रामचद्रजी ने यहाँ चातुर्मास किया, सीताविहार हुआ। रावण कैलाश पर चैत्य वंदना करके त्रिभुवनस्वामिनी से चंद्रप्रभ प्रभु की **अमृतलिंग** प्रतिमा प्राप्त कर लाया और यहाँ विराजमान की। यही कालक्रम से ज्योतिर्लिंग प्रसिद्ध हुआ।

भगवान् नेमिनाथ का समवशरण होने से यादवों का विद्याधरों का प्रिय मिलन हुआ। पांडव भी समुद्र-सरस्वती तट पर विद्या सिद्ध वारह वर्ष रहे। केवलज्ञान स्थान ब्रह्मकुंड समवशरण, चंद्र-सूर्य-राहु योगस्थान विद्यासिद्धि स्थान है। दुषमानुभाव से ज्योतिर्लिंग कुतीर्थिकों ने ग्रहण कर लिया। **यह चंद्रप्रभास अध्ययन हुआ।**

उस काल उस समय में भगवान् चन्द्रप्रभ दक्षिणापथ में विच-रते हुए कलंव वन में समवसरे। नासिकपुर से राजा गोवर्द्धन वंदनार्थ आया। हे गौतम! उस देव-मनुष्यों की सभा में एक गाय ने आकर अपना पूर्व कर्म पूछा। भगवान् ने कहा—एक कागिणी का ऋण जो तुमने करके नौ भव पूर्व तिर्यंच गंथी बाँधी थी, उसी ऋण से दासत्व, भिखारीपना और तिर्यचपना प्राप्त होता है। प्रतिवोध पाकर वह १८ दिनों के अनशन से वैमानिक देव हुई। राजा भी निष्क्रमण करके ब्रह्मेन्द्र हुआ। वह उस समय जहाँ क्रीड़ा करता था, ब्रह्मगिरि पर वनवाई हुई जीवितस्वामी की रत्नमय प्रतिमा थी, जहाँ गाय अमृत झरती थी। क्रमशः अंजना

ने आराधना की, जीर्णोद्धार हुआ। राम, लक्ष्मण, सीता ने चार वर्ष आराधना की। हस्तिनापुर में पुत्रार्थ अग्नि प्रवेश करते कुंती को नारद मुनि ने पूर्वभव बतलाया, उपवास पूर्वक आराधना से धर्मपुत्र युधिष्ठिर जन्मा। शील प्रभाव से सदा पूजा की, पाण्डवों ने बारहवें वर्ष जीर्णोद्धार किया। **ज्वालामालिनी** शासन देवी हुई। श्रमण सघ ने प्रतिष्ठा की तब से दिनोदिन **जीवित स्वामी** प्रतिमा का माहात्म्य बढ़ा, अनेक उद्धार हुए। चक्रवर्त्ती बलदेव वासुदेवों से पूजित प्रतिमा और चैत्य का उद्धार हरिवंश द्वारा हुआ। चेडा महाराजा ने भी उद्धार कराया।

कृष्णदेव के प्राप्त कर बीस हजार वर्ष व्यतिक्रान्त होने पर चन्द्रप्रभु प्रतिमा को देवी अपने भवन में ग्रहण करेगी। करोड़ अड़सठ लाख छब्बीस हजार वर्ष यह तीर्थ विद्याधर-चक्रवाल पूजा हेतु विजययक्ष पूजित **तीर्थ का उद्देश** है।

उस काल उस समय में दक्षिण खण्ड में पूर्ण नाटक द्वीप में चन्देरीपुर में चन्द्रप्रभ स्वामी **जीवितस्वामी**की शक्र प्रतिष्ठित प्रतिमा सूर्य जैसी तेजस्वी अमृत वर्षाने वाली, देवपूज्य अठारह हजार वर्ष रहेगी, फिर भुवनपति देवों द्वारा पूजी जायगी। **चन्द्रावती उद्देश** हुआ।

जिस समय लंका में मन्दोदरी अष्टमपूर्वक प्रौषध व्रत में रही तो तीसरे दिन त्रिभुवन स्वामिनी ने अपनी चन्द्रप्रभ प्रतिमा दी। कालक्रम से अयोध्या में लाकर सीता ने पूजी, फिर देवताओं ने ग्रहण कर ली। फिर **पण्डुमथुरा** में पाण्डवों के मासक्षमण करने पर त्रिभुवन स्वामिनी ने उन्हें दी जिसे पट्टण में स्थापित की वही सोलह हजार वर्ष बीतने पर यक्षराज पूजेगा।

नाहड़-साचोर तीर्थ

एक वार कन्नौज देश-हस्तिनापुर में श्री **आर्य महागिरि** सम-

वसरे। गुरुमहाराज ने किसी विवर्ण देहवाले भिखारी की ओर बारंबार देखा तो देवनन्दि सेठ ने समझ लिया कि अवश्य ही यह प्रभावक होगा। अतः उसे अपने घर पर लाकर रख लिया। पूछने पर ज्ञात हुआ कि यह जितशत्रु-नन्दन नाहड़ है। क्रमशः तरुण, हुआ, दुर्विनीत होने से कुछ नहीं सीखता पर केवल नवकार मन्त्र ग्रहण किया। उस प्रदेश में एक सिद्धयोगीन्द्र सौ योगियों के साथ आया। उसने विद्या सिद्ध करने के हेतु नाहड़ को अपने वश में कर रात्रि के समय स्मशान में वुलाया। मृतक व वेताल के प्रयोग से मुझे मार कर स्वर्ण पुरुष बनाने में योगी सचेष्ट है, ऐसा ज्ञात कर "णमो अरिहंताण" का जाप किया और परिव्राजक को ही अग्निकुण्ड में फैंक दिया जिससे 'स्वर्णपुरुष' सिद्ध हो गया। उस नगरी का राजा यशोवर्म अपुत्रिया मर गया था, जिसके उत्तराधिकारी नियुक्त करने के लिए पंच दिवा प्रगट हुआ और नाहड़ राज्याभिषिक्त हो गया। आकाशवाणी घोषणा भी हो गई जिससे दुष्ट जन अधीन हो गए। उसी दिन जातिस्मृति प्राप्त कर सार्थवाह-पिता के साथ वाराणसी जाकर आर्य महागिरि गुरु को वन्दन किया। उपदेश से प्रतिवोध पाया। विहार भूमि विस्तृत हुई।

वर्द्धमान तीर्थ की स्थापना के हेतु नैमित्तिक लोगों को भेजा गया। वे भूमि परीक्षा के लिए ग्रामानुग्राम देखते हुए छः मास से मरुदेश पहुँचे। **सच्चउर** पट्टण पहुंचे, जहाँ चन्द्रप्रभ स्वामी के समवसरण होने से पवित्रित तीर्थभूमि थी। भगवान् **वर्द्धमान** स्वामी की जीवित स्वामी प्रतिमा स्थापनार्थ परीक्षित भूमि पर खात मुहूर्त्त किया गया।

उस नगरी में जोगराय मंडलिक था, महाराजा नाहड़ के निर्देश से अनुमति प्राप्त कर सूत्रधारों को नियुक्त कर दो चैत्य बनवाये। भगवान् महावीर की ओर **ब्रह्मशान्ति** यक्ष की स्वर्णमय-पित्तलमय प्रतिमाएँ ब्रह्मचारी सूत्रधारों द्वारा निर्मित हुईं। आर्य

सुहस्तीसूरि को प्रतिष्ठाहेतु प्रार्थना की गई। भगवान् महावीर के ३०० वर्ष बाद वैशाख सुदि पूर्णिमा के दिन शुभलग्न में पच पूर्व-धर आचार्य **जज्जिगसूरि** के निर्देश देकर ५०० श्रमणों के साथ वाराणसी से भेजा। चक्री नाहड़ भी सांचोर आया। अनेक राजा लोग साथ में आये। मार्ग में अभयदान, अमारि उद्घोषणाएँ होती रहीं। जज्जगाचार्य श्रमण संघ सहित वैशाख सुदि १० को दुगासय गाँव पहुँचे। संघ के आदेश से भ० ऋषभदेव प्रतिमा प्रतिष्ठित की और **सांचोर** पधार गये। संख नामक एक क्षुल्लक शिष्य ने कूप प्रदेश में छाणे से वासक्षेप किया।

वीतराग प्रतिष्ठा के लिए क्षेत्र विशुद्धि की गई। श्वेत सदस वस्त्र पर वासक्षेप, पुष्प धूपादि से तीन वार सूरि-मन्त्र अधिवासित किया। गंगापति जल द्वारा इन्द्र-विद्या से अधिसिञ्चित कर जिनेन्द्र का १०८ अभिषेक पूर्वक न्हवण किया। रौप्य-रत्नमय चार पूर्ण कलशों पर चन्दन लेप और पुष्पमाला सहित एवं घटिका, रत्न-मालिका, गुच्छक, मंगलदीपक आदि किए, अनेक गुड़ घृतपूर्ण, इक्षुदण्ड, एक अक्षत पूर्ण घट, वस्तु रत्न-सुवर्ण-कुसुम-गधादि से युक्त विधि विधान पूर्वक करके चैत्यवन्दनादि से आराधना की। वैशाखी पूर्णिमा को विशाखा नक्षत्र योग में ९ घड़ी ४५ पल ३५ अक्षर प्रमाण शुभ मुहूर्त में प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई। **जज्जिगसूरि** ने शक्रेन्द्र को प्रत्यक्ष किया। उसने वैश्रमण को निर्देश कर सौधर्मा-वतशकविमान के उत्तर पश्चिम भाग में सहस्रांशु, महाचण्ड, पूर्ण-भद्र, मणिभद्र, चिन्तामणि प्रभृति परिवृत ब्रह्मशान्ति को आदेश दिया। वह प्रगट प्रभावी महाबली है। नाहड़ नरेन्द्र की विनती से यह प्रतिष्ठा दोनों चैत्यों की सुमुहूर्त में हुई। देवेन्द्र असुरेन्द्र विद्या-धरादि वहाँ वन्दन करते हैं। प्रथम मुहूर्त्त में प्रथम प्रतिमा व दूसरे में सुवर्णमय प्रतिमा प्रतिष्ठित हुई। सौधर्मकल्पवासी कुवेर यक्ष का अतुल बली **ब्रह्मशान्ति** महायक्ष है।

श्रीपद्मनाम तीर्थङ्कर के समय भी फिर प्रभु वीर पूजनीय होंगे। शक्रादेश से यह तीर्थ अभंग हुआ। 'महापरिज्ञा विद्या' ने गगन तल से जाते वीर जिनालय उद्धार किया।

उज्जयिनी में गर्दभिल्ल द्वारा सरस्वती महत्तरा को ग्रहण करने पर कालकाचार्य ने शकों की सहायता से उसका विनाश किया। उसका पुत्र विक्रम हुआ, सत्यपुर में योगीन्द्र मोहित राजा को नवकार मन्त्र से स्वर्ण पुरुष प्राप्त हुआ। उज्जयिनी में राज्य करते हुए भी विक्रम वैशाखी पूर्णिमा को सांचोर आकर वीर प्रभु के वन्दन कर भक्तिपूर्वक उत्सव मनाता था। वहाँ भी वह विद्या सिद्ध विख्यात हुआ।

परचक्र के द्वारा सं० ५४१ (८४५) में वल्लभी नगरी का भंग हुआ। वल्लभी में ३५७ में शिलादित्य हुआ है। अनार्य देश के वगदादपुर के खलीफा राजा ने लाखों की सेना के साथ आकर युद्ध किया, सन्निवेश नष्ट कर दिए। मूलस्थान से विज्जनाह, चक्कपाणि, सूलपाणि, सारंगपाणि आदि ने दक्षिण दिशि की ओर जाकर खदेड़ दिया, असुराधिपति भाग छूटा। वल्लभी में आश्विन पूर्णिमा से छः मास रहा। रत्न-माणिक्य रथ समुद्र में प्रविष्ट हो गए। स्वर्ण रथ श्रीमाल नगर चला गया। सम्यग्दृष्टि देव, जिनेश्वर प्रतिमादि भी गए। विमलगिरि तीर्थ से सम्यग्दृष्टि देवों ने निकाल दिया। चंदेरी भग्न हो गया। गिरनार के निकट कालमेह के पास मेघनाद ने निकाल दिया। गूर्जर देश स्थित ···स्वर्णप्रतिमा दैवशक्ति से पाताल में प्रविष्ट हो गई। अतुल बल पराक्रम से वर्द्धमान प्रतिमा को हटाने के लिए खलीफा राजा ने प्रयत्न किया। अवधिज्ञान से ब्रह्मशान्ति ने ज्ञात कर प्रताड़ित किया, जिससे लवणभूमि में गिरे शेष नष्ट हो गए। उलखपुर अधिपति खुरासानी दश लाख घोड़े प्राप्त कर तक्षशिला का भंग किया। महावीर

तीर्थ (सांचोर) से तो सम्यग्दृष्टि जोगराय ने उन्हें निकाल दिया। स्वर्गीय देवों की सहायता से उपसर्ग दूर हुआ। तीनों प्रतिमाएँ स्थापित कीं। धनद आगमन और पुष्प वृष्टि हुई।

कारशर (?) देशाधिपति ने मथुरादि मध्यप्रदेश में जाकर राजाओ को दण्डित कर चार लाख ग्रहण किये। पर सोरठ देश को भग्न कर सांचोर आने पर सिंह गर्जना शब्द से भयभीत होकर भाग गया। गौड़ देशाधिपति ने छः मास की अवधि से पाटण पर सात सौ करोड़ स्वर्ण दण्डित किये। (सांचोर की स्वर्ण प्रतिमा) ज्ञातकर चैत्य को खनन करने प्रस्तुत गजपति के दल को भग्न किया। सात दिन तक कोल दिया तो आठवें दिन भक्ति पूर्वक नमस्कार कर स्वस्थान को लौट गया। अनादि सिद्धायतन जाकर वीर प्रतिमा कराके पूजी।

इसके पश्चात् दक्षिण देश के कई राजा श्रीमाल पत्तन प्रस्थित हस्तिनापुर में तिलंग, चोड़, लाट, राष्ट्र के तेजस्वी नमस्कार करके (गये) फिर कन्नौज नरेन्द्र सोम संभू अर्हन्त प्रतिमाओं की पूजा करता है। जिनशासन विरोधियों को श्री गोविन्दाचार्य ने सांचोर स्थान से 'वर्द्धमान-विद्या' द्वारा निर्द्धाडित कर दिया। कन्नौज के स्वामी नाहड़ राय तो वैसे ही सम्यग् दृष्टि और तीर्थ की प्रभावना करने वाले के रूप में विख्यात है।

आम राजा का पुत्र धूमराय प्रमुख अनार्यत्व प्राप्त हो गए। बहुत आडंवर से खुरासान, गजनी वाले दूषम काल के प्रभाव से अधिक बलवान हो गए, सारा जनपद अनार्य हो गया। चोर-डाकूओं से परिपूर्ण उपद्रव युक्त जनपद थे तो भी (भगवान्) स्वस्थान में देवपूजित रहे।

फिर हस्तिनापुर से शक प्रत्यनीक प्रतिष्ठानपुर में जिनशासन (के विपरीत) कृष्ण अमावस्या को होम करते थे जिसे आर्य खपुटाचार्य ने सांचोर से उद्धार किया।

विद्यासिद्ध **भैरवानंद** जालन्धर में महा भैरवी विद्या से सम्यग्दृष्टि श्रावकों को वाणव्यंतर का उपसर्ग कराता था। बारह वर्ष बीत गए तब चतुर्विध संघ सह आर्य सिद्ध (सेन) **श्रीमाल** पुर से आकर अष्टान्हिका महिमा पूर्वक शांति उद्घोषित कर द्वार खोले। छः मास से विद्यासिद्ध भैरवानंद को आदेशपूर्वक लाकर छोड़ा वाणव्यंतर का भी निग्रह किया, फिर **सांचोर** तीर्थ प्रभावशाली रहा।

फिर·· नामक मुद्गर लेकर (सं०) १३५० में चैत्य में आया जिसे प्रभु ने निर्व्रीड़ित किया। वि० सं० ८६० में यक्ष ने तीन दिन कील दिया, भयपूर्वक नमस्कार करके चला गया। दुष्ट चित्त जोगराय चावड़ा ने······ दहन काल में बलहीन होकर विनय भाव से **सांचोर** मंडन वीर प्रभु को विनय भाव से नमस्कार किया।

काशी के अधिपति **महिंद्रसिंह** वेताल के बल से फिर भारत में भ्रमण करने लगा। वह मालव और गुजरात का भंग करके **सांचोर** आकर उद्धार किया।······यक्षराज ने अट्टहास पूर्वक अनायास ही कुद्दाल को असफल कर तीर्थ विरोधी, गुजरात भंग कर (शिव) लिंगादि को गाडों में भर कर लाने वाले को **सांचोर** के निकट आने पर अंधा कर के करुण पुकार करा के यक्षराज ने छोडा।

अनेक प्रकार का छल प्रपंच करने वाले राजा को हजारों देवों से परिवृत वीर ने विस्मित कर दिया, क्योंकि लोकोत्तर जिन चैत्य को विध्वंस करने के लिए (आये हुओं को) अग्नि और धुँआ व्याप्त दिखा दिया था।

कीर्ति नगरी का स्वामी उपबल जो सूर्य भक्त था और दुष्ट चित्त से गगन चक्र भग्न हेतु आया था, गर्जते हुए सिंह युगल दिखा कर भगते हुए को वीर प्रभु का चरण अर्चक बना दिया।

कोल्हापुर के महा लक्ष्मी गण के सोम राजा तत्पुत्र नरसिंह

देव राजा तत्पुत्र सिंह को मारने वाले सिंह विक्रमदेव एवं छत्तीस लाख कन्नौज के परमार राजा मेघ भी तीर्थ.......साचौर के वर्द्धमान तीर्थ में कुण्डलाभरण लौटाया।.........मंगल तूर के शब्द ब्रह्माण्ड व्याप्त देख कर गूर्जर खण्ड भूपड़ को दे गया।

विक्रम के... अन्य देशाधिप जो लाख घोड़ों के साथ रौद्र परिणाम वाला, गौड़ादि देश-तिलंग देश अवगाहन कर भोगने वाला, चारों वर्ण का विध्वंसक आकाश को रेणु से आच्छादित करता हुआ आया। यक्षराज ने उसे खदेड़ दिया, घोड़ों की पूँछ जलने लगी। हाथी और घोड़ों से भी प्रभु न चले, सुभट लोग भी असमर्थ हो गए, बैलों से थोड़े सरके। अन्त में वह प्रभु की अंगुली लेकर स्वस्थान कडमाणपुर (? अपने पड़ाव में लौटा) वहां घोर अन्धकार पूर्ण रात्रि में ब्रह्मशान्ति यक्ष ने उसे दण्ड से प्रताड़ित किया। जो अंगुली लेकर हम्मीर गया था, दंडवत प्रणाम करता हुआ आया और वर्द्धमान स्वामी को नमन कर अपनी अंगुली विदीर्ण करके गया। उसके पुत्र भी वैसा करते हैं। यदि न करे तो कडमाणपुर रजस्थल हो जाय।

श्रीमाल नगर को नाश करने के लिए जाते हुए वाराणसी और मालवा के राजा भगवान् वर्द्धमान को आशातना करने से निविड़ बंधन में बध गए और जोर जोर से चिल्लाने लगे। अन्त में वे भगवान् को नमस्कार करके लौट गए। मालवा के राजा गुजरात के प्रत्यनीक होने पर भी सांचोर प्रदेश में शत्रुता नष्ट करके समय वितावगे।

दुर्लभराज ने भी श्रीमालपुर में देवराज को मारा और जाते समय सांचोर में वर्द्धमान स्वामी को नमस्कार करके गया।

विक्रमाब्द १०२९ और १२४७ में उत्तर से आये अश्वपति-वादशाहों को चारों दिशाओं से खदेड़ दिया। (वीराब्द) १४२६-

१४३२ में मालवा का राजा पलायन करेगा। १५१८ में अश्वपति का भंग होगा। १५७० में उस सर्व देशों के विध्वंसक को यक्षराज ब्रह्मशांति निर्द्धाड़ित करेगा। इतर सर्वतीर्थों का प्रत्यनीक विरोधी और प्रमाण न करने वाला होने पर भी भ० महावीर को पूजेगा।

१६१९ या १९१६ में पाटलीपुत्र नगर में मगधराज की चांडाल कुली रानी के यहां चैत्र वदि ८ को कलकी का जन्म होगा। उसी दिन मथुरा में मधुमदन (मधु-सूदन) कृष्ण का भग होगा। द्वारिका में ईश्वर लिग और श्रमणों के भात-पाणी का अपवित्रत्व यक्ष-देवादि के प्रत्यनीक द्वारा होगा। विमल गिरि, रैवत-गिरनार, **सांचोर** और मगधतीर्थ सम्यक् दृष्टि देवों के प्रभाव से अभंग रहेंगे और पूजित अर्चित होंगे।

कल्कि अपने पापानुवन्धी पुण्य के उदय से आर्य-अनार्यो को साध करके पाटलिपुत्र में ३६ वर्ष एकछत्र राज्य करेगा। वह सभी दर्शनों का विरोधी, उत्पीड़क और लोभी-सग्रहशील होगा। अर्हत्-प्रवचन की निष्कारण शत्रुता से शक्रेन्द्र की सभा में कुण्डल चलित होंगे। सर्वायु ८४ वर्ष चै० सुदी ८ को भस्म राशि पर्यन्त रहेगा। गाय रूप में भीति करेगी।

राजा डमर दलित नाममात्र के गांव रहेंगे। फिर वह घूमता हुआ नंद के निधान स्तूपों को खुदवा कर प्राप्त करेगा। साधुओं से भिक्षा का भाग मांगने आदि पापों को वृद्धि के कारण प्रतिपदाचार्य के काउसग्ग द्वारा शक्रेन्द्र आकर कल्कि को दण्डित करेगा। उसका सम्यग्दृष्टि पुत्र दत्त राजा होकर .जिनशासन की प्रभावना करेगा। प्रतिदिन नया जिनचैत्य बनवावेगा। सर्वतीर्थों में प्रभावशाली **वर्द्धमान साचोर तीर्थ** होगा। बहुत से मिथ्यादृष्टि भी धर्म के महत्त्व को समझेंगे, जिनेश्वर व साधुओं के भक्त होकर पूजा करेंगे।

दत्त महाराजा आदिजिन भुवन मंडित करावेगा। उसके समय में स्वर्ण जटित आभरण युक्त हेममय जिनप्रतिमा प्रगट होगी व पूजित भी होगी। वीर जिनेन्द्र के तीर्थ साचोर में धर्म मुकुट दश श्रेष्ठी होंगे, जो आठ चैत्य तीर्थायतन विख्यात होंगे, जीर्णोद्धार करेंगे। २०५४ में नौ व्यक्तियों के सहकार से विवर्ण तीर्थ को शुद्ध सौष्ठवपूर्ण करेगा। विमलदत्त व चारुदत्त भी वैसा करेंगे। दत्त का पुत्र जितशत्रु होगा, वह भी नियम पूर्वक इस तीर्थ का पोषण करेगा। इस प्रकार **साचोर में वीर जिनेन्द्र की नियम भक्ति** होगी।

८१९ वर्ष व्यतीत होने पर मगधाधिप इस प्रदेश में पूजा भक्ति करेगा। २१६० में पाटलिपुत्र में पद्म नामक राजा एकचित्त होकर इसकी अर्चना करेगा। वह यहाँ दुष्टों को शान्त करेगा। ४ हजार वर्ष बीत जाने पर जितशत्रु राजा भी दुष्टों को दण्ड देगा और यक्ष के द्वारा सब देशों में उन्हें शीघ्र प्रताड़ित करेगा। १२ हजार वर्ष बीत जाने पर सुवृद्धि होने पर आणपन्ने पाणपन्ने आदि जंभक देवों द्वारा प्रातिहार्य रचना की जाने पर नित्य मंगल गान होंगे। प्रतिदिन महोत्सव होंगे।

उत्सर्पिणी काल चक्र के दुषम सुषमा काल बीत जाने पर तथा दुषम काल व्यतीत हो जाने पर सुषम दुषम काल आने पर श्री पद्मनाम तीर्थंकर के तीर्थ में सम्यग्दृष्टि देवों के अभियोग से धर्म प्रवृत्ति होगी। विशेषतः **पुडल तीर्थ** में धर्म का उच्छेद होगा। वहाँ अनार्यो की पूजा होगी। अनार्य तीर्थ हो जाने पर भी मिथ्या दृष्टि इसे वन्दन-नमस्कार कर के जाएंगे। सम्यग्दृष्टि यक्ष के द्वारा उत्कृष्ट पूजा होगी। तीर्थेश्वर सोमनाण (?) के निर्वाण के बाद तीर्थ विच्छेद हो जायगा। अनार्यों की पूजा होगी। सुव्रत तीर्थंकर अमम तीर्थंकर के समय सुख पूर्वक पूजित होंगे। किन्तु इन सब से वर्द्धमान स्वामी का प्रभुत्व विशेष होगा।

यह सुन कर **नाहड़** राजा अत्यन्त हर्षित होकर अपने स्थान पर गया। तब से वह त्रिकाल पूजा परायण रहने लगा। अन्य तीर्थों की भी वह यात्रा करता था। जिनशासन प्रभावक नाहड़ अन्तिम समय श्री **गुणसुन्दर** सूरि के समक्ष अनशन करके तीर्थ के माहात्म्य से मुक्ति पद पावेगा। यह प्रथमानुयोग के अन्तर्गत है। इस प्रकार **सोलहवाँ अध्ययन** पूर्ण हुआ।

●

विशेष नामसूची

(मूल तीर्थ कल्प के अनुवाद मात्र की)

– घ –

– च –

– ट –

– ड –

– ध –

—प—

—म—

-स-

शुद्धाशुद्धि पत्र

पृ०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४	१०	पू०	पृ०
७	४	तीर्थंते	तीर्यंते
१०	१३	शीलविजय	शीलविजय
११	१७	शर्मतिलक	शुभतिलक
११	२५	तीनर्थो	तीर्थो
१३	१४	विविध	विधि
१९	५	आर्हच्छत्रा	अहिच्छत्रा
२२	१७	लूणिगवसहो	लूणिगवसही
२३	१०	इल्प	कल्प
२३	१४	°परिवेष	'°परिशेष'
२४	६	शिहाबुद्दीन	सहाबुद्दीन
२७	१९	रथपति	रयपति
२४	९	मोहबा	महोबा
२६	६	खलजी	खिलजी
२७	१०	खलजी	खिलजी
३२	२३	हसारा	हमारा
३३	१३	पट्टघर	पट्टधर
३४	८	अनुरजित	अनुरंजित
२	२३	ओर	आरे
२	२१	कल्लिका	कल्किका
५	१६	स्नान	स्नात्र
६	९	मघुमती	मधुमती

पृ०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
९	११	दूषक	दूषम
१२	६	मूलनाथ	मूलनायक
१४	१७	स्नान	स्नात्र
२३	४	वैंकटया	वैरोटया
२३	२४	सौधमैन्द्र	सौधर्मेन्द्र
२५	२६	माला	माल
२७	४	द्दस्थित	दुःस्थित
२७	८	लाल	लाख
३०	३	अहिच्छात्रा	अहिच्छत्रा
३०	६	समृद्धि	समृद्ध
३२	४	जिनप्रभुसूरि	जिनप्रभसूरि
३३	१	पुण्ड	पुण्य
३४	१२	जिसके	जिससे
४०	२४	चौरासी....	चौरासी एणिकाएं
४१	१०	महास्थान	महास्थल
४२	६	राधविध	राधावेध
४२	१२	यतत्व	यक्षत्व
४४	७	पाठ	साठ
४७	६	विषयला	विषय
४७	१८	°पूर्वके	°पूर्वक
४८	१०	कोरिण्टक	कोरिण्टक
५१	६	अरासन्ध	जरासंध
५१	१०	गणघरों	गणधरों
५१	१४	नार्लंदा	नालंदा
५१	२२	वार्लों	वालों
५३	३	को सब	कोसंब

पृ०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५४	१५	कोरा	कोश
५५	२०	को	के
५६	६	भौ	भी
६३	१०	दुग्घ	दुग्ध
६३	११	यहाँ	वहाँ
६५	८	देवशर्मा	इन्द्रशर्मा
६५	९	आस्तिक	अस्थि
६७	१२	प्रबल का फिर	प्रबल काफिर
६७	२३	आसावाल्ली	आसावल्ली
७०	२३	की हो	की जय हो
७२	१	मञ्जुला	मञ्जुल
७६	१८	नमर	नगर
८१	२१–२२	दुर्विग्घ	दुर्विदग्ध
८१	२६	श्राद्ध	श्रद्धा
८३	१९	सामन्ताद	सामन्तादि
९०	५	कइ	रुद्र
९२	१७	अपौत्र	प्रपौत्र
९४	१	मन्त्र	मल्ल
९४	७	७ श्रीसोम	D. (अधिक है)
९४	१५	जयन्तर	जयन्त
९५	२३	भवोद्योत	भावोद्योत
९९	२७	ताम्बूर्लाद	ताम्बूलादि
१००	१४	घ्रौव्य	ध्रौव्य
१०१	१३	मुक्ल	शुक्ल
१०१	१७	अनकवाला	
१०२	४	दाहिन	दाहिम

पृ०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१०२	१९	सुधार	सुथार
१०३	२	सिकन्दर	सिकदार
१०४	१३	फरमाना	फरमान
१०५	१	प्रमु	प्रभु
१०५	२२	नाराक	नाशक
१०८	१९	पीठिकाओं	पीठिकाओं से
११०	१	बे	वे
११२	११	भय से	उपपत्ति भय से प्रतिबोध पाया
११३	१७	ब्राह्मण	ब्रह्माण
११४	२३	,,	,,
११८	११	सुर सुन्दर	श्रीसुन्दर
१२१	१६	अतनुवुक्का	अतनुवुक्क
१२८	३	धारोड़	धाराड़
१२८	२५	यथातथ	यथात्तथ्य
१३२	१७	धोड़े	घोड़े
१३८	२५	खुहला	खुंदला
१३९	६	सुवा	सुना
१३९	९	शुदूक	शूद्रक
१४०	१८	कोल्लागपुर	कोल्लागुर
१४२	१०	विक्रय	विक्रम
१४३	२	देवगण	देवगण सह
१४६	१३	प्रप्त	प्राप्त
१४९	११	°रुद्रक	और रुद्रक
१४९	११	सविधान	संविधान
१६५	२४	मणिचूड़	मणिप्रभ

पृ०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१६६	१७	अंगारक	सांगारक
१६८	२६	मृगघूर्त	मृगधूर्त
१७०	१४	धी	की
१७०	२१	पण्डित	मण्डित
१७१	२५	आयुभूति	वायुभूति
१७२	२	प्रभात	प्रभास
१७३	२३	महान सत्व	महानसत्व
१७६	२३	धड़ी	घड़ी
१७९	६	कोटि पर्यन्त	कटिपर्यन्त
१८१	२२	द्रव्य	द्रव्य व्यय
१८६	१७	निभेदन	निवेदन
१८७	७	निकलने	निकालने
१८७	२५	पार्श्नंनाथ	पार्श्वनाथ
२०८	२२	वत्स देश	वज्झ देश
२१२	१५	गंगादत्त	गंगदत्त
२१५	९	उत्तदश	उत्तम दश
२१६	२७	द्रश्य व्यय	द्रव्य व्यय
२१७	३	के	को
२२१	२०	मुरंगल	उरंगल
२२२	११	अस्तालंकार	हस्तालंकार
२२४	१५	पोल्लराज	प्रोल्लराज
२२५	८	अपराध	आराधन
२२९	८	°की	°को
२३२	२	°तूर्वक	°पूर्व
२३४	५	पूर्व काल में	पूर्वकाल में लंका-पुरी से

पृ०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२४०	१२	प्रमाण	प्रणाम
२४६	२३	अक्षर	अक्षर ५
२५४	२०	पारण	पाटण
२५५	२	कमी	कभी
२५६	१६	वनाया	वन गया
२५८	२५	आवेगा	जावेगा
२६१	१०	पृथ्थी	पृथ्वी
२६३	१७	(शीर्पक होगा)—	अवन्ती देशस्थ अभिनंदन देव
२६७	६	तथा गणधर	तथा ८४ गणधर
२६७	८	शान्तिजी	शान्तिनाथ जी
२६७	२५	पाठ छूटा—हवे चौथा दरवाजा बाहरें श्रीरामपोल छे तिहां मुनि जाली मयाली उवयाली छै पर्वतमांही कोरी छे तिहां देवी की चौकी छै।	
२६८	५	माडवा	भाड़वा
२६८	८	छेटी	घेटी
२६८	९	नही	नदी
२६८	१८	को रेंशामलीया	कोरें शामलीया
२६९	६	जमगी	जमणी
२६९	७	देवली	देवल १
२६९	२२	रू	रा
२६९	२५	वरवाडी	वावाडी
२६९	२५	पोयानि	पो पानी
२७०	४	खत्री	छत्री
२७०	१२	सादे	साये

पृ०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२७०	१७	सीताउनाथ	सीतलनाथ
२७०	२१	दीवसेरे	दीवसेर
२७१	६	०वंधु	०वंध
२७१	७	नवपात्रव	नवपल्लव
२७१	१७	क्षेमंधर	श्रीमंधर
२७१	२६	नीझरण	नीझरणां
२७२	२	पावढीया	पावठीया
२७२	४	धाराजि	धोराजि
२७२	१०	भाडवण	भाणवड़
२७२	२०	अनंतनाथ जी का देवल १ (पाठ डवल है D)	
२७३	६	भकअच	भरुअच
२७६	७	देवल ११	देवत्व ९१
२७६	२०	पद्मचंद्रप्रभु	पद्मप्रभु
२७७	२	चाटक	चाल्या
२७८	८	किर	फेर
२७८	९	चाडावे	पाडा वे
२७८	९	जरणना	जखना
२७८	१०	दोहरो	देहरो
२७८	१९	मति	भमती
२७८	२४	भछे	मध्ये
२७८	२६	मोक्षवसि	मोक्ष वारी
२७९	४	२९ लामा	रस्ता मां
२७९	८	णिद्धाचल	सिद्धाचल
२७९	२६	पदमनाथ	पद्मनाभ
२८०	१०	सपदी	रूपदी
२८०	२१	दामरो	दायरो

पृ०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२८०	२७	पारासनाथ	पार्श्वनाथ
२८१	९	एक खंभातको	खंभातको
२८१	१४	भांडिवि	मांडवी
२८१	१४	संगती	संगवी
२८१	१४	°घुजय	भुजको
२८१	१५	नगाह्रा	नगारा
२८१	१८	चाला	पाला
२८१	१९	यात्रा	यात्रालु
२८१	२०	चौबीस	चौबीसवटा
२८१	२१	तियासे	तिहांसे
२८१	२१	काप्लमा	कापल्या
२८१	२१	थम्म	थंभ
२८२	३	जांगानेर	चांगानेर
२८२	१७	मंदिर जी	गाँव १ मंदिजी
२८२	२७	पाणी	पाली
२८३	५	उपवास	उपासरा
२८३	१५	माकडो	माडको
२८३	१०	भमनी	भमती
२८४	८	बीस बीस	बिंब वीस
२८५	१	सर्वघात	सर्वधात
२८५	५	दे हुदो	देहरो
२८५	८,१९	प्रतिभा	प्रतिमा
२८६	६	चींदास	चंदाप्रभु
२८६	११	देशमोरु	देशनोक
२८६	१४	शांतिनाथ जी	°बिंब १४
२८६	२६	घात	धात

पृ०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२८७	२४	पीरपापहन	°पट्टन
२८८	५	घुलेवा	धुलेवा
२८८	८	पीरपाहन	°पाट्टण
२८५	११	गटीसर भायैं	गढीसर माथै
२८५	१२	क्षत्री	छत्री
२८९	२	जिन सूर	जिनरंग सूरि
२९०	२१	कलान	कल्याण
२९१	१	उपसारु	उपासरो
२९१	१४	मुखर	पुखर
२९१	१४	समसरण सोमासरण	समोसरण
२९३	२६	विलोक	विलोड़
२९४	१	भदीकत रेखा	नदी कनारे
२९४	१८	पिप्पणक Seroll	टिप्पणक Scroll
३०१	१८	कोहिडी	कोहंडी
३०६	६	स्नानादि	स्नात्रादि
३०६	१२	सार्थवाह	सार्थवाह ने
३११	२	कुती	कुन्ती
३१२	१३	दिवा	दिव्य
३१४	१	पद्मनाम	पद्मनाभ
३१७	४	भूपड़	भूयड़
३१७	२२	वितावगे	वितावेंगे
३१९	२०	पद्मनाम	पद्मनाभ
३३२	८	द्रविण	द्राविड़
३३५	१२	पद्यनाभ	पद्मनाभ
३३६	२१	साध्पी	साध्वी